





सं० ब्र० शीतलप्रसादजी  
स्मारकग्रन्थमाला न १८का  
नियेदन

करीब ६०-७० प्र याक लेखक, अनुवादक व टीकाकार व संपादक 'जैनमित्र' पत्राधिकारके व 'बार' के संपादक न रातदिन घममथागार्थे भ्रमण कानवाले श्री जैनधर्ममूषण सं० शीतलप्रसादश्री (दखनऊ)का स्वगवाम जब ६५ वर्षको आयुमें बीर सं० २४६८ व सं० १९९८ में दखनऊ में हो गया तब हमने आपकी घमसंवा व जातिसंवा 'जैनमित्र' द्वारा कायम रखनेको आपके नामकी प्रथममाळा निकालनको (१००००)की अपेक्ष 'जैनमित्र'में प्रकट की थी हो उसमें (६०००) भर गये थे तो भी हमने जैसे-तैसे प्रयत्न करके यह प्रथममाळा आपसे २३ वर्षपूर्व प्राप्त की थी।

इस प्रथममाळामें प्रतिवर्ष १-१ प्रथम 'मित्र'के प्रादकीको भेंट देनेका व्यवस्था बहुत अधिक होता है अब हमने 'जैनमित्र'के प्रत्येक प्रादकीसे प्रतिवर्ष १) अधिक लेनका योजना की थी जिससे हो यह प्रथममाळा चलू रह सको है व चालू रखना हो है।

इस प्रथममाळा द्वारा आजतक १७ जैन ग्रंथ प्रकट करके 'जैनमित्र'के प्रादकीको भेंट कर चुके हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—

- १-सर्वत्रताका धोषान ( सं० शीतल कृत ) ३)
- २-श्री आदिपुराण ( सं० तुलसीराम कृत छ दीपद ) ५)
- ३-श्री चन्द्रम पुराण ( कवि हीरादास बदीत कृत ) ५)

- ४-श्री यशोधर चरित्र ( महाकवि पुणवर्दनका अनुवाद ) ३)  
 ५-सुभोग चक्रवर्ति चरित्र ( प० लालागमजी कृष्ण अनुवाद ) ३)  
 ६-श्री नेमिनाथ पुराण ( प० चन्द्रकाण्डी कृष्ण अनुवाद ) ५)  
 ७-परमाथ बचनिका व कथादान निर्मासकी चिह्ना १)  
 ८-श्री श्री यशुवार चरित्र ( हिंदी अनुवाद ) १।)  
 ९-श्री श्रीरामनाथ चरित्र ( प० लालागमजी कृष्ण अनुवाद ) ४)  
 १०-श्रीरामनाथ भाषणाचार ( मूळ व बचनिका ) ४)  
 ११-श्रीपाळ चरित्र ( भारद्वाज कृष्ण छ दशरथ ) ३)  
 १२-'जैनमित्र' का हीरक जय ती छवित्र अंक ३)  
 १३-समवरीक्षा (पं० पद्माकाण्ठ बाकडीबाळ कृष्ण-हिंदी अनुवाद) ३)  
 १४-हनुमान चरित्र ( हनुमानाष्टक सहित ) २)  
 १५-चन्द्रप्रभ चरित्र ( हिंदी अनुवाद ) २।।)  
 १६-महावीर चरित्र ( हिंदी अनुवाद ) ३)  
 १७-डॉ० कामधामसाहू जैनका व्यक्तित्व व कृतिरत्न ३)

और अब यह १८ वीं महात्मा व्याख्यात्मक प्रथ

श्री नियमसार मूल व भाषाटीका सहित

३-५०

प्रकट किया जाता है



## नियमसारका परिचय

यह नियमसार प्रथमराज आध्यात्मिक रक्षका समुद्र और अमेरिका के अंदर साक्षर शानुपदमय मोक्षमार्गका प्रकाशक है। इसमें प्रथम व्यवहारनयका और फिर निश्चयका मुद्रयतया मुनिकी प्रतिक्रमण मापद्वित्त आदि पट कर्षोका स्वरूप बहो विद्वत्तासे किया गया है।

इस प्रथमराजके मूढकता भी कुछ दृष्टाव्यय दब हैं जो कि आचार्योंकी पदावलिमें प्रथम आचार्य गिने जाते हैं। तथा आप तारार्थसूत्र-मोक्षशस्त्रक अता भी उमाशामोके गुरु थे। आप विक्रम सं० ४९५५ हूए मे व उमाशामोका समय सं० ८१ माना जाता है जो कि गृद्धरोछाचार्यक नामसे विख्यात है क्योंकि आपकी मयूषीछा मागमें आपन हाथस गिर गई थी तब आपने गृद्धरोछासे अपना काम चलाया था।

भी कु-दकुन्दचार्य कृत इस नियमसार प्राकृत प्रथमराज-र नियम्य मुनिराज भी ९५२२मसुधारी देवन समुद्रमें तप्यन्तुकी रचना का भी जो इतिहासित प्रथम भी सं० शीतलनगरकी लयपुरके आनुमानमें गांधीके मंदिरमेंसे सेठ विश्वकर्षद्वारे अष्टाद्विहासके समय भेट किया था जिसको प्रथम का प्रथम चारीजीने बिचर किया कि इसकी हिन्दी मरटीका करना बहुत उपयोगी होगा अत आपने भी सं० १९१०-१८ में इस प्रथमराजकी तात्व्यवृत्ति परसे इसकी मापद्वित्त की है और यह प्रथमराज प० नाथूगामजी प्रेमीने जन-प्रथम-प्रथम कादंब्य बम्बई द्वारा आपसे ५० वर्ष पर प्रथमवार ही प्रथम 'व्यय' जो कई वर्षोंसे मिलता ही नहीं था और इसमें प्रथम एक प्रति सम्हालकर रख छोदी थी जिसको पुन प्रथम 'व्यय' माहकोकी भेंट

व्ययरका है।

प्रथम आवृत्तिमें गाथाके साथ संस्कृत तात्पर्यवृत्ति १६० पृष्ठोंमें छपी है जिसको स्थानान्तरणसे हमने इस द्वितीयावृत्तिमें न लेकर बिल्कुल मूढ गाथा लेकर उस पर इस तात्पर्यवृत्तिकी ३० शीतलकृत हिंदी भाषा टीका प्रकट की है इसमें मूढ प्राकृत गाथाका सामान्य अर्थ लिखकर फिर संस्कृत टीकासे विशेष अर्थ लिखा गया है व भाषार्थ भी दिया है तथा संस्कृत टीकाकारने प्रत्येक गाथाके अर्थमें बहुत सुंदर संस्कृत श्लोक लिखे हैं उनका अर्थ भी 'टीकाकार कहते हैं' ऐसा लिखकर दे दिया गया है।

श्री ३० शीतलप्रसादजी संस्कृत प्राकृतके अच्छे जानकार थे व बड़े परिश्रमी थे। अतः आपन इस नियमकार प्रथमराजकी भाँटीका प्रथम करके जैन समाजका बड़ा भारी उपकार किया है अतः यह प्रथम वर्षसे मिलना ही नहीं था व जो अक्षरम शास्त्रका भण्डार है अतः इसे ही हमने दूरदूरीपर प्रकट करके 'जैनमित्र' के माइकोंकी भेंट दिया है तथा कुछ प्रतिया विक्रयार्थ भी निहाली हैं जो कि 'मित्र' के माइक न हो उनके लिये उपयोगी होंगी।

श्री नियमकार आध्यात्म प्रथमराजका पठनपाठन विशेष रूपसे होता रहे यही हमारी भावना है।

सुरत  
 बीर सं० २०९२  
 भाग्यद सुदी ८  
 ता० २-९-६६

निवेदक—  
 मूलचन्द्र किसनदास कावड़िया,  
 -प्रकाशक।

# विषयानुक्रमिका

विषय

पृष्ठ

- |                                                       |            |
|-------------------------------------------------------|------------|
| १. प्रथम श्रुतस्कन्ध-जीवाधिकार                        | ३ से ३६    |
| २. द्वितीय श्रुतस्कन्ध-अजीवाधिकार                     | ३७ से ५३   |
| ३. तृतीय श्रुतस्कन्ध-शुद्ध भावाधिकार                  | ५४ से ७८   |
| ४. चतुर्थ श्रुतस्कन्ध-व्यवहार चारित्र्याधिकार         | ७९ से १०३  |
| ५. पंचम श्रुतस्कन्ध-निश्चय प्रतिव्रमणाधिकार           | १०४ से १२३ |
| ६. षष्ठम श्रुतस्कन्ध-निश्चय प्रत्याख्यानाधिकार        | १२४ से १४२ |
| ७. सप्तम श्रुतस्कन्ध-निश्चय आलोचनाधिकार               | १४३ से १५४ |
| ८. अष्टम श्रुतस्कन्ध-निश्चय प्रायश्चित्ताधिकार        | १५५ से १६५ |
| ९. नवम श्रुतस्कन्ध-परमसमाधि अधिकार                    | १६६ से १७७ |
| १०. दशम श्रुतस्कन्ध-परममक्ति अधिकार                   | १७८ से १८५ |
| ११. ग्यारहवा श्रुतस्कन्ध-निश्चय परम-<br>आवश्यक अधिकार | १८६ से २०८ |
| १२. बारहवा श्रुतस्कन्ध-शुद्धोपयोग अधिकार              | २०९ से २४४ |







श्रीपरमात्मने नमः ।

श्रीकुन्दकुन्दाचार्यप्रिचित

## नियमसार

बालबोधिनी भाषाटीका सहित

भाषाकारकी ओरसे मगठाचरण  
दोहा ।

समयसार सतगुण प्रणमि, द्रव्य भाव हरपाय ।  
' गौतम ' गणधर गाय गुण, जिनराणी उर ध्याय ॥१॥  
' कुन्दकुन्द ' मुनि चरण नमि, अनुभवके दातार ।  
ज्ञानभानुसम्पत्स्फिरण, मिथ्यातम हरतार ॥२॥  
नियमसार गुणरत्नसो, प्रगटायो सुखदाय ।  
प्राकृतभाषामय मधुर, निजरस अनुभव दाय ॥३॥  
' पद्मप्रभ मलधारि ' जे, मुनि निर्ग्रन्थ स्वरूप ।  
वर सस्कृत टीका रची, पद अरु शब्द अनूप ॥४॥  
ताकी उपा लेयकर, तुच्छ बुद्धि अनुमार ।  
प्राकृतकी भाषा करू, बालबोध हितकार ॥५॥  
निच अनुभवके कारणे, पर अनुभवके राज ।  
चाह दाह जग छौंइकर, भजि मन वच जिनराज ॥६॥



## संस्कृत लीलाकारके मंगलाचरणका भाषार्थ

हे परमात्मन् ! आपके हात में कुछ प्रकारसे मरे ही ऐसे अर्थात् सवारी जीवोंके पट्टण जो मोहमें सुग्ध और कामदेवके धाम न है एस व्रता बिष्णु, महेश और मुद्ग देवोंको भज सकता हू, इसीद्वये में जिन-द्रसूर्यको नमस्कार करता हू। केमे हैं प्रमु-जि होने समारका अंत दिया है, जो मोक्षमागद नेता हैं, बाणीके रक्षामी हैं तथा ध्यान रूप हैं। तथा मैं जिनबाणीको नमस्कार करता हू, जो बाणी भीमुनीश्वरोंके इन्द्र ऐस भीजिन-द्रके मुख कमलस प्रगट हुई है, तथा विश्व और व्यवहार नयके द्वारा जिसमें वाच्य जो पदाथ तिनके पूण स्वरूपका अध्यन किया गया है।

तथा मैं सिद्धा व समुद्रके पारगागो पर्वप्र सिद्धा तक्षपी भेषु ब्रह्मीके पति प्रासिद्धसेनको, तर्करूपी कमलके स्फुल्लिन करनेको सूर्य समाग भीमद्वटाफलकदेवको, गरुड समुद्रका वृद्धिके द्विये अत्रमाके समान भीपूज्यपादस्वामीको, तथा बियाके पारगागो महाप्रार्थोमें इन्द्रके समान ऐसे श्रीबीरना द आचार्यको नमस्कार करता हू। मैं भव्य जीवोंको मोक्षमागमें लगानेके द्विये तथा अपनी आत्माकी शुद्धिके द्विये इन नियमधार प्रथकी 'वाश्वयैवृत्ति' नानको वृत्ति बहूगा। यह परमागम गुणके भारी श्रोगणधरद्वोंसे रखा गया है जो ही श्रवके धारियोंकी परिपाटी द्वारा प्रगट किया गया है, ऐसे परमागमके अर्थक ब्रह्मको मैं मव्युद्धि वैसे समय हो सज्जा हू। तथापि इस परमागमधारकी पुष्ट र्त्ति जो मेरेमें उत्पन्न हुई है वधीने मेरे मनको धारस्वार प्रेरणा की है।

पूर्वमें सूत्रवर्तने पचारितकाय, षट् द्रव्य, सात तरब, और नव पदाधीन तथा श्रयाख्यानार्दि अत् क्रियाओंका बणन किया है। अब अधिक विस्तार न करके मूळ प्रथका विवरण करते हैं।

मूढ ग्रन्थकर्त्ताका मगठावरण

णमिऊण जिण धीर, अणतवरणाणडसणसहार ।

वोच्छामि णियमसार, केवलिसुदधरलीमणिदं ॥ १ ॥

शास्त्रकी आदिमें कृताने असाधारण मगठ किया उसको कहते हैं जो पापकी गढावे और सुखको देवे । असाधारण मगठसे यह प्रयोजन है कि यह मगठ साधारण नहीं है, कि तु विशेष है । इस मगठमें ही यह शक्ति है जो जीवात्माके अनादि कर्ममगठ पापको धोकर हम जीबको निज स्वत्पानवी सुख प्राप्त करा सकता है, इसीलिये यह असाधारण मगठ है ।

सामा य अर्थ—मैं कुछ दुरु दाखायें अनन्त केवल ज्ञान दर्शन स्वभावके धारी ऐसे श्रीबीर जिनेन्द्रको नमस्कार करके केवलों और ध्रुतकेवलियोंसे कहे हुए ऐसे नियमसार परमागमको कहूंगा यह प्रतिज्ञा करता हू ।

विशेष अर्थ—अनेक संसारके ज मरूपी बनमें भ्रमण करानेके कारण ऐसे जो समस्त राग, द्वेष, मोह आदिक विभाव भाव तिनको जो जीतवा है उसका नाम 'जित' है । 'बीरयने' अर्थात् कर्मरूपी शत्रुओंको जो पराजित करता है वह 'बीर' है । श्रीबीरसे श्रीधरके पाप नाम प्रसिद्ध हैं—श्रावर्द्धनान, म मतिनाथ, अतिबीर, महाबीर और धीर । ऐसे भीबद्धमान जित ही परमेश्वर महा देवाधिदेव हैं । जो अपने निमग्न केवलज्ञान और केवलदर्शनसे पूण होकर तीन लोकके पर अक्षर पशुओंकी समस्त पयायोंके जाननेको समथ हैं, यहा आपाटपन यह मगठ किया है कि जो सबदर्शी सबज्ञ और भीतराग है वही आगमका स्वामी अत्यवस्था प्राप्त हो सकता है । उसीको ही आगमकी उपाश्वरूप कार्यके प्रारम्भमें नमस्कार करना युक्त है । क्योंकि जो अक्षरपण्डित बीर, किसी भी राग और द्वेषको धरनबाबा ॥

सत्यार्थकल्याणकारी उपदेश नहीं दे सकता । परम हितोपदेशीपना वह परमौदारिक शरीरके घासी अरहत्-देवमें ही ही सकता है, जो जीव मुक्त अवस्थामें भाव मुक्तिको प्राप्त कर सर्वज्ञ और बीतराग गुणसे विभूषित है, जिसके श्रुत्या, श्रुत्या, जरा, रोग, जन्म, मरण, भय, विस्मय, राग, द्वेष, मोह, खेद, रोद, चिन्ता, रात, अरति, और निद्रा ऐसे अठारह दोष नहीं हैं । ऐसे आत्मे नमस्कार करनेसे आचार्यजन यह दर्शाया है कि ब्राह्मणोंको योग्य है कि ऐसे अरहत्को ही आत्म, देव, पूज्य, माननीय, महत् परमात्मा, परम सुखी और धर्मन सदन योग्य समझे । नियमसारसे प्रयोजन यह है कि सम्यग्दर्शनधारित्ररूप जो नियम ब्रह्मका सार जो शुद्ध रत्नप्रयत्नरूप आत्मा विषयका व्याख्यान करूँगा, यह आचार्यकी प्रतिज्ञा है । फँसा है नियमसार जिसको सबके प्रत्यक्ष केवलज्ञानके घासी और समस्त द्वादशांगरूप द्योतकके पारमार्थी ऐसे भक्तकेबन्दी कह चुके हैं । इस वाक्यके कहनेसे आचार्यने यह दर्शाया है कि मैं जित परमात्मको कहूँगा, वह अपनी मनोक्तिके नहीं कहूँगा, कि तु जैसा मेरे गुणने निरूपण किया है वही अनुसार कहूँगा । यह नियमसार परमात्म समस्त भक्त जीवोंके समुदायका हितकारी है । इस तरह भी बुद्धि, आनन्द, आनन्दके अपने इस देवताकी स्तुति करके प्रतिज्ञा की है ।

दोकाकार कहते हैं कि इस जगमें श्रीमहावीररामाजी जयवत होत । ऐसे हैं स्वामी जिन्होंने अपने शुद्ध भावोंके द्वारा कामदेवका नाश किया है जो तीन लोकके मनुष्योंमें पूज्य हैं, जिनके पास पूण ज्ञानका एक राव्य है, जिनको देवोंके समाज नमन करते हैं, जिन्होंने समस्त ब्रह्मके भाज राग द्वेषको नष्ट कर दिया है, जो केवलज्ञान दर्शन आदि ब्रह्मकीके निवाच हैं, तथा जो समस्तशरणमें विराजमान हैं ।

आगे मोक्षमारा और ब्रह्मका फल दर्शन करते हैं —

मग्गो मग्गफलत्ति य दुविहं, जिणमासणे समक्खउदं ।

मग्गो मोक्खउवापो, तस्स फलं होदं जिन्वार्णं ॥ २ ॥

शामाय अर्थ—जिनशामनमें माग और मागका फल देने की भेद है, जिनमें मोक्ष प्राप्तिका उपाय जो ही माग है, और निवागही प्राप्ति सब मागके सेवनका फल है ।

विशेष अर्थ—यहांपर मागसे प्रयोजन शुद्ध रत्नप्रपञ्चे है, जिसका फल मोक्षरूपको द्वाके शूद्र भास्वर द्वाकावहित अलंकार रूप विद्वत्पनेकी प्राप्ति है, अर्थात् मोक्षका करना है । जिनशासनसे प्रयोजन सब उपदेशमें है जिसका परम बीतराग सर्वज्ञ भगवानने तथा चार ज्ञानके धारो गण्धादि पूजावर्णन कहा है ।

सम्पन्न, ज्ञान आदिप्रदो पद्धता मक्षमाग है । केना है मोक्षमार्ग, जो परम निरपेक्ष निश्चयनयके द्वारा निज शुद्ध परमरम सरवका यथायं भद्धान ज्ञान और अनुभव स्वरूप शुद्ध रत्नप्रपञ्चमय है । इस मागक मनन और सेवनस जो निवागफल प्राप्त होता है वह अपने आत्मस्वरूपको सम्पूर्णतया प्राप्तिरूप है ।

भावार्थ—निवागको आत्मको प्राप्ति तथा शून्य अवायाके कहनेवालोंके निराकारक अर्थ यह विवरण है कि निवाग प्राप्त होनेसे इस आत्मको अपने सधे स्वरूपकी प्राप्ति हो जाती है । जब कर्मोंक परदे दूर हो जात है, तब वह आत्मा स्वयं हो परमात्मा हो जाता है, और अपनी सत्तामें आपस रहकरके अपने अतीन्द्रिय परम शासनय स्वभावको अनेकदाल भोगता रहता है ।

यहां टीकाकार कहते हैं कि यह सब रोजन करीं तो आँकी रतिषं अवन जो सुख सबको तरफ जाता है, करीं स्वको रक्षामें अपनी बुद्धिको कर लेता है, परन्तु जो बुद्धिमान पुरुष है सो जिनके धर्मका लाभ कर अपने आत्मस्वरूपमें रह होता है । ऐसा ही ज्ञानी इस मुक्ति अवस्थाको प्राप्त होता है ।

आगे नियम शब्द का अर्थ साधारण क्यों किया है, इसका प्रयोजन कहते हैं—

नियमेण य ज वृत्त, तन्निपम णाणटसणचरित्त ।

विररीयपरिहृत्य भणिट, खलु मारमिटि वयण ॥ ३ ॥

सामा य अर्थ—नियम करके जो करने योग्य हो सो नियम है । सम्बन्धन ज्ञान चारित्र ही नियम है इससे विद्वद् कोई नियम नहीं है । इसी लिए निश्चय करके चार ऐसा वचन कहा गया है ।

विशेष अर्थ—दूसरे भाषा में नियम शब्दके अर्थ साधारण दिये जानेके लिए स्वभाव रसप्रयुक्त स्वरूप कहा है । जो महज स्वाभाविक अपन कर्तृत्व पारिणामिक भावमें ठहरा है, जो स्वभावसे अनंत वृत्त, ज्ञान, सुख, धीयरूप जैसे अनंत चतुष्टयरूप है, तथा जो शुद्ध चेतनाका परिणाम है सो नियम है । नियम अर्थात् निश्चय करके जो प्रयोजनमूलक करने योग्य कार्य है वह वृत्तज्ञानचारित्र है । इसका निश्चय स्वरूप ऐसा है कि भगवान परमात्माके अतीन्द्रिय सुखकी रुचि करनेवाले जीवमें शुद्ध अंतरंग आत्माके तत्त्वके आनन्दके उपजनेका स्थाय अपन शुद्ध जीवात्मिकायका जो परम भक्तानन्द ही प्रतीति, सम्पूर्ण निश्चय, सो ही वृत्त है । परन्तु यका आत्मस्वप्न न करके अंतरंगम अपना उपयोग रक्षकके योगशक्तिकी निष्कटतासे अपन ही आत्मिक परम तत्त्वका ऐसा ज्ञान कि यही संपादन-मार्ग करन योग्य है सो ही ज्ञान है । तथा निश्चय दर्शनज्ञानमय कारण परमात्माके स्वरूपम अविच्छिन्न अर्थात् हृत्ताके आत्ममें लक्ष्मीन या त मय ही जाना सो ही चारित्र है । ऐसे निज्जामिक तत्त्वकी सम्यक्दर्शित कर्मीका यथार्थ ज्ञान तथा अधोर्म एक रूपसे ठहर जाना सो ही नियम है । यही नियम निर्माणपदका कारण है । कारण सदृश्य ही काय होता है ।

स्वरूपमें स्थिरता करनेका अभ्यास ही वास्तवमें अतकाल तक स्वरूपमें स्थिर रह जानेका उपाय है। यही सार उत्तम षट्कृत्य करने योग्य उपाय है। इसके सिवाय भव असार है, विपरीत है, हेय (त्याग योग्य) है। इससे उल्टा स्वरूप असार है, इस बातक बतानके लिए सारपदको नियमके साथ रत्नत्रय प्रयोजन है। इस प्रकार नियमसार शब्दकी साधकता बणन की। यहाँ टीकाकार कहते हैं कि मैं विपरीत स्वरूपसे रहित अनुपम सर्वश्रेष्ठ रत्नत्रय स्वरूपकी प्राप्ति करके मुक्तिरूपी श्रोतं वरपत्र जो अतीन्द्रिय आनन्द-बिच्छास तिसको प्राप्त करता हूँ।

ध्याने कहते हैं कि रत्नत्रयका भेद करके उद्भजन करना युक्त है—

णियम मोन्मुख उत्रायो, तस्मफल हवति परम णिन्नाण ।

एदमिं तिण्हं पिय, पत्तेय परूयणा होड ॥ ४ ॥

सामान्य अर्थ—मोक्षका जो उपाय है सो नियम है और इन नियम धारनेका फल परम निर्वाण अर्थात् मोक्ष है। नियम साम्यादर्शनज्ञान चारित्ररूप है, इसलिये इन शीनोंका भी प्रगट अलग अलग बणन आगेके सूत्रोंमें किया जायगा।

विशेषार्थ—अनादि तथा मादि कालसे ससारी आत्माके बने हुए समस्त कर्मोंके छूट जानेसे जो महा निठपम, अविनाशी, अतीन्द्रिय आनन्दकी प्राप्ति होती है वही अदा आनन्दस्वरूप परम निर्वाण अर्थात् मोक्ष है। तथा आत्माको अभेद रत्नत्रयरूप जो परिणति है सो ही इस महानन्दकी प्राप्तिका उपाय है। परन्तु इस अभेद रत्नत्रयका स्वरूप भेद-रत्नत्रयक जाने बिना अपने अनुभवमें नहीं आसकता, इसलिये आचार्य दशान ज्ञान चारित्रको भिन्न भिन्न प्रतिपादन करनेकी प्रतिज्ञा करते हैं।

आगे व्यवहार सम्यग्दर्शनको कहते हैं—

अचागमतचाण, महहणादो हवेइ सम्मत्त ।

नवगयज्जेसदोसो, सयलगुणप्पा हवे अत्तो ॥ ५ ॥

सामान्य अर्थ—आप्त अर्थात् आगमके ईश देव, आगम अर्थात् जिनबाणी तथा आगममें बणन किये हुए तत्त्व इन चीनोंके ज्ञान करनेसे व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है। तथा आप्त बही है वो सम्पूर्ण दोषोंसे रहित और सम्पूर्ण गुणमय है।

यहा टीकाकार कहते हैं कि मुनियोंके किये शुद्ध रत्नप्रय स्वरूप अपने ही आरमाका होना मोक्षका सपाय है, अथ न तो कोई दर्शन है न ज्ञान है और न चारित्र्य है। ऐसा ही सबारसे मुक्त बीररह्यत्व भगवानने कहा है। ऐसा जानकर भयजीब फिर कभी किसी माताके चरमें नहीं जाता है, अर्थात् गर्भ अमके सङ्घट्टोंसे छूट जाता है।

विशेष अर्थ—आप्त अर्थात् पूजनेयोग्य देव अथवा आगमका बच्चा सम्पूर्ण मोह राग द्वेषादिक दोषोंसे निर्मुक्त है और सर्वज्ञ बीतराग आदि आत्मोक्त गुणोंसे विभूषित है। ऐसा गुणवान् बच्चा ही परके हितरूप उपदेशको सधार्थ्य दे सकता है। इसके अनिश्चित जो राग और द्वेष तथा स्नेह, भय, काम, निद्रा, खराबचरित्र, पगतके बीबीको वृण्ड देनेका गुण इत्यादि दोषोंसे विभ्र हैं उनके बचन सधार्थ्य बीतरागरूप नहीं हो सकते। बीतरागीहीके बचन बीतरागरूप हो सकते हैं। इसलिये सरयान् आप्त श्री अरहन्त भगवान् हैं, जिनको जैन प्रतिमाको दूरकर तथा पूजा कर परम बीतरागरूप निमित्तका सम्भ्र व मिठनेस भयजीब अपने भावोंको उज्ज्वल विशुद्ध और सरायमय करते हैं। ऐसे सधार्थ्य आप्तके मुखकमलसे प्रगट होनेवाली जो दिवो

परदेशमय दिव्य ध्वनि, जो ही समस्त पदार्थोंके विस्तारके समर्थनमें प्रकीर्ण सदा आगम है। अंतरंग तत्त्व परमात्मा तथा बाह्य तत्त्व परमारम स्वरूपसे भिन्न पदार्थ, ऐसे दो तत्त्व हैं, अथवा जीव, अज्ञीव, आसृज, अंध, सबर, निपरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। इन तत्त्वोंके प्रदर्शन कर्मानेवाले आगम हैं। आगमके द्वारा इन तत्त्वोंका स्वरूप जानना बहुत कायकारी है। इषीद्विधे सरथार्थ आगम और तत्त्वोंके यथाथ भट्टान करनसे सम्यग्दर्शन होता है। सबसे प्रथम यही उपदेश है कि वीतराग सबदको भले प्रकार अपना दितु मानें। जब अपने अंतरंगमें आपका निश्चय हो जायगा तब सबद ही आगम और तत्त्वोंका निश्चय जम जायगा। इषीद्विधे निर्दोष आपमें भट्टा कराना ही सम्यक्का प्रथम उपाय है। यहा टीकाकार कहते हैं कि हे सत्कारके भयको मिटानवाली जिनवाणीरूप भगवती ! जो इष डोकमें तेरी भक्तिको नहीं करता है वह सत्कार समुद्रके मध्यमें जो दु खरूपी प्राइ है उसके मुखमें चला जाता है।

आगे आप अठारह दोषोंस रहित होता है, इसद्विधे १८ दोषोंके नाम कहते हैं -

छुइतण्डभीरुसो, रागो मोहो चिंता जरा रुजा मिञ्चू ।

स्वेद सुद मदो रइ, विस्त्रियणिदा जणुज्वेगो ॥ ६ ॥

सामान्य अर्थ—ऊपर गाथामें बणन किया हुआ आप १८ दोषोंस रहित होता है, सब आपके छुवा, लुपा, भय, क्रोध राग, मोह, चिंता, जरा, रोग, मृत्यु, पत्तोना, स्वेद, मद रति, अक्षय्य, निद्रा, ज म, आडुबता ऐसे १८ महाबाध नहीं हात हैं।

विशेष अर्थ—अप्राता वेदनी कमके तीव्र तथा म र उद्यसे चित्तमें क्लेशका होना जो छुवा अर्थात् मृगही पीड़ा है। केबली



अरह उनके मोहनो कमके अभाव होनेसे वेदनी कर्म सुधा उपजानकी समथ नहीं है। वेदनीय कर्म मोहकमकी प्रकृति रति तथा अरतिके माध ही परद्रव्यसम्बद्ध वजनित सुख तथा दुःख वेदन करानको समथ है। मोहके नाशसे जब बीतरागी प्रमु अपन खान दमय स्वरूपमें उबछोन हो गये और अतीन्द्रिय अनन सुरक्षा स्वाद लेन आ गये तब उस अनुभवरावादीके उपयोगकी इटाकर सुधाको वेदना कराना और फिर सुधाका दुःख मिटकर साताका होना यह बात संभव नहीं है। अतरायके नाशसे अनन बढके घनीको सुधासम्बन्धी नियन्त्रता नहीं पदा हो सकती है।

इमी कारण साधारण मनुष्योंके समान आहार अर्थात् चार प्रकारक भोजनमेंसे किसीका भी ग्रहण केबली आप्तके नहीं है। इनकी इद परमौदारिक हो जाती है, जिनकी स्थिति शुद्ध नोकमबागाओंके प्रणसे ही हो जाती हैं। अनन अणुप्रयके स्वामीको सुधाका दीप कहना उनके अनंत अणुप्रयमें बाधाका देना है। इसलिये स्वामीके स्वाभूत भोजन ही है, जो उनकी अनादि काढकी गभीर सुधाको समय समय मेंट रहा है। अछाता वेदनी कमके तीज, तीजतर, मद् और मंदतर उदयके बशसे पोदाका पैदा होना सो तथा अथात् प्यास है, सो भी प्रमुके सम्भव नहीं है। आरमोक रसके पीनवालेको क्षणिक प्यासको बुझानेवाले जलकी इच्छा कैसे हो सकती है? इस लोक, परलोक, अरक्षा, अगुप्ति, मरण, वेदना, आकस्मिक ऐम मान प्रकारके भयका नाम भय है, सो प्रमुक शरीर भोग, इन्द्रियकृति सुख तथा घन, धा प, कुटुम्ब, घर, जमीन, आदी, सुबण आदिसे किसी प्रकारकी मूछा नहीं है। क्योंकि प्रमुन चारित्रमोहनी और दशनमोहनी दोनोंका अवधा नाश कर साका है इससे भोजिने द्र खव भयस रहित अरथ त निभय है। कोव कपायक उदयस तीज परिणामका होना

सो रोष अर्थात् क्रोध है । यह भी क्षमाशील शाव प्रमुके नहीं हो सकता । क्योंकि प्रमुन इस क्रोध क्यापक्षी सत्ताका ही नाश अपनी पूर्व अवस्थामें अर्थात् अनिवृत्तिकरण नबमें गुणाधानमें कर दिया है ।

राग दो प्रकारका है एक प्रशान्त अर्थात् गुम । दूसरा अपशात अर्थात् अगुम । दान, नील, प्रवचन, गुणजनोंकी घण्टावृत्त्य सेवा आदि गुम कार्यमें प्रवतनेवाला जो उपयोग सो प्रशात राग है और सो राज, चोर, भोजन इत चार सोनी क्यासक सुननम कीतृइल रूप हो जान इका मानना सो अपशात राग है । सा यह दानों ही प्रकारके राग प्रमुके नहीं हैं । क्योंकि प्रमुका राग गिबसुदरीक भाय गोष्टा करनमें प्रयुक्त है । चार प्रकार सब अर्थात् श्रुति, यति, मुनि, अनगर इनकी तरफ करमन्व भावका होना सो मोह है । सो आरमाके मोहीके परमंयकृत मोहका समबपना नहीं हो सकता । शुभ विचार करना सो प्रशात चिन्ता है । यह धमध्यान और शुद्धध्यानरूप है । अगुम विचार करना सो अशुभ चिन्ता है, यह आत्तध्यान और रीशध्यानरूप है । सो प्रमुक रक्तरनिश्रुताक होनेसे इस चिन्ताका प्रवेश नहीं है ।

यद्यपि शुद्धध्यान कहा जाता है, पर तु यह कथा मात्र रूप चारसे है । भीवीतरागी अर्थात् सुगीक चिन्ता होनेस सुखमें विशेष पद सकता है । सो प्रमुक चिन्ता नहीं है, इसो लये सुखमें विप्र नहीं है । तिर्यक और मनुष्योंक औदारिक शरीरका आयु कमके हानेके त्रिमिलस अजरा हो जाग अर्थात् घृडा हो जाना सो जरा है । जनतबलके धारी कोटिसुखम अधिक प्रभाषागके शरीरमें अगका स्वप्नमें भी प्रवेश नहीं हो सकता । प्रमुक नर केश हो बढते नहीं हैं । वायु पित्त, कफकी विषमवस पेशा हुई शरीरमें पीडा वसीका नाम रोग है । सा परमौदारिक महासु दर निश्रुत शाव ध्यानाकार शरीरमें किभी तरह भी नहीं

सत्य ही सक्तता । आदि और अंतसहित मूर्तिक, इन्द्रियोंकरके चिह्नित, आरमीक जातिसे बिच्छुण विजातीय भर, नारक, तिर्यक, दशगति सम्बन्धी बिभाव व्यजनपयाय अर्थात् औदारिक और बैक्रियक शरीरका ही नाश अर्थात् आत्माके सूक्ष्म कार्माण शरीरसे अलग हो जाना ही मरण है । सो प्रभुके परमौदारिक देहका छूटना कार्माण देहके साथ साथ होता है, इससे उनके ससारी जीवोंके समान मरण नहीं है । सत्तारियोंकी पर्यायका छूटना एक नवीन बिभाव व्यजनपयायक जन्म लेनेके बिय होता है । मरण ज म करके सहित है । उदा स्वाधीन आत्माका अब किसी भी देहमें उपजना नहीं है, इसी कारण प्रभुके मरण अथवा मरण सम्बन्धी वेदना ठयापती नहीं । ।

अनुम कर्मके उदयसे शरीरमें परिभ्रमके होनेसे दुर्गैवरूप जलवि दुर्बोधा प्रगट होना मो खेद अर्थात् पक्षीना है । सो स्वरूपान ही परम शुद्ध शरीरधारीके सम्भव नहीं है । जो परभु अपनेको अप्रिय है उसक लाममें जो रज करना सो खेद है, मो परिग्रह तथा मूर्छासहित स्वरूपानही स्वामीके खेदका प्रकाश कभी सम्भव नहीं है । सहज कबिताकी चतुराई, सम्पूर्ण मनुष्योंकी सुतनेस आन द हो ऐसी बचनकी पटुता, मनोस शरीर, उत्तम कुट, अतुल बल, अनुभव ऐश्वर्य्य आदिके होनेसे आत्माके भावमें अहकारका होना मो मद् है । ऐसा मद् क्षायकसम्यकरक्षारी, शरीरादिवरद्रव्य परिग्रहत्यागी तथा निज आत्माके सकृष्ट मार्दवगुणर्म आशक्तके किमो भी प्रकारसे नहीं हो सकटा । मनको प्यारी मनुष्योंमें गाद प्रीतिहा होना सो रति है । गिबनारीमें रति करनेवाले, परम कीरागी, सकृपविच्छुपयापारक्षारी मनके अभावकी रयनवाले प्रभुक अपनी निज अनुमृतिसे वो रति है, पर तु उसके सिवाय अब किमो भी परद्रव्य, परगुण व परपर्यायसे प्रीति नहीं है । परम समरसी भावनासे दूरवर्ती पुठवोंकी कभी किसी अपूर्व

बातुको जिसको पहले नहीं देखा है देखनेसे विरमय अथात् आश्चर्य है ।

तीन छोड़ गया अडोककी मूठ, वर्तमान, और भविष्य एवं दूर्वर्षीकी सर्व अकार्याओंकी अपन केवल वर्जन और ज्ञानसे एकही काष्ठमें देखने जाननेवालेके ऐसा कोई पदार्थ व उसकी कोई ऐसी पर्याय ही नहीं है जिसको कि अपूर्व कहा जाय । जब प्रभुके द्विये कोई अपूर्व बात ही नहीं है तब प्रभुके विरमय दोष नहीं हो सकता । केवल शुभ कर्मोंके बशसे देवगतिमें, केवल अशुभ कर्मोंके विभिन्नसे नर्कगतिमें, मायाचार करके त्रियैवगतिमें व शुभ अशुभ मित्रकर्मके बशसे मनुष्यगतिमें जाकर जीवका शरीरको प्राप्त करना सो ज म है ।

प्रभुने चारोंगतिमें जानेके कारणरूप माबोंका ही नाश कर दिया है । न प्रभुके देवआयुके बचके कारण खराग सयव, असयव, अकामनिपैरा, बाह्यतप आदिके भाव हैं, न जिने दू भ्रमोंके नीचे स्थिति है, जहा ही देवायुका बंध होता है, न स्वामीके मोह कर्मके अत्यन्ताभावसे नरकायुधवक कारण बहू आरम्भ और बहुपरिग्रह सम्बन्धी भाव हैं, न बीतरागीके त्रियैवायु बंधका कारण माया है और न अटल सुख भोक्ताके अल्प आरम्भ, अल्प परिग्रहके भाव हैं और न साधारण भादव न साधारण सम्पत्करव है, इसी द्विये प्रभु ज म अथवा अवतारसम्बन्धी कलेशसे मुक्त हैं ।

दर्शनावरणीय कर्मके उदयसे ज्ञानव्योतिका अचेत हो जाना ही निद्रा है । प्रोअहेत परमेश्वरने पहले ही दर्शनावरणीय कर्मका नाश कर डाला है, इच्छित्ये निरंतर निज स्वरूपाबडोकनमें जागृत हैं, उस समय भी अचेतनको भजते नहीं । इष्ट चेतन तथा अचेतन अथवा-विभ-पदार्थोंसे वियोग प्राप्त करने परबहादुरके शरीर उद्वेग अथात्

प्रभुने समस्त पदार्थोंमें समस्त भावका आत्ममयन किया है, इससे यह आकृष्टता संभव नहीं है। इत्यादि १८ महादोष हैं जिन दोषोंको करके समस्त तीन लोक व्याप्त हो रहा है, अर्थात् तीन लोकके सर्व ही जीव इन दोषोंसे प्रसूत हैं।

इन्द्र, अरुणेंद्र, नवग्रह, भवनवासी वयं तर, यश, यक्षिणी, चंद्रिका, अम्बिका, काञ्चिका, अक्रवर्ती, महलेश्वर महाराजा, राजा, सेठ, धनी, पंडित, मूर्ख, दरिद्री, रोगी, कामी, सिद्ध, व्याघ्र हाथी, मोर, मूषक तथा समस्त नारकी इत्यादि समस्त ससानी जीव १८ दोषोंसे पी डत हैं। इन महादोषोंसे सर्वथा रहित भीषीतराग सर्वेश्वर ही हैं, इसी लिये बही सबसे आत्मा देव, पूजनीय माननीय और भजनेयोग्य हैं। ऐसा ही आत्मक गण हमको मोक्षमार्गका देनेवाला है। जैसा एक आचार्यन कदा है—

“ धर्म बही है जहा दया है तप बही है जहा विषयोंक निग्रह है, तथा देव बही है जो १८ दोष करके रहित है। इस विषयमें शका नहीं करनी। ” ऐसा ही श्रीबिद्यानंदिरचामीने भं कदा है कि “ अभीष्ट फल जो मुक्ति, विषयी सिद्धिका तथा आत्मज्ञान है। आत्मबोध सुशास्त्रे होता है और सुशास्त्रक उत्पत्ति आपसे होती है, इसी कारण बुद्धिमानोंके द्वारा धर्म पूजने योग्य होता है। क्योंकि सज्जन पुरुष अपने ऊपर किये हुए किछीके उपकारको भूलते नहीं है। ”

अभिप्राय यह कि सबल निर्दोष परम हितोपदेशी आप हं अथवा जीवोंका परमोपकारी है, इसीलिये आत्मकल्याणके इच्छुओंके बही ध्यान करनेयोग्य है। यहा टीकाकार कहत हैं कि भानेनिनाथरचामी हमको निरंतर सुख करतू। कैसे हैं स्वार्थ जो सी इतिहास पूज्य हैं। अतिशयरूप सम्यग्ज्ञानका पाया राव्य नि होने, कामविजयी देव ऐस लोकान्तक दशोंके नाथ हैं

दुष्ट अणुओंके समूहको जिह्वाके विषयमें किया है जिनके कारणोंको नारायण ब्रह्मभद्र नामधार करत है, जो भव्यश्रीव कमलोंके मकुटहस्त करनेके लिये सूर्यके समान हैं तथा जो आनन्दके स्थान हैं । ६ ॥

अ तो उर्ध्वर परम देवता स्वस्व और मा कृत है—

शिसोमदीमुराहिओ, केवलणाणापरमरिमयजुदो ।

सो परमणा उधर, तन्त्रिवरीओ ण परमणा ॥ ७ ॥

सामग्य अर्थ—जो समूह वर्णोंमें रहित है और जो कबल ज्ञान आदि परम वैश्वर्यसे संयुक्त है वही परमात्मा कहा जाता है। इसमें जो विपरीत अर्थोंमें विच्छेद है वह परमात्मा नहीं है।

विशेषार्थ—आत्माके गुणको प्राप्त करनेवाला ज्ञानावापी बुद्धना वाली अक्षराय मोहनी ऐसे चार पाण्डिया कृत हैं। इनका सर्वथा नग कर देनेसे वह परमात्मा अवशेष रहित है, अथवा पूर्वोक्तार्थकित १८ महाशेषोंके निर्मूलन कर देनेसे वह परमात्मा निर्णय है। अणुण मक्षरस निगल देस कबलक्षण, केवलवदन, परम कीतराणा परमानन्द आदि अनेक अक्षरत विभव और अष्टमात्रिहायादु बहिरण विद्वितिस वह परमात्मा अविशय करके सुशोभित है। तथा जो निर्वाच और विमलपुक्त हान पर भी कायपरमात्मा है, अथात् ही कायमें अणुण आवरणों करके रहित, निग, आनन्दमय, एकरवस्व, निजकारण परमात्माकी भावनासे एतन्न दृष्टा देखा कार्य परमात्मा वही भगवान् अर्हत् परमेश्वर है। इस भगवान् परमेश्वरमें विपरीत गुणोंके घाती सर्व ही दबायाज जो दक्षपनक अविमानस दख हैं, परन्तु देव नहीं वे सब ही संघाती हैं।

श्रीकृष्णकृपावग्य दूसरे मयही एक गधामे कहते हैं—

४१ जिह्व इवचा नेत्र अजल वहीन अनेन जल अजल एव नैऋतम्—

तथा तीन लोकमें प्रधानपना है ऐसी महिमाका घाती ही अरहत् होता है ।” श्री अमृतचद्रसूरि कहते हैं —“जो अपनी कात्तिसे दशों दिशाओंको सज्जडा करते हैं, जो अपने तेजसे बड़े बड़े तेजधारियोंके तेजको रीकते हैं, जो अपने रूपसे मनुष्योंके मनको हरते हैं, जिनकी दिव्यध्वनिसे कानोंमें मानों साक्षात् अमृत बपता है ऐसा सुर होता है, वे ही १००८ लक्षणके घाती तीर्थंकर भगवान व दना योग्य हैं ।

भावार्थ यह कि श्री अरहत् परमात्माको अपना परोपकारी समझके उनको ही आप्त मानके पूजना व दना योग्य है ।” यद्वा टीकाकार कहते हैं कि जिस अरहत्के ज्ञानरूपी कमलमें भ्रमरके समान यह लोक और अलोक निरय स्पष्टरूपने प्रतिमासमान है ऐसे श्रीनेमिनाथ भगवानको मैं निश्चय करके यजन करता हू । वही प्रभुके प्रसादसे मैं तीव्र तरंगवाले संसार समुद्रको अपनी दोनों मुञ्जाओंसे तर चङ्गा ।

आगे परमागमका स्वरूप कहते हैं—

तस्म मुहम्मरयण, पुग्नावरदोमनिरहियं मुद्धं ।

आगममिदि परिक्रहिय, तेण दुग्हिया हवति तच्चत्या ॥

सामा य अर्थ—ऊपरकी गाथामें कथित श्री अरहत् परमात्माके मुखसे निकटे हुए बचन पूजापर दोष करके रहित हैं, और शुद्ध हैं, वहीको आगम कहते हैं । वही आगममें तत्त्वार्थोंका बणन किया गया है ।

विशेष अर्थ—निश्चय करके वही परमेश्वरके द्वारा परमागमका उद्योत हुआ है । केमा है परमागम, जो श्रीअरहत्के मुख्यकमलमें निश्चले चतुर बचनरचनाका समूहरूप पूजापरदोषसे रहित है । श्रीअरहत् आप्त सर्वज्ञ शीतराग हैं, इसी लिये उनके बचनोंके कथनमें ऐसा दोष नहीं है कि पूर्वका कथन आगेके कथनसे सदोषी

हो जाय । जो अस्वस्थ शरीरके रक्षा होने हैं उनके शरीरों पर हीरक कीर पड़ता है कि एक स्थानमें जिनको पुन किया है, वहीको दूसरे स्थानमें बिना किसी विशेष उपद्रवके शिथिल कर दिया है अथवा निराकरण कर दिया है, परन्तु सर्वत्र कीर्तनात्मक परमात्मामें यह हीरक नहीं है । तथा जो परमात्म दिशादि पापनिश्चयी पुष्टि के अभावमें शुद्ध है, क्योंकि निमज्ज कीर्तनात्मक भगवान्क द्वारा प्राप्त है । ये भगवान् कदापि भी हिंसाका समर्थन नहीं कर सकते । इसी परमात्मामें जीवादि मात्र तत्र हीरक पदार्थादि कथन है । वेदा है परमात्म, असृष्टत्वं है, जिनके रसको मद्य आदि कर्तव्यो अजयोते पतं है । फिर वेदा है, मुक्तिरसं मुक्तिके मुख्यता एवं है अर्थात् जिनको दशम मुक्तिरसं कर्तव्य प्राप्त होता है । यही परमात्म सदात्मकी महाप्रभुमें लूट रहे जो समस्त भवजन इनको हाताहत करने की समर्थ है । यही महान् वैश्वरूपी महत्क शिखरका शिखरदि है, अर्थात् वेदात्मकी श्रेया परमात्मक है। निमज्ज मोक्षरूपी महत्कमें यदुनेके द्विये यह परमात्म है । अर्थात् काम भोगकी तुल्यमें वरत्र अनुपरागके अगोचर बनने हुए समस्त दुःखानोंक महान् बलेकी नाशनेकी समर्थ जलसे मरे मेधात् समान यह परमात्म है ।

भा.वार्थे—इस संसारके बलेशय पीड़ित जकों द्विये परमात्मका अर्थात् परम शरण है । परमात्मके जीव अर्थात् तत्त्वोंको यथाथ जान अपन अनादि अज्ञानकी छोड़कर धारमज्ञानको कर सकता है । तथा धारमज्ञानमें विपर होनेहीसे धोवकी विभाव भावसं मुक्ति होती है, इसद्विये धर्म आर्थोंको शिखर पठन-पाठन, भवज, मनन, चिन्तन, अनुभवन तथा व्याख्यान निरन्तर कर्तव्य है । समाद् छोड़कर इस अर्थात्में सर्वतना योग्य है । श्रीमत्समस्तत्राचार्यन कहा है—“आत्मका ज्ञान इधीका नाम है कि आत्मक अर्थको न तो कम न अधिक न विपरीत न सद्वपुष्क जेष्ठाका ऐसा यथाथ जानना ।”



इसलिये भव्य जीवोंकी उचित है कि परमाणुकी सर्वत्र कीतरागका उचित मझाकर समक बचनोंमें सङ्गृहणित हो बिलमें प्रारंभ कर पना दृष्टाण करें। जिनवचन प्रतीति किंय ज्ञानिस अमृतफलको फलते हैं।

यहां टीकाकार कहते हैं कि मैं प्रतिदिन जिनेत्रकी सख्य बाणीको उमरकार करता हू। वैसी दे वाणी प्रथम उचित अथात् मनोहर है, शुद्ध है, नियोजका कारण जो रतनत्रय सबसे प्रातिका उपाय है, सम्पूर्ण प्राणियोंके कानोंको सीधनेके लिये अमृत है। भवभवके लंगडमें चली हुई अस्मिन् पौष्टिक मनुष्योंका शत करनके लिये जलके समान है, तथा जिनबाणी जैन योगियों करके सदा ही बन्दनीक है।

अथ तत्त्वार्थ कौन कौन हैं, उनके नाम कहत हैं—

जीवा योगलकाया, धम्माधम्मा य काल आपास ।

तद्यत्था इदि भविता, णाणा गुणपञ्चअहिं संसुत्ता ॥ ९ ॥

सामान्य अर्थ—जीव, पुरुष, धम, अधर्म, काळ और आकाश ऐसे छह द्रव्य तत्त्वार्थ कहे गये हैं। जैसे हैं यह। नाना गुण और पर्यायों करके प्रकृत हैं।

विशेषार्थ—अपश्चन रसन प्राण चक्षु भोज मनबल बचनबल कायबल आयु तथा आसोच्छ्वास ऐसे दश प्राणोंसे समहनय करके जो जीता है जीवेगा तथा जीता आया है वही जीव है। निश्चयकरके भाषमाण अर्थात् चैत य प्राणके धारण करनसे जीव है, व्यवहारकरके द्रव्यमाणके धारनेसे जीव है। शुद्ध अद्भुत व्यवहार नरकरके वैश्वज्ञान आदि शुद्ध गुणोंका आधारमूल होनेसे कार्य शुद्ध जीव है। अशुद्ध अद्भुत व्यवहारनयके भविज्ञान आदि विभाव गुणोंका आधारमूल होनेसे कारण शुद्ध जीव है।

यह पेट व है, इसके चेतनत्व व प्रम है, यह अमूर्तक है, इसके गुण भी अमूर्तक हैं, जो जीव गुण है इसके कुछ गुण हैं, जो जीव अमूर्तक है इसके अमूर्तक गुण हैं, येम ही इसके चेतनत्व भी हैं । गठने और पुरनके स्वभावका गामो पुरन है स्वैरारि बन्हा आकार है, मूर्तक है इसके मूर्तक ही गुण है, यह यह मूर्तक रम, गान, बनेमप है यह अचरम है, इसके गुण भी अचरम हैं । अपन ईश्वरमपु जितने पदाय है, यह पुरन है ।

स्वभाव अथवा विभाक्से गमन क्रियासे परिजमन करनेवाले जीव और पुरनोंकी स्वभाव अथवा विभाक्से गमन करानेका उदाघोन करण प्रम द्रव्य है । स्वभाव अथवा विभाक्से विधिति क्रियासे परिजमन करनेवाले जीव पुरनोंकी उदाघोनरूपसे विधिति करानेका हेतु अथम द्रव्य है । अथ पापों द्रव्योंकी अकाल्य इनके अक्षयकी धरनेवाला आकार द्रव्य है । अथ पापों द्रव्योंकी धरना करानेका हेतु वाक द्रव्य है । धम, अथम, आकाश, वाक ये चार द्रव्य अमूर्तक हैं । इनके गुण ही गुण तथा कुछ ही पदाय हैं । यहा टीकाकार कहते हैं कि यह पट द्रव्य रूपी रज, च्योतिक अमूर्तसे प्रकाशमान भी जिनद्रुक म गेरूपी समुद्रके मध्य स्थित है । और बहीच प्रगट द्रव्य है । जो कोइ निमल बुद्धि अपनी शोभाक द्विय इन मूर्तकी हृदयक भीतर धारण करवा है वह मूर्तकी मेष अक्षीरूप कोवा पति होता है ।

आगे जावके उपयोगका उद्यम कहते हैं—

जीमो उवओग्गमओ, उवओमो पाणडमणो होइ

दो प्रकार है। ज्ञानोपयोग दो प्रकारका है, एक स्वभाव ज्ञान, दूसरा विभाव ज्ञान।

बिज्ञेयार्थ—आत्माके चैतन्यगुणके साथ वर्तनेवाला जो परिणाम सो उपयोग है। यह धर्म है। आत्मा उसका धर्मी है। दीप और प्रकाशके समान इन दोनोंका सम्बन्ध है। यह उपयोग दो प्रकार है—

एक ज्ञानोपयोग दूसरा दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग स्वभाव ज्ञान और विभाव ज्ञान ऐसे दो भेद रूप है सो आत्माका निज ज्ञान है। यह ज्ञानोपयोग स्वभाव अपेक्षा भी दो प्रकार है—एक कार्य्य स्वभाव ज्ञान, दूसरा कारण स्वभाव ज्ञान है।

इसी केषदज्ञानका कारणरूप परम पारिणामिक स्वभावमें स्थित हीन काष्ठ सम्बन्धी सर्वे उपधि अर्थात् विभावरहित ऐसा जो आत्माका सहज ज्ञान अर्थात् स्वरूपरूप ज्ञान सो कारण स्वभाव ज्ञान है। कारण स्वभाव ज्ञानके द्वारा ही कार्य्य स्वभाव ज्ञान प्राप्त होता है। विभाव ज्ञान हीन प्रकार है—कुम्भति कुम्भत और बिभंग अक्षति। यहा टीकाकार कहते हैं कि जो कोई जिने वृक्षचित्त सम्पूर्ण ज्ञानके भेदोंको जानकर परभावोंको त्यागता है और अपने आत्मीक स्वरूपमें स्थिर होता है तथा चैतन्यके स्वमन्कारमात्र स्वभावमें प्रवेश करता है वही जीव मुक्तिरूपी स्त्रीका पति होता है।

आगे इसी ज्ञानोपयोगके भेदोंको आगेकी दो गाथाओंमें कहते हैं —

केवलमिदियरहिय, असहाय त सहारणाण चि ।

सण्णाणिदरवियप्पे, मिहावणाण हवे दुविहं ॥ ११ ॥

सण्णाण चउभेय, मदिसुदओही तहेंन मणपज्जं ।

अण्णाण तिमियप्प, मदिवाई मद्ददो चेव ॥ १२ ॥

सामा यार्थ—अतीन्द्रिय अक्षहाय जो केवलज्ञान है सो स्वभाव ज्ञान है। संज्ञान और विभाव ज्ञान ऐसे दो भेद और हैं। संज्ञानके चार भेद हैं—मति, भ्रुत, अर्थाथ तथा मन पदययज्ञान। विभाव ज्ञान अर्थात् अज्ञानके तीन भेद है—दुर्माति, सुभ्रुत और कुमबधि।

विशेष अर्थ—केवलज्ञानका स्वरूप तर्पानिरहित है, निराकरण है—किसी कमका आचरण नहीं है ममवर्ती ज्ञानसे रहित है, समस्त पदार्थमें एक ही समय सो ज्ञान व्यापक है तथा अक्षहाय है। केवलज्ञान, बिना किसी इन्द्रो और मनके सहायके स्वयं ही प्रत्यक्षरूपसे पदार्थाधी आनता है। इसीका नाम कटय स्वभाव ज्ञान है। इसका कारण ज्ञान भी एसा ही होता है। क्योंकि वह कारणरूप शुद्ध ज्ञान अपने परमात्म स्वभावमें स्थित हो अद्वैत ब्रह्म, अद्वैत चरित्र, अद्वैत सुग्य और अद्वैत परम चैत य शक्ति ऐसे चार जो निज कारण समयसार उनको एक ही समयमें अनुभव करानेको समर्थ है, इसलिये केवलज्ञान सदृश ही आनन्दका दाता है। ऐसे शुद्ध ज्ञानका स्वरूप कहा। अब गुढागुढ ज्ञानके स्वरूप भेद कहते हैं। अनेक विद्वत्पांदा धारक मति ज्ञान है।

जो मतिज्ञानकरणे कमके क्षयोपशमरूप उपबन्धिव अर्थात् प्राप्ति और उपयोग रूप है, तथा अक्षमह ईहा अबाय धारणा इन चार भेदरूप है, तथा बहु बहुविधादि भेदस अनेक प्रकार हैं। मतिज्ञान दर्शनपूर्वक होता है। दर्शन आरमाका वह उपयोग है जो पदार्थके ग्रहण करनेसे पूर्व हो। पदार्थका सामा य निराधार ग्रहण दर्शन है। इसीके आकारका इतना ग्रहण करना जिससे अधिक ज्ञान किया जा सके सो अर्थात्समह है। यदि अधिक ज्ञान होने योग्य ग्रहण नहीं होता तो नम ग्रहणको व्यञ्जनादप्रह कहते हैं। इसमें ईहा, अबाय, धारणा नहीं हो सकती। अर्थात्समह द्वारा प्रतीक पदार्थका विशेष

वपर्योग है सो ईहा है । निश्चय हो जाना सो अबाध है तथा वधीको काया ठरमें नहीं मूढना सो धारणा है । ये मतिज्ञानके मुख्य चार भेद हैं—बहु, बहुविधादि चारह भेदको इन ४ भेद और पाच इ त्री और एक मन ऐसे ६ से गुणा करनेसे २८८ भेद अथावप्रदके होते हैं तथा व्यवहारावप्रदमें १२ भेदोंका चक्षु और मन बिना ४ इन्द्रियोंसे गुणनेसे ४८ भेद होते हैं । इसप्रकार मतिज्ञानक सर्व ३२६ भेद होते हैं । इनका विशेष भाष भोसर्वाधीर्षादि लोकासे जानना । अत ज्ञान उच्च और भावनाके भेदस से प्रकारका है । अत ज्ञानावरणी चर्मका अयोपशम सो उच्च और समके होते वपर्योगका जोड़ना सो भावना है । अर्थात् ज्ञान तीन प्रकार है—देशाधि, अर्थाधि और परमाधि ।

मनपर्ययज्ञानके दो भेद हैं, अजुमति और विपुलमति । परम आरमीक भावमें तिष्ठनेवाले सम्यग्दर्श जीवके यह चार संज्ञान अर्थात् सम्यग्ज्ञान होते हैं । मिथ्यादर्शनके होते हुए मति, अत, अर्थात् इन तीन ज्ञानोंको कुमति, कुअत और बिभगाज्ञान कहते हैं ।

यहा जो स्वरूपका सहजज्ञान है सो शुद्ध अतरंग स्वरूप जो परम तत्त्व लक्षमें व्यापक अर्थात् फैला हुआ होनेसे स्वरूप प्रत्यक्ष है । क्षेत्रज्ञान सम्पूर्णपने प्रत्यक्ष है । आत्मा बिना किसीकी सहायतासे स्वयं जो जानता है सो प्रत्यक्ष है । अर्थात्ज्ञान स्वी मूर्तिक पदार्थको जानता है, तथा यह एकदेश प्रत्यक्ष है । मन पर्ययज्ञान अर्थात् ज्ञानस ज्ञान हुए पदार्थके अनतभागरूप वस्तुके अशको ग्रहण करनेवाला और एकदेश प्रत्यक्ष है ।

मति अत ज्ञान दोनों हो निश्चयसे परीक्ष हैं, परन्तु व्यवहारमें प्रत्यक्ष हैं । प्रयोजन यह है कि इन वहे हुए ज्ञानके भेदोंमें आशात् मोक्षका मूळ एक निज परम तत्त्वमें लक्ष्मीन सहज ज्ञान

ही है। यहो स्वाभाविक ज्ञान मन्वज्जीवका परम स्वरूप होनेसे स्वभावस्य पारिणामिक ज्ञान भी है—अपने ज्ञानानन्द स्वरूपका जो स्वाभाविक अर्थात् सहजज्ञान है—उसके निश्चय और कोई ज्ञान उपार्थ्य नहीं है।

यह सहजज्ञान चैत यका विद्यामन्त्र है। सदा स्वाभाविक परम धीतराग सुस्वामृतमय है, बाधा और आकर्णित परम चैत यद्य विद्यामन्त्र है सदा शक्ति रूप है, मदा अतर्मय अपने स्वरूपमें निश्चल स्थितिरूप स्वाभाविक परम पारित्रमय है, लीन काष्ठमें नहीं दृग्गन्धादा है, सदा तिष्ठतर्था परम चैतयस्वरुदा भ्रदानाशरूप है स्वभावसे अनंत दशक ज्ञान सुख बोध ऐसे ४ चतुष्टयका स्वामी है, इस जाँके सहज ज्ञानके द्वारा ऐसे आरमाकी भावना करना योग्य है। केमा है आरमा, विषया और कोई नाम नहीं है, तथा जो मुष्टिरूप सुन्दरका पति है। इस संसाररूपी अन्तके मूढको काटनेवाले संश्लेष कथनसे यह प्रथमय उपदेश दिया गया।

भाषार्थ—भीगुप्त ज्ञानक भेद कहकर यह प्रतिपादन दिया है कि इस मन्वज्जीवकी अपने आरमाका निश्चय परमात्मरूप अपने उपयोगमें अमाकर भयन करना चाहिये। स्वरूप ज्ञानको ही आरमज्ञान कहते हैं। यही निराकुल आनन्दका आशात् देनेवाला है। जब यह अतरारमा पुण्य पाप सुख दुःख परिमह आदि भावोंग दूरतर्था निजमाका मनन काठा है तब इस भेदज्ञानका सुन्दर फल जगतको सागन्नायक भाग दस्वरूप परम पवित्र ज्ञान स्यातिकी प्रगट कर दियाता है।

मैं अर्धेया प्रकार शुद्ध चैत यमय हूँ, यह जानकर निर्विकल्प होता हूँ। यही दशा मेरे सहज ज्ञानका साम्राज्य है और मैं इसका धनी स्वामी हूँ। यही भावना इस जीवके गुण शुद्ध

स्वभावको प्रगट करती जाती है । इस कारण सर्व काय त्याग इस स्वरूपभावनारूपी रमणीक बनमें रमनेका उपाय करना योग्य है ।

यहां टीकाकार कहते हैं कि जो भव्य जीव ऊपर स्थित भेदज्ञानको प्राप्त करनेके भयानक संघारका मूढ मगस्य पुण्य पाप सुख दुःखको अतिशयकरके त्यागता है सो मध्यमीय सब सुखोंमें भोग ऐसे अविनाशा आनन्दको प्राप्त करता है । जो बुद्धिमान प्राणी है, सो परिमर्दके आसक्त अर्थात् इठको त्यागकरके तथा देहमें उपेक्षा अर्थात् देह नैह छोड़कर निराकृष्ट चैतन्यमात्र शरीरहीकी भावना करता है । शुभ तथा अशुभ समस्त रागके दूर होनेसे मोहका विध्वंस होता है । मोहके जड मूढ़से बले जानेसे तथा द्वेषरूपी जडसे भरे मनरूपी घटके पूर जानेसे पवित्र और भोग ज्ञानरूपी ज्योति सर्व उपाधिरहित और निरय सदयरूप प्रगट होती है । कौची है ज्ञानज्योति, जो भेदज्ञानरूप वृक्षका छाया फल है—अगतमें मगबरूप इस ज्ञानज्योतिको मैं बन्दना करता हू ।

यह आत्माका स्वाभाविक सद्ज्ञान ज्ञान जो आनन्दके विस्तारसे पूर्ण है सो मोक्ष अवस्थामें प्रगट रहता है, ऐव सद्ज्ञानकी सदा जय हो । वैसा है यह सहज ज्ञान, जो सर्व बाधाओंसे रहित है, प्रगट आत्माकी सद्ज्ञान अवस्था है, आत्माके अन्तरंगमें प्रगट है, अपन स्वाभाविक विद्यास्वरूप चैतन्यके चमत्कार मात्र स्वरूपमें बिन है । तथा जिसने अपनी आत्मज्योतिसे अज्ञान अघकारको दूर कर दिया है । तथा अपने आसक्तिरके निरय ही आनन्दमात्र अर्थात् सुन्दर है । मग आत्मा स्वाभाविक सद्ज्ञान ज्ञानका राज्य है सर्व प्रकार शुद्ध चत स्वरूप है, ऐमा ज्ञानकर में विकल्प रहित होता हू ।

अब दशनेपयोगके भेदोंका प्रतिपादन करते हैं—

तद्दंमणउवओगो, ससदावेदरविपप्यदो दृविहो ।

उवटमिदियरहिय, अमहाय त सदावमिदि मण्डिं ॥ १३ ॥

सामान्य अर्थ—तैसे ही दशनोपयोग हो प्रकारका है—एक स्वभाव दशनोपयोग, दूसरा विभाव दशनोपयोग । जो केवल दशन इन्द्रियके रूपपर रहित अग्रहाय है वह स्वभाव दशनोपयोग है ।

विशेषार्थ—इस भाषामें दशनोपयोगका स्वरूप बतान है । जैसे ज्ञानोपयोग अनेक विधकाया धनी है एव ही दशनोपयोग भी है । स्वभाव और विभाव इस तरह दो भेदरूप है । स्वभाव दशनोपयोग भी दो प्रकारका है—एक कारण स्वभाव, दूसरा काय स्वभाव । अथ कारण स्वभावको कहते हैं—कारण स्वभाव दृष्टि अपने स्वरूपको भट्टा मात्र ही है, निम्नरूप है, सदा पवित्ररूप है, औद्युक्त, औपशमिक, क्षयोपशमिक और क्षापक येन चार विभाव स्वभावरूप भावोंसे अगोचर है अज्ञ परम पारिस्थितिक भाव स्वभावरूप है, कारण समयसार अर्थात् कारण शुद्धात्मस्वरूप है आवरणरहित स्वभाव है निज स्वभावका सत्तामात्र भाव है परम चैतन्य स्वरूप है, अकृत्रिय परम स्वरूपमें निश्चय नियतिमय शुद्ध चाग्निरूप है, नित्य शुद्ध कर्माजनरहित ज्ञानरूप है तथा आत्माके योगी गगत्रेपादि संनाको कबजाको विध्वंस करता है । ऐसे आत्मरूपका निश्चय करके स्वरूप भट्टान मात्र ही कारण स्वभाव दशन है ।

दूसरी काय स्वभाव दृष्टि है जो दशनावरणोप, ज्ञानावरणोप आदि पातिया कर्माक नाश होनेपर उत्पन्न हो जाती है । यह दृष्टि भी भी धीमेकर परमदृक् केवलज्ञानक समान एक ही समयमें डोक और अडोकके सामान्य अवलोकन करनेवाली है ।



कसे हैं या तीर्थंकर परमदेव, जो धार्मिका कर्माके अग्र होनसं क्षायकव्यवधारी हैं, सम्पूर्ण रूपसे निर्मल केवलयज्ञानके द्वारा तीनलोकके ज्ञाता हैं, अपने आत्मस्वरूपसे उत्पन्न परम बीतरागरूप जो सुख अमृत इसके समुद्र हैं, यथास्थान नामके कायरूप शुद्ध चार्मिकके धारी हैं आदिरूप पर तु अनन्त येना अमूर्तीक अतीन्द्रिय स्वभावकी प्रगटतासे शुद्ध समुद्रव्यवहारनया समक हैं, अर्थात् शुद्ध समुद्रव्यवहारनयसे अमूर्तीक अतीन्द्रिय स्वभावकी प्रगटता हुई येना कहनमें अता है, तीनलोकके भगव जीर्णके द्वारा प्रत्यक्ष ब्रह्मनाके योग्य हैं। इस तरह कारण और कायरूप दर्शनोपयोगका स्वरूप है।

भावार्थ—शुद्ध परमात्म स्वकी सामान्य निश्चल भ्रष्टा ही आत्मके स्वामाविक गुण केवलयज्ञानको व्यक्तताका साधन है, इनद्वारे कारण स्वभाव इष्टको स्वार्थे आन भोति करना योग्य है। यहा लोकाकार कहते हैं कि सम्यग्दर्शन ज्ञानचार्मिकरूप ही एक चैतन्य सामान्यका अपना आत्मिक स्वरूप है। यह तरह अतिशयसे मुक्तिकी इच्छा करनेवालीके लिए दण्डके समान है। इस मार्गके धारेबिना मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

अगरे विभाव दर्शनोपयोगको कहत है—

चक्रानु अरक्खु ओही, तिण्णिवि भणित्ति विमारदिच्छत्ति ।

पजाआ दुबियप्पो, सपरावेबल्लो य पिरयेबल्लो ॥ १४ ॥

वामान्य अर्थ—चक्रु, अचक्रु और अक्षयि ये तीन ही विभाव दर्शन कहे गये हैं। पर्याय दो प्रकारकी होती हैं—एक स्वपरापेक्ष और दूसरी निरपेक्ष।

विशेष अर्थ—इस गायामें अशुद्ध दर्शन और शुद्ध अशुद्ध पदार्थका सूचना है। जैसे मतिज्ञानावाणी कमके अज्ञापनसे मतिज्ञान मूर्तीक पदार्थको जानता है। वस चक्रुदर्शनावरणी कमके

अयोपशमसे अक्षुब्धज्ञान मूर्तीक पदार्थोंको देखता है । जैसे अतज्ञान अतज्ञानावरणी कमके अयोपशमसे भ्रुतद्वारा द्रव्यभूत अणु अथात् द्वादशगणरूप जिनअधनमें लहे हुए मूर्तीक और अमूर्तीक समस्त वस्तुओंको परोक्षरूपसे जानता है येस ही अक्षुब्धदर्शनावरणी कमके अयोपशमसे अक्षुब्धज्ञान स्पष्टान रचना, प्रण और श्रोत्रके द्वारा अपनी अपना ही द्रव्यक विषयका धामा व रूपसे देखता है, अथात् मल्लम करता है ।

जैसे अर्थाधिकार अर्थाधिकारणी कमके अयोपशमसे समस्त मूर्तीक पदार्थोंको जानता है वैसे ही अर्थाधिकारणी अर्थाधिकार पदार्थानावरणी कमके अयोपशमसे मूर्तीक पदार्थोंको देखता है । इसकारण उपयोगका व्याख्यान किया । अथ पदार्थोपस्था स्वरूप वदते हैं । “ परि समतात् भेदम् एतं गच्छति इति पर्याय ” जा जैसे तरफसे भेदको प्राप्त हो अथात् जो परिणामन करे सो पर्याय है ।

प्रथम रश्माव पदवाय है, यह छहों द्रव्योंमें आधारण है, अधपणायरूप है, बचन और मनक अगोचर है, अत्यंत सूक्ष्म है । आगम प्रमाणसे अनुभव करने योग्य है, तथा छ प्रकारकी वृद्धि और छ प्रकारकी हानिकारक अहित है । अनंत भागवृद्धि, असंख्य भाग वृद्धि, संख्य भागवृद्धि, ससंख्य गुणवृद्धि, असंख्य गुणवृद्धि, अनंत गुणवृद्धि, इषी तरहसे छ भेदरूप हानि है । यह वृद्धि हानि अगुरुलघु गुणमें होती है । इसका दृष्टान्त ऐसा है कि जैसे समुद्रमें अल उतना ही है उधमें जो तरंगो उठता है फिर बैठ जाती हैं वनसे समुद्रके जलमें हानि नहीं होती ।

जैसे निमल शुद्धांशों प्रमाणमें कमको चंचलता है, कमी होने कमी हीन है वसी प्रकार इस आगमोक्त वृद्धि और हानिको समस्त

दूसरी अशुद्ध पर्याय है जो नर नारक तिर्यक और देवहृत् है । इसको व्यवहानपर्याय भी कहते हैं । यहा टीकाकार कहते हैं कि जो मनुष्य अकृष्ट भावके होनेपर निर्मलबुद्धि होता हुआ स्वभाविक गुणरत्नाकी खान पूण ज्ञानमय एक अपने शुद्ध आत्माका धनन करता है, वह शुद्ध सम्यग्दृष्टी जीव मोक्षरूपी स्त्रीका वर होता है । इसप्रकार अकृष्ट गुण और पर्यायके होनेपर उत्तम पुत्रप्राप्तिके हृदयरूपी सरोवरमें जो कारणरूप आत्मा शोभायमान होता है । हे भव्यरूपी विद्वान् ! तू अभी परमेश्वररूप समस्यार आत्माको भजन कर, जो अपने ही स्वभावमें उदयमान है ।

यहा आत्मा कहीं अपने मरुतगुणोंसे शोभता है, कहीं अशुद्ध गुणोंसे विराजता है कहीं अपनी स्वभाविक पर्यायोंसे, तथा कहीं अशुद्ध पर्यायोंसे शोभता है । ऐसा होनेपर भी यह जीव हर एक समान विभाव गुण पर्यायोंसे रहित है, मैं यहा ही अपने सर्व प्रयोजनोंकी विद्विक्के द्विये उद्यो तरवको नमन करता हूँ और उसकी बार बार भावना करता हूँ ।

आगे स्वभाव विभाव पर्यायका विस्तार कहते हैं —

परणारयतिरियसुरा, पञ्जाया ते विभात्रमिदि भणिदा ।

अम्मोपाधिरिवज्जिय, पञ्जाया ते सहावमिदि भणिदा ॥ १५ ॥

मामा य अर्थ—नर, नारक, पशु और देव ये चार। मुख्य विभाव पर्याय कही गई हैं । जो पर्याय कर्मकी सहायसे रहित हैं वे स्वभाव पर्याय हैं ।

विशेष अर्थ—इस गायार्म स्वभाव और विभाव पर्यायका सङ्घेय अर्थ है । स्वभाव पर्यायोंके मध्यमें स्वभाव पर्याय दो भेदका कथन की जाती है । पहली कारण शुद्ध पर्याय दूसरी काय शुद्ध पर्याय । इस स्त्रीकमें शुद्ध निश्चयनमकी अपेक्षासे आदि और ० व दोनोंसे रहित अमूर्तिक अर्थात् त्रय स्वभावसे शुद्ध



परिणामकारके तिर्यैषको कायमे जाता हे, व्यवहार नयकरके एके द्वयाविके आकर होय तिर्यैष पदार्थय भोगता हे । यही जीव अपन केवल गुण परिणामोके द्वारा बाघे दृष्ट कर्मात्त निमित्तसे व्यवहार नयसे देवका आकार और शरीर ग्रहण कर देवपदार्थको भोगता हे । ( अशुभ परिणामसे बाघे दृष्ट कर्मात्त व्यवहार नयकरके नररूपयावको भोगता हे ) ।

यह चारो गतिरूप जीवके शरीरोंकी भगवता छो-विभ,व व्यजन पयाय हे । इन पर्यायोका विशेष स्वरूप अ य आगमसे जानना योग्य है । टीकाकार कहते हैं कि जीवके विभाव होनेपर भी जो कोई सम्मरट्टि उरवाध्यायमें अपनी बुद्धिको जमाकरके ऐसा मानता है कि शुद्ध आत्माके स्वरभाव सिधाय कोई मेरा कल्याणकारी नहीं है यह जीव मुक्तिरूपो उद्दमीका पति होता है ।

भाषार्थ—अपनी इस पदार्थको कर्मकृत मान इसको श्वाद्य समझ दृष्टसे उदासीन बुद्धि करके निज स्वभावमें रमनेकी उत्कठा करनी योग्य है । अब चार गतिको विशेष स्वरूप कहते हैं—

माणुस्सा दुवियप्पा, कम्ममहीभोगभूमिमजादा ।

सत्तनिहा घेरइया, णादब्बा पुदविभेएण ॥ १६ ॥

चउददहमेदा भणिदा, तेरिच्छा सुरगणा चउब्भेदा ।

एदेसिं विचार, लोयविभागोसु णादव्व ॥ १७ ॥

आमा-य अर्थ—मनुष्य दो प्रकारके होते हैं—कमभूमिज और भोगभूमिज । नारकी ७ प्रकारके जानने । पृथ्वी आदि भेद करके १४ प्रकार तिर्यैष हैं तथा चार प्रकारके देव होने हैं । इनक बिस्तार 'डोक विभाग' नाम आगमसे जानना योग्य है ।

विशेष अर्थ—इन गथाओंमें ४ गतिको निरूपण है । मत् अथात् कुडकर उनके अपरय अथात् स तानोंकी मनुष्य कहते हैं

कर्ममूर्ति की खाति और भोगमूर्ति के लतमें १४ कुत्तर तथा ऋषभदेव और श्रीभरत चक्रवर्ती का ले १६ कुत्तर हुए हैं । इ होने ही मनुष्यों की लाजीबिका के साधन व अ य आवश्यक कर्म बताये ।

यह कुत्तर विद्यासमान रखे जाते हैं । इषीकारण उनके द्वारा बालित पाबित होनेवाले सब मनुष्य कहलाये । अब यह शब्द स्वरूप दत्तनमें आता है । मनुष्य दो प्रकारके हैं—एक कर्ममूर्तिज दूसरे भोगमूर्तिज । कर्ममूर्तिज मनुष्य भी दो प्रकारके हैं—वाच्य और श्लेष्य । जो पुण्यक्षेत्र निवासी है वे वाच्य हैं और जो पापक्षेत्रवासी हैं वे श्लेष्य हैं ।

भोगमूर्तिजोंको भी वाच्य कहते हैं । ये जन्म मरण और चतम क्षेत्रमें निवास करनेस ठान भेदरूप हैं तथा रत्न शफरा, बालुका, पक, धूम, तम और महानम पेछी सात प्रकारकी प्रभावांको धारण करनेवाली सात पुर्णियाँ हैं, जिनके निवासी नारकी तीस सात प्रकारके होत हैं । पहले नरकक नारकी एक सागरोपम आयुधारी, दूसरेके तीन सागरोपम, तीसरेके छार । चौथके दश, पाचवेंके सत्रह, छठेके बार्दस और सातवेंके तेतीस सागरोपम आयुधारी हैं ।

यहा विस्तारके मयस संक्षेप कहा है । तिर्यचोंमें १४ भेद हैं—१ सूक्ष्म एकोदश पर्याप्त, २ सूक्ष्म एकादश अपर्याप्त, ३ बादर एकोदश पर्याप्त, ४ बादर एकोदश अपर्याप्त, ५ द्वीद्वय पर्याप्त, ६ द्वीद्वय अपर्याप्त, ७ त्रैद्वय पर्याप्त, ८ त्रैद्वय अपर्याप्त, ९ चौरद्वय पर्याप्त, १० चौरद्वय अपर्याप्त, ११ पंचेद्वी असंज्ञी पर्याप्त, १२ पंचेद्वी असंज्ञी अपर्याप्त, १३ संज्ञी पंचेद्वी पर्याप्त, १४ संज्ञी पंचेद्वी अपर्याप्त ।

भवनवासी व्यतर, व्योतिषी, कल्पवासी सब देवोंमें चार जातिके समूह हैं । इन चारों गति समूहों कीबीका गणना

ढोकबिभाग नामसे परमात्मसे जानना योग्य है । यहा आत्म-  
स्वरूपका कथन है अतः ढोकका विशेष कथन सुनकार पूजाचार्यने  
यहा नहीं किया है ।

यहा लीलाकार प्रार्थना करते हैं कि हे जिते तू ! स्वर्गमें हो,  
इस मनुष्यभवमें व दिशावरोंके ढोकमें हो, व देवढोक, ज्योतिर्ढोक  
व भवतबासीक भवनमें, न नारकियोंके निवासमें हो, व  
जिन = भवनमें हो व अथ व किमी स्थानमें हो हमें कर्माधी  
चरपत्ति न हो, पर तु पुन पुन आपके चरण कमलोंकी भक्ति ही  
हमको प्राप्त होवे ।

हे जीव ! तू राजा महाराजाओंकी विभूतिको सुनकर व देखकर  
कयो रोद करता है ? हे जदबुद्धि ! सब पुण्यसे पैदा होती है ।  
यदि श्रीजिते तूके चरणकमलोंमें तेरी भक्ति है और वन  
चरणोंकी पूजास सबढांग है, तो यह नानाप्रकारके भोग आपसे  
छाप हो जाँयने ।

आगे कत्ता भोक्तापनेको कहते हैं—

कत्ता मोत्ता आदा, पोगालरुम्मस्त होदि वयहारो ।

फम्मनमायेणादा, कत्ता मोत्ता दु णिच्छपदो ॥ १८ ॥

सामा य अथ—यह आत्मा पुद्गल कमका कता और भोक्ता  
होता है सो व्यवहार नयसे है । कमसे रूपस रूप जो भाव  
तिनका कता और मोत्ता है सो अशुद्ध निश्चयायस है ।

विशेषार्थ—इस गायामें कत्ता और भोक्तापनेका कथन है ।  
निष्कटवर्गी धनुषपरित अक्षरुन व्यवहारनयसे यह आत्मा द्रव्य  
कम्म जो ज्ञानावरणादि तिनका कत्ता है और तिनके फल जो  
सुख और दुःख तिनका मोत्ता है । तथा यही आत्मा अशुद्ध  
निश्चयनघ करके सम्पूर्ण मोह राग द्वेष आदि भाव कमन्नि कत्ता  
और मोत्ता है ।

अनुपचारित असह्य व्यवहारनयसे नोकरों को औद्योगिक शरीरार्थ तिनका कर्ता है, तथा उपचारित असह्य व्यवहार नयसे यह आत्मा घट पट रम गाढ़ो आदि पदार्थोंका कर्ता है । इस प्रकार अगुद जीवका स्वरूप कहा ।

भावाये—आचार्य यह बतलाते हैं कि कोई एक अनादि गुदबुद्ध ईश्वर कर्ता नहीं है किन्तु यह संसारी अगुद आत्मा ही नाना प्रकारकी अवस्थाओंका बनानवाला और अवन हो क्तम्पके अनुसार सुख दुःख फलोंको भोगनवाला है । गुद निश्चयनय जो वस्तुके पदार्थ गुद स्वभावको बतलानेवाला है उसको अपेक्षा यह आत्मा निज गुद पारिणामिक भावना हो कर्ता और सोचा है । परन्तु अगुद निश्चयनय जो वस्तुके अगुद भावको बतलाने वाला है उसको अपेक्षासे यह आत्मा पूर्व भाये कर्मोंके परिणयनके निमित्तसे पैदा होनेवाले जो राग द्वेषादि औपाधिक भाव तिनका कर्ता और भोला है । अत्यन्त निकट अभाव एक क्षेत्रावगाहकूप सम्बन्धको बतलानेवाला पया जो अनुपचारित अर्थात् द्विपक्षो नात्र कल्पना हो नहीं किया है किन्तु जो वास्तवमें सम्बन्ध है तथा जो असह्य व्यवहार आत्माकी सत्तामें नहीं है पया जो व्यवहारनय उसके द्वारा द्वा आय तो यही आत्मा इन्द्र कर्मोंका कर्ता और तिनका बाह्य प्रगट होनेवाले सुखदुःखका भोला है । तथा दूरवर्ती अनुपचारित असह्य व्यवहार नयकरके यह आत्मा शूद्र शरीरका कर्ता है । तथा कल्पना मात्र ऐसे उपचारित और असह्य व्यवहारनयसे यह आत्मा पर पदार्थ जिनका अस्तित्वसे अर्थात् अवन प्रदेशोंसे विद्वक्क सम्बन्ध नहीं है ऐसे घट पटादिका कर्ता है ।

यहा टीकाकारन आत्मानुभव करके कहा है कि जो आत्मा रागद्वेष मोहमें डूब हो रहा है, यदि परम गुणके चरमकमलकी सेवा करे तो उसके प्रभावसे स्वभाविक शठारपत्त्वको जो विच्छेद



अर्थात् भेदाहित है उसको पहचान करके मोक्षरूप स्वीकार हो जाता है । क्योंकि भाषकमें जो रागादि इनको रोकनेसे द्रव्यकम सकते हैं और द्रव्यकर्मोंके संघर्षसे संचारका निरोध है ।

यह मूढ़ जीव सम्यग्ज्ञानरूपी भाषणे छूटा हुआ शुभ तथा अशुभ अनेक प्रकारके कर्मोंको करता है । यदि यह जीव कर्मरहित मोक्षमार्गकी घोड़ी भी इच्छा करके उसको जाने तो इस लोकमें उसकी रक्षाका वपाय दूसरा नहीं है । जो जीव कर्मजनित सम्पूर्ण धारारूप सुखको त्यागता है वह सम्भार छ मव्य आत्मा कर्मरहित निराकुल आनन्द समूहरूप अमृतके समुद्रमें डूबेहुए अत्यंत ही शुद्ध चैतन्यमय यद्वरूप अद्वितीय अपने आरपीक भाषणको प्राप्त करता है ।

मेरेमें वास्तवमें कोई विभाव नहीं है, इसलिये मुझे उसकी कोई चिन्ता नहीं है । मैं निरंतर अपने हृदयकमलमें विराजमान सर्वे शर्मसे रहित एक शुद्ध आत्माका ही अनुभव करता हूँ, क्योंकि उसके बिना अथ किसीभी प्रकारसे निश्चय करके इस जीवको सुखकी प्राप्ति नहीं होसकती है । संचारी जीवमें साधारण विभावगुण होते हैं । परंतु सिद्धजीवमें नित्य अनाश्रय ही सिद्ध किये हुए निज वस्तुगुण रहते हैं । यह कथन भी व्यवहारनयसे ही है । निश्चयनयसे न तो सिद्ध ही है, और न संचारी ही है । सुद्धिमानोंका ऐसा ही निर्णय है ।

साधारण—यह आत्मा शुद्ध निश्चयसे जैसा इसका स्वभाव है वैसा ही है, उस आत्मामें बिचरूप करना कि यह आत्मा संचारी है अथवा यह आत्मा सिद्ध है यह सब व्यवहारनयसे है ।

आगे दोनों नदोंकी सफलताको कहते हैं —

द्वचरिषण जीवा, यदिरिचा पुव्वमधिदपज्जाया ।

पज्जयणयेण जीवा, सजुत्ता होंति दुविहेहिं ॥ १९ ॥

सामान्य अर्थ—द्रव्य चिक्नयसे ये जीव पूर्व कही हुई पर्यायोसे अलग हैं, परंतु पर्यायनयसे ये जीव उनसे संयुक्त हैं। दोनों नयोका यह अभिप्राय है।

बिशेष अर्थ—इस गाथासे दोनों नयोकी अफटताको बतलाया है। ये दोनों ही नय भगवत् अर्हत परमेश्वरान कहे हैं। द्रव्य ही अर्थ अर्थात् प्रयोजन जिसका है वह द्रव्यार्थिक नय है, पश्याय ही जिसका प्रयोजन है वह पर्यायार्थिक नय है। एक नयसे दिया हुआ उपदेश प्रहण करने योग्य नहीं है किंतु दोनों नयोके द्वारा कहा हुआ उपदेश प्रहण करने योग्य है।

भागुधी सत्ता मात्रको प्रहण करनेवाला ऐसा शुद्ध द्रव्यार्थिकनय है। इसके पहलेसे पूर्व कही हुई व्यजनपथायोसे मुक्त और अमुक्त अर्थात् अक्षरूप समस्त जीवराशि अथवा भिन्न हैं, क्योंकि शुद्ध नयसे सर्व ही जीव शुद्ध हैं। यह बचन भीद्रव्यसंप्रहजोका है। विभाव्यजन पर्यायार्थिकनयसे सबसे सर्व जीव इन पथायोसे संयुक्त हैं। सिद्ध जीवोंका परिणमन अथ पर्यायोके द्वारा होता है, व्यजनपथायोके द्वारा नहीं होता क्योंकि भीसिद्ध महाराज सदा निरजन हैं, अर्थात् कर्मरूपी व्यजनोंसे रहित हैं।

प्रगटरूपसे अभायाका बरतना सो व्यजनपर्याय है, जैसे देवसे मनुष्य होना। प्रगटरूपसे एक पर्याय रहते दृये अंतरग गुणोंमें परिणमन होना सो अयपथाय है। जैसे भीसिद्ध महाराजका एक गुण अनन्त ज्ञान है। ज्ञेय ( जानने योग्य ) पदार्थोंको जाने सो ज्ञान। ज्ञेय पदार्थों समय समय बरपत्ति बिनाश और भीव्य गुणसे संयुक्त हैं। ऐसा ही अनन्तज्ञानम भी परिणमन होता है। यहा कोई शका करे जब सिद्ध सदा निरजन गाथासे यह कहना व्यर्थ होगा कि सर्व जीव द्रव्यार्थिक नयोके द्वारा दोनों पथायोकरके संयुक्त हैं इसका साध है

निगम नाम विकल्पका है। विकल्पमें होवे सो निगम है। मृत निगम, वर्तमान निगम और भावि निगम। गत अवस्थाका विकल्प पदार्थमें कहना सो मृत निगम, वर्तमान अवस्थाका विकल्प सो वर्तमान निगम, सम्पूर्ण कार्य न होते हुये कार्य होना कहना, भावी अवस्थाको पदार्थमें कहना सो भावी निगम।

यहांपर मृत निगमनयकी अपेक्षासे सिद्धोंके भी व्यजनपर्यायकी समझता है। सिद्ध अवस्था होनके पूर्व सब जीव संसारी अशुद्ध होते हैं। अधिक क्या कहे, सब ही जीव दोनों नयोंके द्वारा शुद्ध अशुद्ध हैं। ऐसा ही भी "अमृतचन्द्र सूरिने" कहा है—जो जीव स्वात्पदसे चिह्नित और दोनों नय अर्थात् निश्चय व्यवहार नयके बिरोधको दूर करनेवाले ऐसे जिनेन्द्रके वचनोंमें रमते हैं वे मोहको बमन कर देते हैं और शीघ्र ही अवश्यसे परम व्योतिरूप समयसार अर्थात् शुद्धात्मा तिसको देखते ही हैं।

कैसा है समयसार, जो नबोन नहीं है तथा किसी, छोटी नयकी पक्षसे स्पष्टन योग्य नहीं है। यहा टीकाकार कहते हैं— "जो सतपुरुष दोनों नयोंकी युक्तियोंको नहीं उल्लंघन करते हुये, परम जिनेन्द्रके चरणकमलोंके मत्त भ्रमर हो जाते हैं, अर्थात् भौरके समान भगवत् भक्तिमें डीन हो जाते हैं, वे सत शीघ्र ही मदा नित्यरूप समयसारको प्राप्त करते हैं। सज्जनोंको इस जागतमें अथ कथनसे क्या फलकी सिद्धि होगी ?

भाषार्थ—दोनों नयोंमें जीवका स्वरूप समझकर हमको उचित है कि हम परमात्माकी भाँखमें अपने उपयोगको डीन करें।

इस प्रकार सुद्धिरूप कमलोंके द्विप सूयके समान, पचेन्द्रियोंके फलवासे रहित, शरीर मात्र परिमहके जारी 'भीषणमममल शरीरेव' रचित नियमसारकी तात्पर्य वृत्तिमें 'जीवाधिकार' नामक प्रथमभूत रक्षक पूर्ण हुआ।



## २-अजीवाधिकार

अणुसघवियप्येण दु, पोग्गलदन्वं हवेइ दुवियप्यं ।

संघा ह्यु छप्पपात्ता, परमाणू चेव दुवियप्यो ॥ २० ॥

सामान्याध—पुत्रक द्रव्यके दो भेद हैं—एक अणु दूसरा रक्तघ । रक्तघ निश्चयकाके छ प्रकार है और परमाणु दो प्रकार है ।

विशेष अर्थ—इस गाथामें पुत्रक द्रव्यके भेदोंका कथन है । प्रथम दो पुत्रक द्रव्यके दो भेद हैं—एक स्वभावपुद्गल, दूसरा विभावपुद्गल । परमाणु स्वभाव पुद्गल है और रक्तघ विभाव पुद्गल है । स्वभावपुद्गलके दो भेद हैं—एक कायपरमाणु दूसरा काणपरमाणु । रक्तघ छ प्रकारके होते हैं—पृथ्वी, जल, छाया, आर इन्द्रियके विषयरूप पदार्थ जैसे शब्द सुगंध आदि कार्मांग योग्य पुद्गल बगला और कर्म अयोग्य पुद्गल ऐसे छ भेद हैं । इनका स्वरूप आगेकी गाथाओंमें विस्तारस कहेंगे ।

रक्तघोंके गठनेसे अणु होता है और अणुओंके मिटनेसे रक्तघ होता है । इस पुद्गल पदार्थक बिना स्थापना नहीं हो सकती अर्थात् जीवको इस जाकेमें भ्रमण और पयायोंमें निवास पुद्गलद्रव्यक द्वारा ही होता है ।

आग रक्तघके भेदोंका कहत है—

अइयूलधूल धूलं, धूलंसुहूम च सुहूमधूलं च ।

सुहूमं अंसुहूम इदि, धरादिय ह्येहि छमेय ॥ २१ ॥

सूपन्वदमादिपा, मणिदा अइयूलधूलमिदि खघा ।

धूला इदि विष्णेया, सप्पीजलतेलमादीया ॥ २२ ॥

छापातवमादीया, वृलेदरखंधमिदि विषाणाहि ।

सुहृमपृलेदि भणिया, खधा चउरक्खविसपा य ॥ २३ ॥

सुहृमा हवति म्मधा, पायोमा कम्मवग्गणम्स पुणो ।

तन्विउरीया खधा, अइसुहृमा इदि परूयेदि ॥ २४ ॥

सामा य अर्थ—इन ४ गाथाओंमें विभाव पुद्गलके स्वरूपका व्याख्यान है। अत्यंत सूक्ष्म वे पुद्गल हैं जो पथत पृथ्वी आदिके समान हैं। धी तैल मठा दूध जल आदि बहनवाले अथ सूक्ष्म जातिके पुद्गल हैं। छाया आतप, अघकार आदि सूक्ष्मसूक्ष्म पुद्गल हैं।

स्वप्न रसन घ्राण और भोजशक्तिके विषय मूल पदार्थ सूक्ष्मायुक्त जातिके पुद्गल हैं अर्थात् शब्द स्वप्न रस, गंध ये सूक्ष्मायुक्त हैं। शुभ और अशुभ कारमाके परिणामोंके द्वारा जानेवाले शुभ और अशुभ कामके योग्य होनेवाला कामाण स्वप्न सूक्ष्मपुद्गल हैं।

इन सबस विच्छेद जो स्वप्न कर्मवर्गणासे भी सूक्ष्म हैं वे अत्यंत सूक्ष्मवर्ष्य हैं। इस प्रकार विभाव पुद्गलके छ भेद हैं। वेसा ही पञ्चमित्तकाय और मागवहाश प्रथममें कहा है और उनके कथनका अभिप्राय ऊपर कहा जा चुका है।

इसी प्रकार भी असूतचम्रमूर्तिने कहा है कि 'इस महा मारी अनादि काष्ठसे होनेवाले अज्ञानरूपी नृत्यके अखाड़ेमें घण स्वप्न रस गंध गुणका घारी पुद्गल ही नृत्य कर रहा है। इसके विभाव दूधरा कोई नृत्य करनेवाला नहीं है।

यह जीव तो रागद्वेष आदि विकारोंसे विच्छेद शुद्धचित्त य भातुकी एक भूति है।

माथार्थ—पुद्गलकमक ही निमित्तसे जीव धरता है। निश्चय

करके आत्मा शुद्ध निर्विकार है। गर्तसं गत्य तर होना इसका स्वभाव नहीं है इसी कारण आपायन नात्य कानेबाडा पुद्गलहीकी कहा है। क्योंकि भागुठकी इच्छा इस मबरिजरेमें पक्ष रूप भीषकी अपन शुद्धस्वरूपके स्मरण करानकी है।

जब तक यह आत्मा अपनी शुद्धताका निश्चय नहीं करता तबतक रागद्वेषको हटा नहीं सकता। रागद्वेषको बिना दूर किये कर्मेश्वरकी सततिका अभाव नहीं होता। इस कारण कृपणाशी आत्माको अपना शुद्धस्वरूप अनुभवना योग्य है। यही शिक्षा उपादेय है। टीकाकार कहते हैं—हे भव्यनिह अर्थात् बिहसे समान मव्यात्मा ! तू नानाप्रकारके पुद्गलोंका भेद जगत्में देखकर वनमें अपनी शीतिभावकी न कर-तू अपनी रति अपनी लौकिकता सब अतुल्य चैत यक समरकारमें कर, जिसके प्रभावसे तू मोक्षरूप लीका बर हो लावेगा।

भाषाये—मोक्ष पानेका यही उपाय है जो अपनी चतन्य सत्ता मूमिमं कल्लोड करे और पर बस्तुमें कोडा करनेका त्याग करे।

आने कारणपरमाणु और कायपरमाणुछा हेतु करते हैं—

धाउचउक्कस पुणो, जं इऊ कारणति त नेयो ।

खधाण अवमाण, णाद्व्वी कअपरमाणू ॥ २५ ॥

सामान्य अर्थ—चार धातुका जो हेतु है वह कारण परमाणु है तथा क्लृप्तोका अंतिम भाग कार्य परमाणु है, ऐसा जानना योग्य है।

विशेष अर्थ—इस गायामे कारणपरमाणु द्रव्य और कायपरमाणु द्रव्यका स्वरूप वर्णित है। पृथ्वी, अन्न, तेज और वायु ये चार धातु हैं। इन चार धातुओंका जो कारण है वह कारण परमाणु है। अर्थात् जिन परमाणुओंके सम्बन्धसे चार

छायात्तरमादीया, धूलेदरस्त्रघमिदि विपाणादि ।

सूक्ष्मधूलेदि मणिपा, स्वधा चठरक्त्रविसया य ॥ २३ ॥

सुहुमा हवति स्वधा, पावोग्मा षम्भरगणस्त पुणो ।

तव्विचरीया स्वधा, अरसुहुमा इदि परुयेदि ॥ २४ ॥

मासाय अथ—इन ४ गाथाओंमें विभाव पुद्गलके स्वरूपका व्याख्यान है । अत्यंत सूक्ष्म वे पुद्गल हैं जो पंचत पृथ्वी आदिके समान हैं । धी तैल मठा दूध जल आदि बहनवाले द्रव्य सूक्ष्म जातिक पुद्गल हैं । छाया आतप, अघकार आदि स्थूलसूक्ष्म पुद्गल हैं ।

स्पर्श रसन घ्राण और श्रोत्रइन्द्रियके विषय सूत्र पदार्थ सूक्ष्म भूत जातिके पुद्गल हैं अर्थात् शब्द स्पर्श, रस, गन्ध ये सूक्ष्मभूत हैं । शुभ और अशुभ कारमाके परिणामोंके द्वारा जानेवाले शुभ और अशुभ कर्मके योग्य होनवाला कार्मण स्वयं सूक्ष्मपुद्गल हैं ।

इन सबमें विच्छेद जो स्वयं कर्मवर्गोंवाले भी सूक्ष्म हैं वे अत्यंत सूक्ष्मस्वयं हैं । इस प्रकार विभाव पुद्गलके छ भेद हैं । ऐसा ही पञ्चाशतिकाय और मागवहाश प्रथम कहा है और इनके कथनका अभिप्राय ऊपर कहा जा चुका है ।

इसी प्रकार भी अमृतचन्द्रसूरिने कहा है कि 'इस महा मारी अनारि काष्ठसे होनेवाले अहान्तरी नृत्यके अखाड़में अण स्पर्श रस गन्ध गुणका घारी पुद्गल ही नृत्य कर रहा है । इसके विभाव दूसरा कोई नृत्य करनेवाला नहीं है ।

यह जीव तो रामद्वेष आदि विकारोंसे विच्छेद शुद्धचेतन प्राणही एक मूर्ति है ।

मासार्थ—पुद्गलकर्मके ही निमित्तसे जीव भ्रमता है । निश्चय

करके आरमा शुद्ध निर्विकार है । गतिसे गरवन्तर होना इसका स्वभाव नहीं है इसी कारण आश्रयने नाश्य करनेवाला पुद्गलहीको कहा है । क्योंकि आगुठही इच्छा इस मन्विक्रमेमें पसे हुए जीवकी अपने शुद्धस्वरूपके स्मरण करानकी है ।

जब तक यह आत्मा अपनी शुद्धताका निश्चय नहीं करता तबतक रागद्वेषको इटा नहीं सकता । रागद्वेषको बिना दूर किये कमबधकी सततिका अभाव नहीं होगा । इस कारण कल्पानार्थी आरमाको अपना शुद्धस्वरूप अनुभवना योग्य है । यही शिक्षा उपादेय है । टीकाकार कहते हैं—हे मन्वन्निह अर्थात् सिद्धसे समान भव्यारमा । तू नानाप्रकारके पुद्गलोंका भेद जगत्में देखकर उनमें अपनी प्रीतिभावको न कर—तू अपनी रति अपनी लीबोनता सब अतुल्य चैत यके चमत्कारमें कर, जिसके प्रभावसे तू मोक्षरूप स्त्रीका घर हो जावेगा ।

भाषार्थ—मोक्ष पानेका यही उपाय है जो अपनी चैतन्य सत्ता मूर्तिमें कल्लोड करे और पर वस्तुमें क्रीडा करनेका स्वाग करे ।

आगे कारणपरमाणु और कार्यपरमाणुका हेतु कहते हैं—

घाउचउकस्स पुणो, ज हेऊ कारणति त पेयो ।

स्वधाण अवसार्ण, णाद्व्यो कजपरमाणू ॥ २५ ॥

सामान्य अर्थ—चार धातुका जो हेतु है वह कारण परमाणु है तथा एकलोक अतिम भाग कार्य परमाणु है, ऐसा जानना योग्य है ।

विशेष अर्थ—इस गायामें कारणपरमाणु इन्द्र और कार्यपरमाणु द्रव्यका स्वरूप वर्णित है । पृथ्वी, जल, तेज और वायु ये चार धातु हैं । इन चार धातुओंका जो कारण है वह कारण परमाणु है । अर्थात् जिन परमाणुओंके सम्बन्धसे ये चार



घातुयें परिजत होती हैं, रक्षक रूप दीक्षती हैं, वे परमाणु कारण परमाणु कहलाते हैं ।

ये कारण परमाणु ही जघ य परमाणु हैं । इनमें तिनम्ब और रूक्ष गुणोंका सबसे जघ य अनन्तता भाग रहता है । वह सम समता विषमरूपस दोनों प्रकार भी घघ योग्य नहीं है, अर्थात् न दो गुण तिनम्ब व रूक्षबाधा परमाणु अन्य दो गुण तिनम्ब व रूक्षसे बंधता है और न तीन गुण रूक्ष व तिनम्ब बाधा परमाणु तीन गुणबाधोंसे बंधता है कि तु तिनम्ब रूक्ष गुणोंकी अनन्तताके ऊपरके परमाणु जिनमें दो गुण होंगे वे चार गुणवाले परमाणुओंसे घघेंगे ।

जो तीन गुणवाले परमाणु होंगे वे पाच गुणवाले परमाणुओंसे घघेंगे । दो गुण अधिकसे ही घघ होता है । यही ( घघ योग्य ) एकल परमाणु है । पुत्रक इत्य रक्षकोंके गठते हुए अन्तिम अबाधायें रहा हुआ जो परमाणु जो कार्यपरमाणु है ।

इस प्रकार अणु चार प्रकारके हैं—कार्यरूप, कारणरूप, अधन्यरूप, अकृष्टरूप । यह परमाणुद्रव्य अपने स्वरूपमें स्थितरूप होनेसे विभावभावसे रहित है इत्यलिये परभावभाव है । येवा ही भी प्रवचनकारमें ' गिद्धा वा ' आदि भाषामें कहा है अिचका ल्ये उपर आ गया है । विशेष यह है कि तिनम्ब रूक्षसे, रूक्ष रूक्ष, तिनम्ब तिनम्बसे सम दो व विषम दो गुण अधिक होनेसे बंध प्राप्त होता है । टीकाकार श्रीपद्मसमुपलघारिदेव कहते हैं " कि मैं छ प्रकार रक्षक और चार प्रकार परमाणुओंसे अपने आत्माको निम्न शुद्ध अक्षयरूप चारम्बार भावता हू । "

भाषार्थ—पुत्रक चाहे रक्षक हो वा अणु हो शुद्ध आत्माके ज्ञानानन्दमय टंकीरकीण परम त्वाभावसे सवधा भिन्न है । उसकी

भावना कायकारी नहीं है । इमाब्दे शुद्ध आत्मभावकी वास्तविक भावना ही उपोद्भूत कार्यकारी और कृतञ्जय है, जो भावना भावक पुष्टकी उपशम भाव प्रदान कर सुधारस गर्भित परमाह्लादको प्रदान करती है ।

अब परमाणु विशेषको कहते हैं—

अत्तादि अत्तमज्ज्ञं, अत्तत णेत्र इदिण् गेज्झं ।

अविभागी जं दृक्क, परमाणू त त्रिआणाहि ॥ २६ ॥

सामान्य अर्थ—जिमका स्वयं स्वरूप ही आदि मध्य और अन्तरूप है, जो इन्द्रियोंक द्वारा महण योग्य नहीं है वेदा अविभागी जिमका दूसरा भाग नहीं हो सके सो शून्य परमाणु जाननेयोग्य है ।

विशेषार्थ—जैसे नित्य अनित्य निगोहसे छे सिद्धसेत्र पर्यंत स्थित सब ही जीव अपने स्वामादिक परम पारिणामिक भावरूप अहङ्ग निश्चयनयके द्वारा अपने अस्वामी स्वरूपसे कमी क्युत्पत्ति नहीं होते, तैस ही परमाणु शून्य पारिणामिक भावकी अपेक्षासे परम स्वभावका धारी है ।

एस परमाणुकी आत्मा ही आदि है अर्थात् वह स्वयं आदि रूप है वही मध्यरूप है वही अन्तरूप है । जैसे आत्मा अपने स्वरूपका व्याप ही आदि मध्य अन्तरूप है वैसे ही परमाणुकी भी जानना अर्थात् आत्मा जैसे आदि मध्य अन्तरहित है, वैसे परमाणुकी भी अनुभव करना । आदि मध्य अन्तरूप वही स्वयं है । इसलिये वह परमाणु अपने आत्माके समान पंचेन्द्रिय ज्ञानगोचर नहीं है, वह परमाणु निर्मल है । अग्नि आदिसे अविनाशी है, विभागरहित अविभागी है । हे शिष्य ! परमाणुका स्वरूप तुम वेदा जानो ।

टीकाकार कहते हैं अहं स्वरूप पुद्गलकी स्थिति

ही जानकर वे सिद्धश्रीव अपने चैत परस्वरुचिदारमामें क्यों नहीं विष्टे, अपि तु विष्टे ही विष्ट ।

आगे स्वभावपुद्गलका स्वरुच कहते हैं—

एपरसरुचगव, दो फार्स त हवे सहावगुण ।

विहावगुणमिदि भणित, निणममये सव्यपपडत्त ॥ २७ ॥

मामा ए अर्थ—एक रस एक रूप एक गंध और दो स्पर्श इतने गुणोंसे सहित स्वभावगुण पुद्गलका जिनधागममें प्रगट रूपसे कहा है ।

विशेष अर्थ—इस गायामें स्वभावपुद्गलके स्वरुचका कथन है । शीता, कड़वा, कपायला, आमल, और मधुर इन पांच प्रकारके रसमेंसे एक रस होता है । श्वेत, पीला, हरा, लाल, काळा इन पांच वर्णोंमें एक वर्ण होता है । सुगंध और दुर्गंधमेंसे एक गंध होती है । कड़ा, कोमल, आरी, इडका, शीत, उष्ण चिकना, रूखा इन आठ स्पर्शमेंसे अतमें कहे जो चार स्पर्श उनमेंसे अबिरोधी दो रस होते हैं अर्थात् शीत अथवा उष्ण चिकना अथवा रूखा । इस प्रकार पांच ही गुण पुद्गल परमाणुके स्वाभाविक गुण हैं ऐसा जिनद्रुमगतानके आगमका मत है । विभावगुणरुचि विभाव पुद्गल है । यह दो अणु आदिसे ले सत्त्वात् असत्त्वात् अनंत अचुर्बोंके स्वरुच हैं, स्वभावगुणवारी हैं । सम्पूर्ण, इन्द्रिय प्राणोंके द्वारा प्रदण योग्य हैं । इन्द्रियांस स्पर्शोंका प्रदण हो सकता है ऐसा भावार्थ है ।

ऐसा ही भोपवापिउद्यायमें भी कहा है । उद्यका अग्निप्राय ऊपर आगया । विशेष इनना जो परमाणु स्वय अशुद्ध है पर तु यह शून्यका कारण है । तथा मागैरकाशमें भी ऐसा ही कहा है । टीकाकार करते हैं कि एक परमाणु अपने चणादि गुणोंसे अपनेमें प्रकाशमान है परंतु उस में कामकी वृद्धि नहीं हो सकती

येसा निश्चयकरके जो भव्य जीव परम सुखमई मोक्षपदका इच्छक है उसको अपने इत्यसे एक शुद्ध आत्माको ही भावना करनी उचित है ।

भावाथ—सब पर बन्तुओंको हेव ज्ञान भव्यजीवोंको एक शुद्ध निज आत्मा हो उपारेव ध्येय और मन्वक् मनन योग्य है ।

अथ स्वभाव विभाव पयावको करते हैं—

अण्णगिरावेकसो जो, परिणायो सो महावपज्जायो ।

रुधमरूवेण पुणो, परिणायो सो विहावपज्जायो ॥ २८ ॥

धामाय अथ—जो परिणमन अयही अपेक्षाकरके रटित होता है वह स्वभाव पयाव है । और जो परिणमन स्वरूप होता है वह विभावपर्याय है ।

विशेष अर्थ—इस गायामें पुत्रको पर्यायकर कथन है पुत्रको परमाणुरूपपर्याय पुत्रको शुद्ध पर्याय है, जिसका कारण परम पारिणामिक भाव है । अतुमें पद्वकार द्वान् कर्त्तव्य है अतय त सूक्ष्म अर्थपर्याय होती है अथ परिणमनरूप है, और और या त दानेवर भी परद्रव्यको अपेक्षा करके ही शुद्ध सद्भाव-व्यवहारनयरूप है अथवा निश्चय करके ही कर्त्तव्य परपाद करवति, उचय विनाश, तथा घोषट्ट कर्त्तव्य रूप स्वरूप है । इस अपेक्षासे सूक्ष्म ठजुपुत्र नवरूप कथन है ।

स्वरूप पयाव अपने अजातोव पद्वकार कर्त्तव्य है इस लक्षणसे अशुद्ध है । इर्वाक्ये विभाव स्वभाव है, अथवा कहते हैं पर परिणमनरूप शुद्ध परमाणुरूप अणुपर्याय है स्वभावपयाव नहीं है, तथा स्वभाव कर्त्तव्य है अथवा स्वभाव अथवा स्वभाव अथवा स्वभाव और ऐसे भीछिद महापद विभाव कर्त्तव्य है ।

बिभाषणाय रहित नित्य है ।

आग पुद्गलद्रव्यके व्याख्यानको संकोचते है—

पोगलदच्च उच्चैर्ह, परमाणू त्रिच्छण्णा इदरेण ।

पोगलदच्चोत्ति पुणो, ववदेसो होदि खुधस्त ॥ २९ ॥

सामान्य अर्थ—निश्चयनकारके परमाणुको पुद्गलद्रव्य कहते हैं तथा व्यवहारनयकारके रक्षकको भी पुद्गलद्रव्य कहा जाता है ।

विशेष अर्थ—इस गायामें पुद्गलद्रव्यके व्याख्यानको संकोचते है । स्वभावसे शुद्ध पर्यायरूप परमाणुहीके शुद्ध निश्चय करके पुद्गलद्रव्य सज्ञा है । तय व्यवहार नयकारके बिभाषणपर्यायरूप रक्षकपुद्गलोंको भी पुद्गल द्रव्य ऐषा नाम कहा जाता है । टीकाकार कहते हैं कि “ हे भव्यजोष ! जिनेंद्र भगवानके आगमसे तत्त्वार्थोंका स्वरूप ज्ञानकर तू यमस्त चेतन अचेतन पदार्थोंको त्याग और अतरग निर्बिकल्प समाधिमें छोन होकर पर पदार्थोंसे रहित चैत एक यमस्कारमात्र परमतरवका भजन कर ” ।

भाषा—यह पुद्गलका बिकल्प उपादेय नहीं है । उपादेय अपना एक चैत एक परमतरव है, जिसमें छोन हो सुखार्थोंको सुख प्राप्त करना चाहिये । पुद्गल द्रव्य अचेतन है, जीव द्रव्य चेतन है, यह कल्पना प्रथम अवसरामें साधर्मियोंके होती है । जो योगी निष्पन्न हैं अर्थात् ध्यानाभ्यासमें पूर्ण हैं उनको यह कल्पना नहीं होती । यदि मुनियोंकी ऐसी शुद्ध दशा होती है जिनसे वे यह अनुभव करते हैं कि जैसे अचेतन पुद्गल कायमें न द्वैतभाव है न रागभाव है, वही तरह अचेतन परमारमतत्त्वमें रागद्वेष भाव नहीं हैं ॥ २९ ॥

अगे यमादि द्रव्यका स्वरूप कहते हैं —

रामगणिमित्त धम्म, मधम्मं ठिद्धि जीवपुग्गलानं च ।

अवगण्णं आयास, जीयादीसच्चद्वानाण ॥ ३० ॥

सामान्य अर्थ—जीव पुत्रोंके गमनमें निमित्त घमद्रव्य है और स्थितिमें निमित्त अधमद्रव्य है तथा जीवादि सर्वे द्रव्योंको अङ्गाह्न अर्थात् स्थान देनेवाला आकाशद्रव्य है ।

बिरोधार्थ—इस गायामें धर्म, अधम और आकाशका संश्लेष कथन है । यह धर्मालिकाय रस्य गमनक्रियासे रहित है, जैसे वायिकामें अह्न । अ इ व ऋ लृ, पण उषुअक्षरमात्र काळमें स्थित १४ वें गुणस्थानवर्गी अवोगजिन जब अंतके धर्मयमें पंचमगतिको अपनी स्वभाव गमनक्रियाकी परिणतिसे गमन करते हैं, तब धर्मय यह घमद्रव्य इनकी स्वभाव गति क्रियाहेतुरूप होता है । केही है पंचमगति मोक्ष, अहा मन्पूर्णे कलेश और दुःखोंका धर द्रव्य, क्षेत्र काळ, भव, भावरूप पंचरकार सधारका समतपने स्थान नहीं है । किा केही है वह पंचमगति, कि जिधमें रहनेवाले जीव सिद्ध कह्यतात हैं ।

अहा छ कायरूप जीवोंका नाम जो चारों गतियोंके अंदर होता है छुत्र जाता है । तथा वह मोक्षस्थानरूप सिद्धशिक्षा तीन लोकके अप्रधाग बिराचमान है । जिस सिद्ध अक्षयामें स्थित जीव मोक्षरूप स्त्रीके नत्रोंको देखकर लृप्त रहते हैं । तथा पटकायमें परिभ्रमण करनेवाले सधारीजीवोंके यही घमद्रव्यविभावगति क्रियाका हेतु होता है । जैसे मछलियोंकेद्विये अह्न कारण होता है वैसे ही जीव पुत्रोंके गमनका कारण यह घमद्रव्य है । यह अमूर्तक है । आठ रशरी, पाच बण, पाच रस, और दो गंध ऐसे पुत्रोंके २० गुणसे रहित है । अगुठउषुत आदि गुणोंका आवार है । लोकाकाशमात्र आकारका धारी है, अलह एक पदाय है ।

आगमका यह बचन है कि —

“सहस्रयो गुणा नमवर्तिन पर्यायाः ।”

अर्थात् साधमें रहनेवाले गुण होते हैं

—बाबी

पट्वायें होती हैं । इस कारण इस गतिहेतु बाबक घमद्रव्यके शुद्ध ही गुण और शुद्ध ही पट्वायें हैं ।

अधमद्रव्य जीव पुट्टोंकी स्थितिमें कारण है, यही इसका विशेष गुण है । घमाश्रितकायके समान इसके भी सर्व शुद्धगुण और शुद्धपट्वायें होने हैं । आकाशद्रव्यका जीवादि द्रव्योंकी स्थान देना ही विशेष गुण है, अन्य सर्व गुण और पट्वायें घम अधम द्रव्यके सदृश हैं ।

लोकाकाश, घमद्रव्य, और अधमद्रव्य इन तीनोंका प्रमाण समान है, अलोकाकाश निश्चयकरके सबसे बड़ा है ।

टीकाकार कहते हैं कि—“ हे मन्व्य जोग ! इस लोकमें जीव पुट्टोंको गमन वा स्थितिका कारण तथा सर्व द्रव्योंकी स्थानदान देनेका कारण जो जो द्रव्य हैं उन सबको द्रव्य अपेक्षा यथाऽऽवबलोकन कर, तू सर्वेश निज आरमोह हरनमें ही प्रवेश कर ।

भाषा—घमाश्रितकाशको छोड़करमात्र ही जान, इनके संपादेय न मान, एक अपने शुद्ध आत्मीक तत्त्वकी भावना कर । वही भावना तेरेबिषये मदा चक्षुष्याणकारी है ॥ ३० ॥

आगे व्यवहार काळके भेदोंको कहते हैं—

समपात्रलिभेदण दु, दुविपप्य अह्व होई तिवियर्प्य ।

तीदो मंस्येज्जानलि, हटमठाणप्पमाण तु ॥ ३१ ॥

सामान्य अर्थ—समय और आबलीके भेदसे व्यवहारकाळके दो भेद हैं अथवा तीन भेद हैं । अतीत काळमें अनंत आबली कीती है येषा हो अनंत इतसरथान अर्थात् सिद्धोंक प्रमाण है ।

विशेष अर्थ—इस ताथामें व्यवहार काळके विविध भेदोंका कथन है । एक आकाशके प्रदेशमें जो परमाणु तिष्ठा है उसको अथ परमाणु मर चक्रनरूप गतिसे ज्ञाय जाता है । उसमें

जितना समय लगता है उसको समय नामका व्यवहार काळ कहते हैं ।

इस प्रकारके असंख्यात समयोंका एक निमेष ही है । आस्रको पकच मार्गमें जितना समय लगे उसको निमेष कहते हैं । आठ निमेषोंकी एक काष्ठा होती है । १६ काष्ठोंकी एक कडा होती है, ३२ कडाओंकी एक घटिका होती है । ६० घटिका अर्थात् नाडिकाका एक दिनरात होता है । ३० दिन रात्रिका एक मास होता है । दो मासकी एक ऋतु होती है । तीन ऋतुका एक अयन होश है । दो अयनका एक सबरघर अर्थात् वर्ष होता है ।

इस प्रकार व्यवहार काळ जानना । यही व्यवहार काळ समय और आवृत्तियोंके भेदसे दो प्रकार है । असंख्यात समयोंकी एक आवृत्ती होती है । यही काळ अतीत, अनागत और वर्तमानके भेदसे तीन प्रकार है । अब अतीत काळका प्रपञ्च कहते हैं । सिद्ध पर्यायको प्रगट करनेवाले अतीत काळमें अनन्त सिद्ध हो गए हैं । ससार व्यवस्थाको त्यागकर छ सस्थान अर्थात् आकार विशेष जिनके नहीं रहे वे सिद्ध हैं, वे अनन्त हैं, तिनके सदृश व्यवहारकाळ भी अनन्त बीता है । अनागतकाळ भी भविष्य सिद्धोंके समान अनन्त है । यहा गाथामें जो असंख्यात आबद्धि शब्द है उसका यहा प्रकरणके बशसे अनन्त आबद्धि अर्थ है ऐसा निर्दिष्ट होता है ।

व्यवहारकाळके भेद भी पञ्चारित्कायमें भी ऐसे ही कहे हैं । टीकाकार कहते हैं कि यह व्यवहारकाळ जो समय, निमेष, काष्ठा, कडा, नाडी, आदि दिवस वष आदिके भेदसे प्रगट होता है, उस व्यवहारकाळसे मुझे कोई फलही प्राप्ति नहीं होती है । मुझे तो निज उपमावहित परम एक आत्मीक तत्त्वको छोड़कर और कोई नहीं है जिससे वास्तविक फलका लाभ हो ।



भाषा—काष्ठका विकल्प मात्र शेषरूप है, उपादेय नहीं है। उपादेयरूप तो एक अपना शुद्ध आरमीक तत्व ही है। और कोई नहीं है।

अब मुख्यकाष्ठको कहते हैं—

जीरादु पुग्गलादो, ऽणंतगुणा चारी सपदा समया ।

लोपायामे सति य, परमद्वौ सो हवे कालो ॥ ३२ ॥

सामान्य अर्थ—जीर्णसे पुग्गुल अनंत गुणे हैं वैसे ही पुग्गुलसे अनंत गुणे काष्ठके समय भी हैं। जो काष्ठानु बोका काशमें तिष्ठे हैं वे काष्ठानु परमाथ यानी निश्चय काष्ठ हैं।

विशेष अर्थ—इस गाथामें मुख्य काष्ठका वर्णन है। जीर्णशेषे अनंत गुणे पुद्गलबोसे अनंत गुणे काष्ठके समय हैं। यह समय व्यवहार काष्ठ है। परंतु काष्ठके अणु जो बोकाकाशके एक प्रदेशमें अलग अलग तिष्ठे हुए हैं वे परमार्थ यानी निश्चयकाष्ठ हैं। ऐसा ही भीप्रबचनसारमें कहा है। इस गाथामें भी समय शब्दसं मुख्य काष्ठ जो काष्ठानु उपादा ही स्वरूप कथन किया है।

समय नाम व्यवहार काष्ठरूप समय समया उपादान कारण जो समय अर्थात् काष्ठानु सो अ-यवदेश अर्थात् द्वितीयादि प्रदेश रहित है। अर्थात् काष्ठानु एक प्रदेशी है। दूसरे दूसरे काष्ठानुबोसे जुड़ा हुआ नहीं है। जो काष्ठानु परिणमनका सहकारी है, इस हेतुसे वर्तन करता है। एक प्रदेश मात्र पुद्गल आविधारी जो परमाणु द्रव्य मदगतिसे आकाश द्रव्यके अ य दूसरे प्रदेशको जाता है त्रिषु प्रदेशमें काष्ठानु कथान्त है।

इस परमाणुके इस वर्तनरूप कार्यमें काष्ठानु सहकारी है। सर्वोक्त बताना उदासीन रूपसे प्रवृत्तनमें सहाई होना काष्ठानुरूप कार्य है ॥ अ य प्रथममें कहा है—

“अर्वात्—छोकाकारके एक एक प्रदेशमें रत्नोंकी राशिके समान जो बाह्यणु करके कथाम है सो काह्यणु आकारके संख्यात प्रदेशोंके समान असम्पात है” । ऐसा ही मागवकाशमें कहा है अर्वात् “काह्यद्रव्यके अभावसे पर्यायोंका परिणमन नहीं हो सकता ।

परिणमनके बिना न द्रव्य ठहर सकता है न बलकी पर्याय ले सकती है । इसलिये सब अर्थोंका अभाव हो जायेगा । अकार कहते हैं कि जैसे कुम्भके बनानेमें लकड़ काज है, अकार और द्रव्योंके बतानेके कारण ही वह काह्य द्रव्य है ।

इस द्रव्यके बिना पाच अतिशयोक्तियोंका सतत अर्थ प्रकाशमें नहीं हो सकता । अकारके पदार्थोंके य जीव, पुत्रक धर्म, अधम, आकाश, काह्य छहों द्रव्य अकार हैं, इसलिये ये सब अर्थ बनाने योग्य हैं ।

भाषार्थ—अकारकीतया कथित अकारके अर्थप्रदान नहीं हो सकता । इसलिये उनके अकारमें अर्थ प्रदान सरय हैं । यही निश्चय आरम्भितबाह्यकारके करना योग्य है ।

परि भी काह्य द्रव्यके विषयमें कहा जाता है—

जीवादीद्व्याण, परिवर्तणकारण ह्ये फालो ।

धम्मादिचओमेण, सहाउगुणपञ्जपा होति ॥ ३३ ॥

सामान्य अर्थ—जीवादि द्रव्योंके परिवर्तनका जो कारण जो काह्य द्रव्य है । तथा धर्म, अधम, आकाश, काह्य इन चार द्रव्योंके अभावके गुण और पर्याय होते हैं ।

विशेष अर्थ—इस मायामें काह्यदि पुत्र अमूर्तके अर्थप्रदान द्रव्योंके अभावके गुण और पर्यायोंका कथन है । निश्चय काह्यद्रव्य, जीव पुत्रक धर्म अधम और आकाश इन पाचों द्रव्योंके अभावके

परणमन करने अर्थात् बदलनमें कारणमूत्र है। इसीद्विजे इमको परिवर्तन लिंग कहते हैं। घम अथर्व, आकाश और काष्ठके अपनेमें स्वजातीय किसी प्रकारके धंधके सम्बन्धका अभाव है, इस कारण इनमें विभावगुण पयाय नहीं होती है, पर तु मात्र स्वभाव गुणपर्याय ही होती है।

स्वभाव गुण पर्यायोका कथन पहले कहा जा चुका है इसद्विजे यह सल्लेपमें कहा है।

प्राक्काथ—प्रत्येक ऋष्य स्वभाविक गुण तो स्पष्ट कथन बिरे जाचुके हैं। इन चारमें पदगुणो दानि वृद्धिरूप स्वभाव पर्याय हं होती है। इनको समुद्र बल्लोबवत् जान आगम प्रमाणमें निश्चय करना योग्य है।

टीकाकार कहते हैं कि इस प्रकार पद द्रव्योंका प्रगट व्याख्यान जो अतिशय करके कहा गया है सो बहुत ही रमणीक है, ऋष्य जीकोके कानोंको अमृत समान है तथा निज स्वरूपके मनन करनेवाले मुनियोंके द्विजे यह ज्ञान दका दाना दे। इन पदद्रव्योंका स्वरूप सवेदा भव्यजीर्णोंको संसारसंछुडानेके द्विजे कारणरूप है।

आगे अतिक्रायको कहते हैं—

प्रदे छद्द्व्याणि य, काल मोत्तूण अतिक्रायत्ति ।

णिहटा जिणममये, काया ह् बहृप्पदसत्त ॥ ३४ ॥

सामा य अथ—इस गायामें द्रव्योंमें काष्ठको छोड़ अ य पात्र द्रव्य अतिक्राय कहलाते हैं, क्योंकि निश्चयकरके इनके बहुत प्रदेशीपना है, इससे कायसंज्ञा है। प्रसा जिनआगममें कहा है।

विशेष अर्थ—इस गायामें काष्ठ द्रव्य विषाय अ य द्रव्योंके अतिक्रायका बणन है। काष्ठद्रव्य दो तीन आदि प्रदेशोंसे रहित है इसके एक ही प्रदेश है। काष्ठके द्रव्यपना ही है। अन्य पात्रके

कायपना है ही, क्योंकि ये पाशों कायके समान कायरूप प्रदेशोंके समूहको धरनेवाले हैं ।

अस्तिनाम सत्ताका है । यह सत्ता दो प्रकारकी है—एक अबातर सत्ता दूसरी महासत्ता । समस्त वास्तुओंमें बिस्तार करके फैली हुई महासत्ता है । प्रति नियत एक वास्तुमें ठगानेवाली अबातर सत्ता है । महासत्ता मध्य स्वरूपोंमें व्यापिनी है, कि तु अबातर प्रति नियत एकरूपव्यवस्थापिनी है । अतएवप्रायसमें रहनेवाली महासत्ता है ।

प्रति नियत एक ही पदार्थमें रहनेवाली अबातर सत्ता है । अस्ति नाम रहनेका है । अस्त्य भाव अस्तिरश्च । अस्तिशब्दके अर्थमें कायरश्चको धरनेवाले ये पंचाग्निहोत्र हैं । काष्ठके अग्निरश्च है परन्तु कायरश्च नहीं है क्योंकि काष्ठके कायके समान बहुत प्रदेश नहीं है ।

दोहाकार कहते हैं कि “ बह पट् द्रव्यरूप रत्नमाहा जिनमार्गैरूपी ममुद्रस पूर्वं आचारार्थान मध्य जीर्णैक कृत्वा आभरण बनानेके लिये शीतिपूर्वक सङ्गत की है ॥ ”

भाषार्थ—इन पट द्रव्योंका स्वरूप भयभीतोंको अपने ध्यानमें भले प्रकार रखना चाहिये ।

अथ द्रव्योंकी प्रदेशसंख्याको कहते हैं—

सखेजामखेजा, णतपदेसा इति मृतम् ।

धम्माधम्मस्म पुणो, जीरस्म अर्मसदसा दु ॥ ३५ ॥

लोषायामे तान, इदरस्म अणतय ह्ये दहो ।

कालम्स ण मायत्त, एयपदेसो ह्ये जम्हा ॥ ३६ ॥

शामान्य पुद्गलके संख्या,

और अनंत प्रदेश होते हैं। धर्म, अधर्म, तथा एक जीवके संख्यात प्रदेश होते हैं। लोकाकाशके भी इतने ही हैं। अलोकाकाशके अनंत प्रदेश हैं। काळद्रव्यके कायपना नहीं है इससे एक प्रदेश ही होता है।

विशेष अर्थ—इन दो गाथाओंमें छहों द्रव्योंके प्रदेशोंका कथन है। शुद्ध पुद्गलके परमाणुद्वारा प्रत्येक किया गया जो आकाश स्थल को प्रदेश कहलाता है। इन प्रकार पुद्गल द्रव्यके प्रदेश संख्यात असंख्यात और अनंत होते हैं।

भाषार्थ—कोई पुद्गलका स्थल दोसे आदि छे संख्यात परमाणुओंका, कोई असंख्यातका तथा कोई अनंतका होता है। लोकाकाश, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य तथा एक जीव द्रव्यके असंख्यात प्रदेश होते हैं। अलोकाकाशके अनंत प्रदेश होते हैं। काळके एक ही प्रदेश है। इसी कारण इसके कायपना नहीं है परन्तु द्रव्यपना अवश्य है ही।

टीकाकार कहते हैं कि "यद्द पश्चात्करी ररनोंका आवरण मैंन मुमुक्षुओंके पठकी शोभाक लिये रचा है। जो सुद्धिमान है वह इसके द्वारा व्यवहार मार्गको जानकर फिर शुद्ध मार्गको जानो अर्थात् अनुभव करो।

अब अजीव द्रव्यके कथनको संकोचते हैं—

पुद्गलद्वय मोक्ष, मुक्तिविरहिया ह्यति सेसाणि ।

चेदणभासो जीवो चेदणगुणवज्जिया सेसा ॥ ३७ ॥

सामान्य अर्थ—पुद्गल द्रव्य मूर्तोक है, अथ शेष मूर्तिरहित है। जीव शेष यभाषवान है। शेष चैतन्यगुणसे रहित है।

विशेष अर्थ—इस गाथामें अजीव द्रव्यका संक्षेप है। मूल द्रव्योंमें पुद्गल द्रव्यको ही मूर्तिमत्पना है। शेष जीव धर्म

अन्तर्म आकाश तथा काळ मूर्तिपनसे रहित अमूर्तक है । तथा चेतनपना मात्र एक जोषद्रव्यके ही है । अथ पाचों द्रव्य चेतना रहित है । तत्रजातीय और विजातीय ध्वनकी अपेक्षासे जीव पुद्गलोंके ही अगुदपना होता है । परन्तु धर्मादिक चार द्रव्योंके विशेषगुणकी अपेक्षासे गुदपना ही है ।

टोकाकार कहते हैं कि जिस मन्वोत्पत्तिके मुख्यरूपी शरीरसे उद्विग्न पशोंकी आबली अन्तर हाकर निम्न पकाशमान होती है, उस निमोदमुद्विगारी जीवके हृदयकी कमलके मन्वमें शेष ही समयसार अर्थात् गुदारमा पकाशमान होता है । इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ।

भाषाय—जो कोइ इन सुन्दर गायामोड पर अथको समझे उसको शीघ्र ही समयमार अर्थात् गुद आत्माकी उपलब्धि होती है ।

इस प्रकार सुकविजन-कमलोंके द्विये सूर्यसमान, पचेद्रियोंके विषयोंके पशःपसे रहित शरीरमात्र ही परिमर्हके भारी भीषणवभूमलपारीद्व द्वारा निरचित धीनियमधारकी तात्पर्यवृत्ति नामक्याष्टवार्म अजीवाधिकार नाम दूसरा प्रुतवध पूर्ण हुआ ।



## ३-शुद्ध भावाधिकार

लीलादिवहितिन्त्र, हयगुरादेयमप्पणी अण्णा ।

कम्मोपाधिममुभय, गुणपञ्जाणहिं वट्टिरत्तो ॥३८॥

सामान्य अर्थ—जीवादि बाह्य तत्त्व हेय हैं, इस आत्माको निश्चयकरक आत्मा ही उपादेय है । यह आत्मा कर्मकी उपाधिसे पैदा होनेवाले गुणवर्णियोंसे मिश्र है ।

विशेष अर्थ—इस गाथामें हेय उपाधेयतत्त्वोंके स्वरूपका कथन है । जीव, अजीव, आम्बुष षष, सबर, निर्नेरा और मोक्ष यह सात तत्त्व परब्रह्म स्वरूप हैं इन्द्रिये महण योग्य नहीं हैं । जो आत्मा स्वाभाविक वैराग्यरूपी महत्त्वेके शिष्यरक्षा शिक्षामणि है, परब्रह्मोंसे उदासीन परागमुख्य है पंचोद्भवके विषयोंके बिस्तारसे रहित शरीरवात्र परिग्रहका धारी है, परम जित अर्थात् कषाय-विजयी योगीश्वर है तथा जिसने अपने ही ब्रह्ममें अपनी बुद्धिको जोड़ दिया है ऐसे वीतराग आत्माकेद्विये वही आत्मा उपादेय अर्थात् महणयोग्य है ।

जो औदायिक, औपशमिक, क्षयापशमिक और क्षायक चारों भावोंके अयोग्य होनेसे ब्रह्मरुचम ज्ञानावरणादि भावकर्मों रागद्वेषादि नोकर्मों बाह्य शरीरादि इन रूप जो उपाधि वस्त्रसे कल्पन हुए जो विभावगुण और विभावपट्टशय धनसे रहित है । जो आदि अतरहित अमूर्त्तिक अतीन्द्रिय भावसे ही शुद्ध चहज पारिणामिक भाव स्वरूप कारण परमात्मा है । ऐसा ही आत्मा उपादेय है ।

अत्यन्त निश्चय भव्य जीवोंकेद्विये ऊपर कहे प्रमाण निज परमात्माकी छोड़कर और कोई वस्तु उपादेय नहीं है, अर्थात् उनके पक्ष निज शुद्ध स्वरूपका ही महण है । टीकाकार कहते हैं

“ सर्वतत्त्वोपे एक मारमृत जो समयवार, अर्थात् शुद्ध अरमा दे वमकी चय हो । कैसा है वह समयवार, सम्पूर्ण विद्यय अर्थात् बिकारोमे दूर है । कठिनतामे निवारणे योग्य कामदेवको छिपने अरत कर दिया है । पापरूपी वृक्षके कटनेको कुठारके समान है, शुद्ध ज्ञानका मानो अवनार है, अतः इत्यपी समुत्से परिपूा है, तथा कलेशरूपी स्वारममुरमे वार हो चुका है ।

भाषार्थ—द्वितयाश्रितो एवा हा माररवरूप परमरमाको ध्यानमें लेकर अनुभव करना योग्य है । फिर भी कहते हैं —

णो शुद्ध महारठाणा, णो माणप्रमाणमारठाणा वा ।

णो हरिममारठाणा, णो जीवस्म हरिस्म टाणा वा ॥ २९ ॥

सामान्य अर्थ—इस समयवारके निश्चयकरके न तो कोई स्वभाव स्थान है न मान अवमानरूपी भाषारथान हैं न इत्यभावरूप स्थान हैं और न अइत्यभावरूप स्थान हैं ।

विशेषार्थ—इस गायामें निर्विकल्प तत्त्व स्वरूपका अगत है । मृत भविष्य वर्तमान तीनों कालमें जा निठवाधि स्वभाव है अर्थात् जिनके कोई परद्रव्यव्यवस्थी न्याधि नहीं है, ऐसा हा शुद्ध जीवागिष्ठकाय है उनके निश्चयकरके कोई विभावरूप स्वभावरथान नहीं है । गुण अगुण सबही मोह राग और द्वेषके अभावसे अथ शुद्ध जीवके मानअवमानके कारणमृत कोई कर्मके वदयराथान नहीं है । न निश्चय करके उनके गुणोपयोगरूप परिणति हाती है ।

इसद्विय गुणकर्मका बंध नहीं होता । गुणकर्मके न होनेसे साधारण असार सुख नहीं हाता, साधारण सुखके अभाव होनेसे वम शुद्ध जीवके कोई इयक स्थान नहीं है । इवीवचार वम शुद्ध जीवके अशुभापयोगकी परिणति नहीं होती इस कारण अजग वमका बंध नहीं होता ।



अशुभकर्मके अभावसे दुःख नहीं होता । दुःख न हानसे वर शुद्ध आत्माके कोई अल्प अर्थात् निहान इ (दुःख)के स्थान नहीं होते । टीकाकार कहते हैं कि—'हे भव्यजीव ! यदि तू इस दुःखरूप संसारसे इटकर सुखकी इच्छा करता है तो तू क्यों नहीं अपनी बुद्ध उस आत्मामें करता, जो प्रीति-अप्रीतिसे रहित अविनाशी पदमें विराजमान है ।

जो अथवा अतम सुख होकर भेदरहित उदयमान सुषमई निराकार प्रकाशमान है । जिसका निर्मल शरीर चैतन्य-अमृतसे परिपूर्ण भरा हुआ है । तथा जो आत्मरूप स्वोच्चियोंके हो ध्यानके गोचर है ।

भावार्थ—भव्यजीवको पचित है कि निरंतर ऐसे ही उत्कृष्ट स्वभाववाले आत्माका मनन कर अद्भुत और अनुपम सुखकी प्राप्ति करे । फिर भी कहते हैं—

जो ठिदिघटाणा, पयदिघटाणा पदेसठाणा वा ।

जो अशुभागटाणा, जीमस्स ण उदयठाणा वा ॥ ४० ॥

सामा य अथ—वस शुद्ध जीवास्तिकायके न तो कोई स्थिति-बंधके स्थान हैं, न प्रकृतिबन्धके स्थान हैं, न प्रदंश बन्धक और अनुभाग बन्धके स्थान हैं तथा उसके कोई उदयरथान भी नहीं हैं ।

विशेषार्थ—इस गायामें वष ब उदयके अभावस्वरूपका कथन है । उस शुद्ध जीवमाके कषायरूप स्थितिबन्धका कारण ऐसे कोई स्थितिबन्ध स्थान नहीं है अर्थात् जब आत्मामें कर्मोंका बंध होता है तब उसमें आत्माकी साधन कमकि वष बन्धके रटनेकी मियादका नाम स्थितिबन्ध है । उस आत्माके स्थितिबन्धके द्विय हुये कोई स्थिति बन्धरूप कर्म नहीं है । और न स्थितिबन्धका कारण कोई कषायस्थान है । न उस आत्माके ज्ञानावरण आदि अष्ट

कर्मरूप होन योग्य पुद्गल शब्दाका स्वीकाररूप प्रकृतिवत् न है ।  
और न-वचक कारण योगस्थान हैं ।

अशुद्ध आत्माकी सत्तामें कर्मवगणारूप पुद्गलोंका परस्पर  
प्रदेशोंमें प्रवेश हो जाना भी प्रदेशवन्ध है । तब शुद्ध आत्माक न  
तो यह धम है और न इस वचके योग्य योगस्थान ही हैं ।

शुभ अशुभ कर्मोंको सब निर्परा होनेका समय आता है तब  
वे सुख-दुःख रूप फल प्रदान करते हैं उस समय जिस शक्तिसे  
फल प्रदान होता है उस शक्तिका नाम अनुभाग बन्ध है, उस  
शुद्ध आत्मामें इस अनुभाग बन्धका और इसके कारण कृपाय  
स्थानोंका जरा भी अन्वकाश नहीं है । और न इस निर्मल  
आकाश सदृश आत्मामें द्रव्यकर्म और भावकर्मक उदयरूप  
स्थानोंके ही रहनकी जगह है । ऐसा ही भी अमृतचन्द्रसूरिने”  
कहा है—

जिस आत्मामें बद्ध और स्वभावको छिप हुये कर्म प्रगट  
रूपसे ऊपर ही ऊपर रहते हैं उसमें स्थान करनेरूप प्रतिष्ठाको  
नहीं प्राप्त करते, तथा जो सब वरफसे प्रकाशमान है ऐसे  
आत्माको जगत्का सम्पूर्ण मोह छोड़कर हे भव्य जीव तू अनुभव  
कर । कसा है आत्मा, जो सम्यक्स्वभावरूप है ।

ऐसा ही “टीकाकार” भी कहते हैं । “मैं उस चैतन्यके पदका  
अतिशय करके अनुभव करता हूँ जो निरत्य शुद्ध विद्वान्दमयी  
सपदाकी स्थानि है वस्तुष्ट है । और विपदाओंका स्थान नहीं है ।  
अर्थात् जिसमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं है । जो धव्यजीव  
सब कर्मरूपों विपदवृत्तसे पैदा होनवाले अपन आत्माके रूपसे  
विश्वक्षण साधारण फलोंको त्यागकर स्वाभाविक चतुर्वररूप  
अपन आत्मतत्त्वको इस समय भोगता है वह भू भू पत्नीव शोध ही  
मुक्तको प्राप्त करता है । इसमें कौन जीव संशुभ कर सकता है ?

भावार्थ—जो कोई ही द्वयजनित विषयसुखोंको विषयके समान जानकर त्यागता है और अपने आत्मीकतरबका अनुभव करता है वही जीव कर्मोंको निजग करता हुआ कुछेक भवोंमें सुखको प्राप्त कर सकता है। इसमें संदेह नहीं करना चाहिये।

फिर भी क०ते हैं—

णो रुद्रयभापठणा, णो सयउत्तममहापठणा वा ।

जोदह्यभापठणा, णो उवमणो सहारठणा वा ॥ ४१ ॥

धामा य अर्थ—उम शुद्ध जीवास्तिकायके न तो क्षायिकभाबके स्थान हैं न क्षयोपशमभाबके स्थान हैं, न औदयिक भाबके स्थान हैं और न उपशमभाबके स्थान हैं।

विशेष अर्थ—इम गायामें चार विभाव स्वभावोंके कथनके द्वारा पचम भावका व्याख्यान है। कर्मके क्षयसे जो भाब उपशम हो मो क्षायिक भाब है, जैसे सात प्रकृतियोंके क्षयसे क्षायिक सम्बन्ध होता है व चारित्र मोहनीके नाशसे क्षायिक चारित्र होता है।

कर्मके क्षयोपशमसे जो पैदा हो वह क्षयोपशमिक भाब है अर्थात् सब पातीके उद्घाभाबरूप क्षयसे तथा सब पातीके उपशमसे तथा दश पातीके उद्घयसे जो भाब ही सो क्षयोपशम भाब है जैसे छ प्रकृतियोंके उपशम तथा सम्बन्ध मोहनीके दशपाती उपधकोंके उद्घयसे क्षयोपशम सम्बन्ध होता है।

जो भाब कर्मके उद्घयसे होता है सो औदयिक भाब है, जैसे नक्षत्रिके उद्घयसे नागकी। कर्मके उपशमसे जो भाब हो सो औपशमिक भाब है जैसे सात प्रकृतियोंके उपशमसे उपशम सम्बन्ध होता है। एवं कर्मरूपी उपाधिसे रहित जो भाब आत्मिक स्वामिक प्रणाममें हो सो पारिणामिक भाब है।

इन पाँच भाषोंमें औपशमिक भाष दो प्रकार, क्षायिक भाष नौ प्रकार, क्षयोपशम भाष १८ प्रकार, औदायिक भाष २१ प्रकार तथा पारिणामिक भाष तीन प्रकारका है । औपशमिक भाषोंके दो भेद हैं, एक उपशम-सम्यक् दूसरा उपशम चारित्र । क्षायिक भाष नौ प्रकारके है, क्षायिक सम्यक्, क्षायिक चारित्र अर्थात् यथास्थित चारित्र, केषब्रह्मज्ञान, और केषब्रह्म दर्शन तथा एक तयाय कमक नाश होनसे पैदा होनवाले अन तदान, अनस्त लाम अन उ भोग, अन त उपभोग और अन तबाध हैं ।

क्षयोपशमिक भाषके १८ भेद यह हैं—मति ध्रुव, अर्वाधि, मन परय एस ज्ञान ४, कुमति, कुप्रुत और विभग अर्वाधि ऐसे अज्ञान तीन । धनु अच्यु, अर्वाधि ऐसे तीन दर्शन । काळ करण, उपदश उपशम और प्रायोग्यता ऐसा पाँच अन्विषा अर्थात् काळ अन्वि त्रिषको क्षयोपशम अन्विष भी कहत हैं दूसरी उपशम अर्थात् विगुद्धि अन्विष, तीसरी उपदश अर्थात् देशना अन्विष, चौथी प्रायोग्य अन्विष, पचमो करण अन्विष, क्षयोपशम सम्यक् और क्षयोपशम चारित्र तथा सयमासयम परिणति ये १८ भेद क्षयोपशम भाषके हैं ।

औदायिक भाष २१ प्रकार इम भाति है—नारक, तिर्येच, मनुष्य, दब ऐसे चार गति, मोघ मान माया मोघ ऐसे ४ कषाय । आ, पुञ्जिग, नपु मक ऐसे तीन डिग, सामा उ समह नयको अपेक्षासे मिश्रदर्शन एक अज्ञान एक, अमयम एक, अविद्वरष एक शुष्ट, पद्म पीत कापोत्र, नीळ, कृग ऐस छ लेश्या ।

पारिणामिक भाष ३ प्रकार है—जीवरष पारिणामिक, भव्यरष पारिणामिक और अभव्यरष पारिणामिक । इनम जीवरष पारिणामिकभाष भ-य अभव्य दोनोंक होता है । भ० रषभाक भव्योद्दीक और अभव्यरष अभव्योद्दीके होता है ।

इस प्रकार पाचप्रकार भावोंके ५३ भाव हैं । इन पाच भावोंके बीचमें क्षाधिकभाव तो कार्यममपसार स्वरूप है । यह कार्यरुद्र भाव तीर्थंकर उपलक्षणसे सामान्य केषही अथवा पिष्टके होता है । वैसे हैं तीर्थंकर, तीन लोकक प्रक्षोभके कारणमूल तीर्थंकरपनेके द्वारा सम्पूर्ण प्रकार निर्मल केषज्ञान जिनको प्राप्त हुआ है । औद्यिक, औरशमिक, और अयोपशमिक, ये भाव संसारिविहीके होते हैं ।

मुक्त जीवोंके ये भाव नहीं होते । पर तु वे चारों ही भाव कर्मोंके आचरणकी अपेक्षासे होते हैं । इसलिये ये चारों ही मुक्तिके कारण नहीं हैं । तीनों कालमें जिसको किसी प्रकारकी संपाधि नहीं है ऐसा निरुपाधि निरजनरूप जो करना ही शुद्ध पारिणामिक पंचम भाव है वषट्की भावना करनेसे मुमुक्षु जीव मोक्षरूप पंचम गतिमें जाते हैं, जायेंगे और गए हैं ।

भाषार्थ—यहा शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षासे कथन है । जब मुमुक्षु अपने निर्बिकल्प शुद्ध स्वभावका अनुभव करता है तब ही कर्मव न शिथिल होते हैं तथा जनकी निर्जरा होती है । और आत्माकी मोक्ष होनेकी अवस्था निकट जाती जाती है ।

टाकाकार कहते हैं कि “ दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य, तप और योग्य ऐसे पाच आचारोंको आचरणवाले विद्वान लोग सप्त प्रपञ्चकी रथाग कर एक पंचमभावहीकी मोक्ष प्राप्त करनेके लिये स्मरण करते हैं । और किसी भावका मनन नहीं करते । सर्वप्रथम कमंडी भी भागी जीवोंके लिये भोगोंका मूल समस्तपर परम उत्तरात्मी मुनि छोड़ देते हैं और परम समयसाररूप सारमूल अपने तत्त्व स्वरूपको समारसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये भजते हैं इसमें कौनसा दोष है । अर्थात् बही निर्दोष काय है । ”

भाषार्थ—मुनीश शुभ पुण्यको भी देख समझते हैं और शुद्ध

स्वरूपकी साधभूतभावनामें बबलीन रहते हैं । यही भावना शुद्ध स्वभावके प्रगट होनेके द्विये परम साक्षात् कारण है । इस द्विये मोक्षपद इच्छुर्कोंको स्वरूपभावना ही कतक्य है ।

चउगइभवसभमण, जाटजरामरणरोयसोका य ।

कुलजोणिजोवमग्गण, ठाणा जोनस्स णो सन्ति ॥ ४२ ॥

सामा य अर्थ—इस शुद्ध जीवके चार गतिमें भ्रमण नहीं है, न इसके जन्म, जरा, मरण और शोक हैं । तथा इसके कुल, योनि, जीवसमाज और मार्गणा स्थान भी नहीं हैं ।

विशेष अर्थ—इस भाषामें शुद्ध निश्चयनयको अपेक्षा यह कथन है कि इस शुद्ध जीवके समस्त सकारक बिकार नहीं हैं । यह शुद्ध जीवार्थिकाय द्रव्य कम और भाव कर्मको स्वीकार नहीं करता इस कारण नरक, त्रियज्ञ, मनुष्य और देव येही चार गतियोंमें भ्रमण नहीं करता ।

यह आत्मा निरय शुद्ध चिदानन्दरूप है कारण परमात्मस्वरूप है अर्थात् इसीके ही ध्यान करनेसे परमात्मा होता है । न इस जीवके द्रव्यकर्म भावकर्मके महण योग्य विभावपरिणति होती है इसीद्विये इसके जन्म, जरा, मरण, रोग और शोक नहीं है । न इसके चार गति सम्बन्धी जीवोंके योग्य कुल और योनिके विकल्प हैं ।

कुल और योनिके भेद कइत हैं—पृथ्वीकायिक जीवोंके चारसहस्र कोड कुल हैं । जलकायिक जीवोंके सात लाख कोड कुल है । तेजकायिक जीवोंके तीन लाख कोड कुल है । वायुकायिक जीवोंके सात लाख कोड कुल है । अनरपरिकायिक जीवोंके अट्ठारह लाख कोड कुल है ।

दीन्द्रिय जीवोंके सातलाख कोड कुल हैं, तन्द्रिय

आठवाय कोड़ कुड़ है । चौत्रय जीबोंके नौवाय कोड़ कुड़ है, पंचेन्द्रियोंमें जड़घर जीबोंके साढ़े बारह बाय कोड़ कुड़ है, आठवायारी पक्षियोंक बारह बाय कोड़ कुड़ है । चार पेर वाले पशुओंके पचीस बाय कोड़ कुड़ है । मनुष्योंके बारह बाय कोड़ कुड़ है, देवोंके छठ्ठोस बाय कोड़ कुड़ है, सब मिडके एकमौ साढ़े सत्तानव बाय कोड़ कुड़ है (१९७१०००००००००० कुड़ है) ।

अस योनियाके भेद कहत है—प्रबोधाधिक जीबोंक मात बाय योनिमुख है । जड़कायिक जीबोंक मात बाय योनिमुख है । तेजकायिक जीबोंक सात बाय योनिमुख है । वायुकायिक जीबोंके सात बाय योनिमुख है । निरय निगोद जीबोंके मात बाय योनिमुख है । अणुगति निगोद जीबोंके सात बाय योनिमुख है । अनापति कायिक जीबोंके दस बाय योनिमुख है ।

द्वौ त्रय जीबोंक दो बाय योनिमुख है । त्रीं त्रय जीबोंके दो बाय योनिमुख है, देवोंके चार बाय योनिमुख है । नारिकियोंके चार बाय योनिमुख है । त्रियेच पचे त्रियोंके चार बाय योनिमुख है । मनुष्योंके चोदह बाय योनिमुख है । खूद पचे त्री, सूक्ष्म पचे त्री, सक्षी पचे त्री असक्षी पचे त्री, द्वौ त्रय, त्रीं त्रय, चो त्रय यह मात प्रकारके जीब पयात और अणुगतके भेदसे चोदह प्रकार होते हैं । इनहाको १४ जीब समाप्त करतें हैं ।

गति, इन्द्रिय, वाय, योग, वेद, कपाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, खेदवा, भव्य, अमृक, संज्ञा, आहारक येसे १५ प्रकार भागणा स्थान हैं । इन समाप्त भागणास्थान आदिका स्वरूप श्री गोमट्टारसे जानना योग्य है ।

श्री भागवात् सूत्रघर श्री बु दकुण्डावायजीका यह अभिप्राय है कि शुद्ध निश्चय नयकरके अस भागवात् परमारमा अर्थात् शुद्ध जीवातित कायके यह कुड़ योनि, समाप्त, भागणा आवि कोई नहीं है ।

येसा ही भी अमृतचंद्र सुरिने कहा है। "सब ही घत य शक्तिसे खाबो जो पदार्थ हैं उनको इस समय त्यागकर तथा भगटरूप अपनी चैत य मात्र शक्तिमें प्रवेशकरक लगतक माझाव ऊपर ऊपर रहनेवाले अतरहित आरमाको अपने आरमाकाबिये यह परमात्मा अथाव महान आरमा अनुभव करे। चैत य शक्तिसे व्याप्त सबका आरमूत यह आरमा है, यह इतना ही है इसके सिवाय अन्य सर्व ही मान पुत्रक मन्व वी हैं।"

भाषाथ—चैत य शक्तिका पूज यह आरमा ही है। जगतमें रहते हुए भी जगतक पदार्थोंसे मिस्र है। इसद्विये इस शुद्ध आत्माका अनुभव कायकारी है।

टोकाकार कहत हैं कि "यह आत्मा जो निरतर ऐसी भावना करे कि मैं अत्यंत ज्ञानरूप हूँ तो भयानक संसार अन्वधी विकल्पको दूर करता है। और निर्बिकल्प समाधिको प्राप्तकरके सत्ता मात्र रहकर पर परणमनसे दूर सुखना रहित और पापबजित अवस्थाको प्राप्त करता है।

इस प्रकार भी बीरनाथ तीर्थेश्वरसे पापकुडरूपी अवधारका घात करनेको प्रबोध तथा लग्न जरा मरणका नाशक येसा उपदेश सगृहकर मत्स्य और शीबके जहाज जो सतपुठप सो ससार समुद्रके अगले ठटको पहुच जाते हैं। येस है बीरनाथरबामी, जिनके चरणारविंद भक्तिसे भरे इन्दीक मुकुटोंकी सत् रत्नमाळाओंसे पूजनीक हैं।

भाषाथ—धी बद्धमानरबामीका यही उपदेश है जो ससारके विकल्प दूरकर आत्मानुभव करो—इस उपदेशको मानकर खडने वाले जीव अवश्य मुक्तिक भोगी होते हैं।

किर न हैं—

६

६



गिद्धो गिद्धो, गिम्ममो गिक्लो गिरालो ॥

गीरागो गिरोसो, गिम्मूढो गिम्मयो अप्पा ॥ ४३ ॥

धामा य अर्थ—बह शुद्ध आत्मा दह रहित है, दृग्द रहित है, ममकार रहित है शरीर रहित है, आत्मत्व रहित है, राग रहित है, दोष रहित है, मूढता रहित है, तथा भय रहित है, निश्चय करक पचा जानो ।

विशेष अर्थ—इस गायामे कहते हैं कि शुद्ध आत्माके समस्त बिभावभावोंका अभाव है । मनदह, वचनदह, और कायदह अर्थात् मन वचन कायकी क्रिया और इनके दोषत्रयकर्म और भावकर्म होनेके भावसे बह शुद्ध आत्मा निर्दह है ।

निश्चय करक यह शुद्ध आत्मा ही परम पदार्थ है सब अ य पदार्थों रहित है इस कारण निर्दह है । न इस आत्माके गुण तथा अगुण समस्त मोद राग द्वेष हैं, इनके अभाव होनेसे यह आत्मा ममकार रहित निमम है । निश्चयकरके औदारिक, वैक्यिक, आदारक लेखस चार्मोग इन पाच शरीरोंसे रहित होनेसे यह आत्मा नि कठ अर्थात् अशरीर है ।

निश्चय करक यह परमात्माके परद्रव्यका कोई आत्मत्व अर्थात् पहारा नहीं है इसलिये बह निरात्मत्व है । मिथ्यात्व, बह, राग, द्वेष, हास्य रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ इषमकार चौदह प्रकारका अभ्यतर परिग्रह वष प्रमूके नहीं है । इसलिये बह शुद्ध आत्मा नीराग है ।

निश्चयकरके सम्पूर्ण पाप मरुतलयरूपी कीचडसे रहित धामयवात् स्वामाधिक परमपौरागरूप सुख समुद्रके मध्य द्वीपों हुई मगट सद्गज आत्माकी अवस्था होनेके कारण बह शुद्ध आत्मा

स्वाभाविक ज्ञानरूप शरीरके धारनेसे पवित्र है इसलिये वह आत्मा निर्दोष है ।

स्वाभाविक निश्चयनपके बलसे स्वाभाविक ज्ञान, स्वाभाविक दर्शन, स्वाभाविक चारित्र तथा स्वाभाविक परमकीदराग मुख्य आदि अनन्त परमबर्माँके धारण करनेवाला ऐसा जो निम्न स्वरूप तब बलके जाननको शक्तिमान है इस कारण वह शुद्ध आत्मा निर्मूढ अर्थात् मूर्खता रहित है । अथवा निर्मूढके स्थानमें निर्मूढ शब्द भी है इसलिये कहते हैं कि आदि चरित परगुण प्रकृत रहित अमूर्खके अतीन्द्रिय स्वभावस्वर होनेसे शुद्ध अदुःख व्यवहार नपके बलसे वह आत्मा मूत्र भविष्य वर्तमान त्रिधाट सम्बन्धो हीनदोषवर्ती समस्त प्रथम स्थावर जीवोंकी, व अर अथर पदार्थोंकी तथा उनके सम्पूर्ण गुण और पदार्थोंकी एक ही समयमें जाननेको शक्तिमान जो सम्पूर्णतया निर्मूढ कबलज्ञानरूप अथवा मलको धारण करनेवाला है, इस कारण वह शुद्ध आत्मा निर्मूढ अर्थात् कोई बात जिससे छिपी नहीं है ऐसा है ।

तथा जो आत्मा सर्व पापरूप चेरिबोँदा सेनाके डिवा पकार भी प्रवेश योग्य नहीं है ऐसे शुद्ध निम्न आत्म स्वरूप महात् दुग अर्थात् दिलेमें बलनेके कारण निम्न अर्थात् भयरहित है ।

भाषार्थ—जो दुःप्रवेश दुगमें बस, जदा कोई शत्रु पुन तदी लके लसको किस बातका भय ? ऊरर करे हुए विशेषगों चरित जो शुद्ध आत्मा है जो ही सदाद्य है—अनुभव करनेके योग्य है ।

ऐसा ही श्रीअमृतशीति नाम प्रथमें कहा है—“ वह शुद्ध आत्मा अ वा आदि स्वर समूह व विषय व क स आदि ध्यजन ऐसे अक्षरोंसे रहित है, स्वरहितानिसे रहित अविनाशी मुक्तरूप है, लसके पंच रस, अर्थकार, रूप, रसों, गंध, लस,

वायु, पृथ्वी अग्नि आदिके अणु और सूक्ष्मरूप तथा दिशाओंके शक्ति नहीं हैं ।”

टीकाकार कहते हैं वह समयसार, अर्थात् शुद्ध आत्मा दीर्घ ही हमारी रक्षा करे। वैसा है वह समयसार, जो पापरूपी बलके फाटनके लिये कुठारके समान है। जो दुष्ट कर्मोंकी विजयको प्राप्त कर चुका है, पररूप परिणमन करनेमें दूर है। रागरूपी समुद्रको जिमने सोख दिया है। नानापकारके विकार अर्थात् विभावभाव बलको जिमने नाश कर डाले हैं, जो सत्य ज्ञान रूपी समुद्र है तथा जिसने कामदेवकी अस्त कर दिया है। वह परमतत्त्व जयवत हो।

जो आत्मतत्त्वमें तल्लीन पद्मभ्रमणिके हृदय-कमलमें विराजित है, जो विकार रहित है, नानापकार विकारोंका नाश करनेवाला है तथा जो कल्पनामात्र अर्थात् देखनेमात्र सुन्दर ऐसे मन्मथके सुख दुःखोंसे रहित है, सुद्धिमान आचार्यान् जिस परमतत्त्वके ऐसा ही स्वरूप कहा है।

हे भव्य जीव ! यदि भव्यतारूपी भावने तुझको प्रेरित किया है तो तू संसारसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये ऐसे ही आत्मिक भजन कर, जो रात्रिदिन अपने अतन्त्र ज्ञानके आधीन है। संस्थानात्मिक गुणरूपी रजोंकी स्याति है, जो सर्वतत्त्वोंमें सार तथा आत्मिक परिणतिसे सर्वत्र सुखरूपी समुद्रमें मग्न है।

हे यती ! जो तू संसार और भोगोंसे वदास है तथा निःआत्मामें अपनी पुष्टि धारनेवाला है तो तू संसारके कारण कर्म बन्धको नाश करनेवाला जो यह आत्मिक पद है वही ही भजन कर। बिनाश होनेवाली बस्तुको चिंता करनेसे तुझको फल लाभ होगा ? मैं जब समयसार अर्थात् शुद्ध आत्माको समता लक्ष्यसे वदा पूजता हूँ, जो समयसार परमात्मा आकुलता

रहित है, अपने गुणोंसे अच्युत अर्थात् रुढ़ है, ज म मरण रोगादिसे रहित है तथा स्वाभाविक निर्मल आनन्दरूपी अमृतका घर है ।

पूर्व सूत्रकार आचार्योंने जैसा आत्मतत्त्वका वर्णन किया है ऐसा ही निज आत्मतत्त्वको अपने स्वसवेदन ज्ञानके द्वारा विशुद्धरूप ज्ञान करके तथा अनुभव करके जो कोई भव्यजीव मुक्तिको प्राप्त करता है उस शुद्ध आत्माको मैं उत्तम सुखकी प्राप्तिके लिये निरंतर भाता हूँ, अर्थात् मनन करता हूँ ।

जो भव्य जीव इस लोकमें परमात्मतत्त्वकी भावनामें अपने आत्माको परिणमन करता है वह भव भवके दुःखोंसे दूर होकर छिद्र अवस्थाको प्राप्त करता है । फेछा है वह परमात्मतत्त्व, जो आदि अन्तरहित, पापमुक्त, निर्वैद, अक्षय, अत्यंत विशाल और ज्ञानवान है ।

भावार्थ—सबै भावोंको भेटकर एक शुद्धस्वभावकी भावना ही कायकारी है ।

फिर भी यहीका स्वरूप करते हैं —

निम्नयो णीरागो, निस्सह्यो सपलटोपणिम्मुको ।

णिकामो णिकोदो, णिम्माणो णिम्मदो अप्पा ॥ ४४ ॥

सामा य अर्थ—वह शुद्ध जीवास्तित्वाय निमग्न है, बीतराग है, निशय्य है, सब दोष रहित है कामरहित, क्रोधरहित तथा मान और मद्गर्हित है ।

विशेष अर्थ—इस गायामें भी शुद्ध जीवका स्वरूप कहा है । वह आत्मा बाह्य और अन्त उर २४ प्रकारके परिग्रह रहित है इससे निमग्न है, सम्पूर्ण मोह रागद्वेषमयो चेतनत्वके अभावसे नीराग है । निदान, माया और मिथ्यात्व ऐसे

निश्चय है, शुद्ध निश्चय करके शुद्ध जीवास्तिकायके द्रव्यकर्म और नोकर्म नहीं हैं इससे सब दोषोंसे रहित है।

शुद्ध निश्चयकरके अपने परम तत्त्वमें भी बाछाके न होनेसे निःकाम है। निश्चयकरके शुभ अशुभ सब परद्रव्यकी परिणतिके न होनेसे निःक्रोध है, क्योंकि परद्रव्यका सम्बन्ध ही क्रोधका कारण है। निश्चयकरके सदा परम समतारसमयी है इससे मानका अभावरूप निमाण है। निश्चयकरके अपने धारमभावमें पूर्णपने धीन होनेके कारण मदरहित निर्मद है।

इस प्रकार विशेष करके शुद्ध सहज विद्वत्त्व ध्विनाशी निज कारण-समयधारका स्वरूप कहा है अर्थात् निज स्वरूपके मनन करनेसे समयधारता प्राप्त होती है इस कारण वही स्वरूप उपादेय अर्थात् प्रवृत्तयोग्य है। ऐसा ही श्री लक्ष्मणचन्द्रसूरिने कहा है —

सुचिर काळसे पर परणतिके छेदसे तथा कत्ता कर्म आदि भेदकी भ्रातिके नाश होनेसे जिसने शुद्धात्मतत्त्वको प्राप्त किया है तथा जो चेतन सत्य चि मान प्रत्यक्ष ज्योतिमें मूर्च्छित है उसकी स्वाभाविक उदयरूप महिमा सर्वदा मेरेको मुक्त करनेके लिये स्थिर रहे अर्थात् कायम रहे।

टीकाकार कहते हैं कि जिसने ज्ञान ज्योतिके द्वारा पाप-अशुभकारके समूहको नाश कर डाला है, जो निम्न ध्यानद आदि अशुद्ध महिमाका धारी है, जो सदा ही मूर्च्छितकरके रहित है, जो अपने स्वभावमें निश्चय रहनेके कारण अपने शुद्ध स्वभावका मूल है, जो भवमयको हरनेवाला मोक्षरूप सद्धमीका स्वामी है उसको मैं बन्दना करता हूँ।

आगे कहते हैं कि कारण परमात्माके पुत्रवद्भय सम्बन्धों बिचार नहीं है —



त्यागकर शुद्ध ज्ञान चेतनाके ही भाव मदा कतव्य है । ऐसाही एकत्र-  
सन्ततिमें कहा है —“ आत्मा मिश्र है जैसे ही घसके साथ रही दूई  
नोकम देह मिश्र है तथा द्रव्यकम मिश्र है, कम और आत्माकी  
निकटतासे जो विकार होता है वह विकार भी शुद्ध आत्मासे  
मिश्र है । काल, क्षेत्र आदि जो कुछ परद्रव्य हैं सो सब मेरे  
आत्मस्वरूपसे मिश्र हैं । सर्व ही द्रव्य अपने अपने गुण कलासे  
शोभित रहकरके मिश्र मिश्र ही रहते हैं ।”

टीकाकार कहते हैं कि “ आत्माके साथ घब होवे व न होवे  
शुद्ध जीवके स्वरूपसे समस्त ही मूर्तिका विचित्र जाळ  
मिश्र है प्रयक् है । यह भीजित-द्रवा शुद्ध बचन है । आचार्यानि  
भी ऐसाही कहा है । यही हम सुषनमें प्रगट भी है । हेतू भव्य  
निरय पसा ही समय ।”

अर्थ—सब पात्र यजनित विकारोंका अपने शुद्ध स्वरूपसे  
अलग अनुभव कर, परमात्मस्वरूपके मनन करनेका आयास  
करना योग्य है ।

आगे संसारी और मुक्तजीवोंकी समानता बताने हैं —

चारिसिया सिद्धप्या, भयमत्रिय जीव तारिमा हाति ।

नरमरणनम्ममुक्का, अठगुणालकिया जेण ॥ ४७ ॥

आमाय अर्थ—जैसे सिद्ध आत्मा हैं वैसे ही संसारमें जीव  
जीव हैं । जैसे हैं सिद्ध, जरा मरण और जन्मस रहित हैं तथा  
अष्टगुणसे शोभायमान हैं ।

विशेष अर्थ — शुद्ध द्रव्याधिक नयके अभिप्रायसे संसारी और  
मुक्तजीवोंमें कोई अन्तर न निकट भव्यजीव हैं वे प्रथम संसार  
अवस्थामें संसारके कलेजोंसे सचेत हुए और फिर स्वभावसे ही  
बैराग्यसे जीव हुए तथा द्रव्यहीन धार भावविगी मुनि हीके

ज्ञि होने परमगुहके प्रसादसे परमागमका अन्वयान किया और ध्यानके बलसे कर्माणि नाशकर सिद्धयोगको प्राप्त किया और वाधारहित सम्पूर्ण प्रकारसे निर्मल केवलज्ञान, केवल दर्शन, केवल सुख, केवल योग्यसे मुक्त होकर सिद्धारथा अर्थात् कार्यपरमस्वरूप हो गए अर्थात् काव्य शुद्ध भय ।

शुद्ध परमात्मा ध्यान अवस्थामें कारण समपकार है बही ध्यानके बलसे सब मरुत हो जाता है । यह सिद्ध जैसे शुद्ध है वैसे ही शुद्ध निश्चयनपद्धतके भव्यभीष भी शुद्ध है ।

जैसे सिद्ध अ म जरा मरणकरके रहित है और अमृतहृदय, अनंत ज्ञान, अनंत ध्यान, अनंत ब्रह्म, मूढमरुत, अवादाना, अगुरुद्वय अवस्थावाप ऐसे आठ गुणसे सहित हैं ऐसे ही शुद्ध निश्चय करके वे भव्यभीष भी हैं, शुद्ध निश्चयनपद्धतकोके सकार्य स्वरूपको प्रतिपादन करनेबारी है । इच्छिये इच्छी अपेक्षासे मोक्ष प्राप्त और मुक्त होने योग्य सवारी भव्यारमाओंके मध्यमें कोई अंतर नहीं है ।

मावाय-ज्ञानीको निज स्वरूपहीको शुद्ध सिद्ध घटत ध्यान करना योग्य है । टीकाकार कहते हैं कि “ जिन सिद्ध और सवारी भव्यभीषोंमें पूर्वदासे शुद्धता विद्यमान है वह हम किंच नपते उनके भेदको जाने । ”

मावाय—शुद्ध निश्चयनपद्धतसे दोनोंका स्वरूप एक है, यद्यपि व्यवहारनपद्धतसे भेद है ।

फिर भी अभेदभावको दिमात है —

असरीरा अणिणामा, अणिदिया णिम्मला विसुद्धया ।

अह लोयग्गे सिद्धा, तह जीया ससिदी णेया ॥ ४८ ॥

सामान्य अर्थ—जैसे भीसिद्ध महाराज शरीररहित अविनाशी,



निर्मेज, विशुद्ध स्वरूपवान होकर इस लोकके अग्रभागमें विराजमान हैं वैसे ही इस ससारमें सर्व जीवोंको निश्चयकरके जानना चाहिये ।

विशेष अर्थ—इस गायामें कार्य समयसार और कारण समय सारके भेदके अभावको दिखलाया है । निश्चयकरके जैसे सिद्ध भगवान् धीदारिक आदि पांच शरीरोंसे रहित अशरीर हैं, नर नारक आदि परमार्थके त्याग और प्रकृतके अभावसे अविनाशी हैं, एक समयमें भी परम-आत्माके निधरभूत ऐसे स्वाभाविक दर्शन आदि तथा कारणमें शुद्ध स्वरूपके जाननेमें समर्थ ऐसी स्वाभाविक ज्ञान ज्योतिरके सब संशयोंको हटा देनेसे अतीन्द्रिय हैं अर्थात् ईश्वरोंसे अदृश्य रहित हैं ।

महा अर्थात् अतीघार इनको उत्पन्न करनेवाले क्षोपशम आदि विभावस्वभावोंके अभावसे निभल है, तथा रूपकमें ज्ञाना वरणादिक और भावकर्म रागादेषादिक इनके अभावसे विशुद्धारमा है, ऐसे सिद्ध भगवान् परमेष्ठी लोकके अग्रभाग तनुवातलयमें विराजमान हैं । वैसे ही इस ससारमें शुद्ध निश्चयसे समस्त संसारी जीव गुरुरूप अवस्थामें शोभायमान हैं ।

मावार्थ—अबतक यह जीव वस्तुके यथाथ स्वरूपको नहीं पहचानता अबतक वास्तुकी भाँति नहीं कर सकता । इसलिये स्वदित बाह्य जीवको शुद्ध निश्चयसे सदा ही अपने शुद्धरूपका मनन करना चाहिये । टोकाकार कहते हैं कि " जो जीव निरव्य शुद्ध अशुद्ध विचल्पोंमें लब्धोन् है सब मिथ्यादृष्टिके निरव्य यह प्रकृत है कि कारण और फल दोनों हा तरह शुद्ध हैं । अर्थात् जिसके ज्ञान करनेस स्वरूपशुद्धीरूप साध्यकी सिद्धि करना है वह साधन भी शुद्ध परमात्माका भाव है तथा सचका साध्य भी शुद्ध परमात्मा है क्योंकि संपादान कारणके सदृश ही फल होता है तथा जो कोई सार और असारके विचार करनेमें सुदर ऐसी

अपनी बुद्धि करके इस अशुद्ध अनुपम परमात्मके अर्थको समझता है वही सम्यग्दृष्टी है। हम सबको बताना करते हैं—

आगे दोनों नयोंकी सफ़ाई कहते हैं—

एद सव्ये भाषा, व्यवहारणय पदुच्य भणिदा ह्यु ।

सव्ये सिद्धमहावा, सुद्वणया ससदी जीया ॥ ४९ ॥

साम य अर्थ—ये सब ही भाष व्यवहार नयसे कहे गए हैं। शुद्ध निश्चयसे इस सत्ताके अन्दरके सब ही जीव सिद्ध भगवानके समान शुद्ध हैं।

बिरोधार्थ—इस गाथामें निश्चय नय और व्यवहार नयकी उपयोगिता बतलाते हैं। जो पूर्व गाथामें बणन किया है व सब भाष शुद्ध नयसे सपारी जीवोंके नहीं हैं परन्तु वे ही सब विभाव भाष और विभाव पर्याय व्यवहार नयसे जीवोंके बिय मान हैं। परन्तु शुद्ध नयके द्वारा ऐसा कहा जायगा कि जो औद्यिक आदि चार भाष सत्ता अवस्थामें जीवोंके हैं वे ही भाष वन सपारी जीवोंके नहीं हैं। वे सपारी जोव भी भगवान सिद्धोंके शुद्ध गुण और पर्यायों समान शुद्ध गुण और पर्यायवारी हैं।

ऐसा ही श्री अमृतचंद्र आचार्यने कहा है—बडनवाले जीवोंके लिये यह व्यवहारनय दृष्टावच्छेदन रूप है अर्थात् हाथसे अहारा दिये जानेके समान है तथा सम्पूर्ण पर पदावधि रहित चतुष्के चमत्कार मात्र अपने सकृष्ट पदार्थको अपने अंतरागमें देखने-बाजोंके लिये यह व्यवहार नय कोई चीज नहीं है।

टीकाकार कहते हैं 'निश्चयकरके शुद्ध तरहके रसिक लोग तरह विचारके भीतर ऐसा कहते हैं कि शुद्ध निश्चय नयकरके मुक्त और सपारी जीवोंमें कोई भी विशेष अर्थात् भेद नहीं है।

पुञ्जुत्तसगदभावा, परदण्य परसहानमिदि हेय ।

सगद्वरमुनादय, अतरतच हने अप्पा ॥ ५० ॥

सामान्य अर्थ—पहले कहे गए सम्पूर्ण ही भाव परद्रव्य है और पर स्वभाव है, द्रव्य कारण स्वागने योग्य है तथा अंतरंग तरह जो अपना द्रव्य आत्मा से उपादेय है ।

विशेषार्थ—इस गायामि हेय उपादेयका कथन है । जो कोई बिभाव गुण और पयाय पहले कही हैं सो व्यवहारसे उपादेय है परन्तु शुद्ध निश्चय नयके यष्टमे सर्व हेय अर्थात् स्वागने योग्य है । क्योंकि वे परस्वभाव हैं, अतएव परद्रव्य हैं आत्माका स्वद्रव्य नहीं हैं । तथा सब बिभाव गुण और पर्यायोंसे रहित जो शुद्ध अंतरंग तरह स्वरूप जो अपना आरम द्रव्य है सो ही प्रहण करने योग्य है । क्योंकि यह आत्मा निश्चयसे स्वाभाविक धरमें अंतरंग सुखमई शुद्ध अंतरंग तरह रचनाका आचार है । और यही स्वाभाविक परम पारिणामिक भाव है दृश्य ज्ञिषका ऐषा कारण समयसर है ।

ऐषा ही भी अमृतच द्रमूरिने कहा है—निर्मल भावमें बचनेवाले मोक्ष चाहनवाले पुठयोंको इसी सिद्धांतकी सेवा भक्ति करनी चाहिये कि मैं मरा शुद्ध चैत यरूप एक परमज्योति स्वरूप हू । तथा जो ये जाना प्रकारके भाव दिखलाई पड़ते हैं वे मुझसे भिन्न रक्षणके धारी हैं । न मैं उन रूप हू और न वे मेरे स्वरूप हैं क्योंकि वे सध हा पर द्रव्य हैं ।

टोकाकार कहते हैं कि—

“जो तरहवेदी प्रगटरूपसे ऐसा कहता है कि मैं शुद्ध जीवास्तिकाय हू तथा अ य सब भाव पुत्रक द्रव्यके भाव हैं वही अपूव मिद अबाधाको प्राप्त करता है ।”

अ ग ररनश्यका स्वरूप करते हैं—

विपिरीयाभिणिमेमि, वज्जियसद्दहणमेव सम्मत्त ।  
 ससयनिमोहविच्चममवि, वज्जिय होदी सण्णाण ॥ ५१ ॥  
 चलमल्लिणमगाडत्त, निवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्त ।  
 अधिगमभाये णाण, हेयोपादयत्तघाण ॥ ५२ ॥  
 सम्मत्तस्म णिमित्त, निणसुत्त तस्म जाणया पुरिसा ।  
 अतरहेयो मणिदा, दसणमोहस्म खयपट्टदी ॥ ५३ ॥  
 सम्मत सण्णाण, विज्जदि मोस्सस्स होदि सुण चरण ।  
 ववहारिणिच्छएण दु, तद्दा चरण पक्कयामि ॥ ५४ ॥  
 ववहारणयचरित्ते, ववहारणयस्स, होदी तयचरण ।  
 णिच्छयणयचारित्ते, तयरण होदी णिच्छयदो ॥ ५५ ॥

व्यापार्य अर्थ—वृद्ध अविनायसे रहित जो भद्धान है बही सम्यक्त है । जो सशय, विमोह, विभ्रमसे रहित है बही सम्यग्ज्ञान है । अज्ञ, मज्जिन, अगाढ़ दोषोंसे रहित जो भद्धान हैं बही सम्यक्त है । हेय त्यागन योग्य तथा उपादेय ग्रहण करने योग्य तत्त्वोंका ज्ञानना जो ज्ञान है ।

सम्यक्तका निमित्त जिन सूत्र है अर्थात् जिन शास्त्रोंके द्वारा जो भाव ज्ञान होता है बही सम्यक्त होनेका निमित्त है । जिन सूत्रके ज्ञायक पुरुषोंको सम्यक्त होनेमें अंतरंग कारण दशन-मोहनीका क्षय, अयोपशम तथा उपशम है । सम्यक्त और सम्यग्ज्ञानके साथ सम्यक्चारित्र भी मोक्षका कारण है इसलिये व्यवहार निश्चयरूप चारित्रको आगे कहूंगा । व्यवहारनयसे व्यवहार चारित्र और तप होता है । निश्चयनयसे निश्चय चारित्र और तप होता है ।

विशेषार्थ—इन गाथाओंमें रत्नत्रयके स्वरूपका बयन है ।

पुञ्जुत्तमगदभारा, परदध्व परसहावमिदि हेयं ।

सगदध्वमुत्तम्य, अंतरतच्च द्वे अप्पा ॥ ५० ॥

सामा य अथ—पहले कहे गए सम्पूर्ण ही भाव परद्रव्य हैं और पर स्वभाव हैं, इस कारण त्यागने योग्य हैं तथा अंतरगत तत्त्व को अपना द्वय आत्मा को उपारेय है ।

विशयाथ—इस गायत्री हेय उपारेयका कथन है । जो कोई विभाव गुण और पयाय पहले कहीं हैं सो व्यवहारसे उपारेय हैं पर सु शुद्ध निश्चय नयके बलसे सर्व हेय अर्थात् त्यागने योग्य हैं । क्योंकि वे परस्वभाव हैं, अतएव परद्रव्य हैं, आत्माका स्वद्रव्य नहीं हैं । तथा सब विभाव गुण और पयोसे रहित सो शुद्ध अंतरगत तत्त्व स्वरूप जो अपना आत्म द्रव्य है सो ही ग्रहण करने योग्य है । क्योंकि यह आत्मा निश्चयसे स्वाभाविक धरमें अंतरगत सुखमई शुद्ध अंतरगत तत्त्व रचनाका आधार है । और यही स्वाभाविक परम पारिणामिक भाव है अतएव जिसका ऐसा कारण समभवत है ।

ऐसा ही श्री अमृतच द्रमूरिने कहा है—निर्मल भावमें चढनेवाले मोक्ष चाहनवाले पुठ्योंको इसी सिद्धा तकी सेवाभक्ति करनी चाहिये कि मैं सदा शुद्ध चेतनरूप एक परमव्योति स्वरूप हू । तथा जो वे नाना प्रकारके भाव दिखलाई पड़ते हैं वे मुझसे भिन्न दृष्टणके भारी हैं । न मैं उन रूप हू और न वे मेरे स्वरूप हैं क्योंकि वे सब ही पर द्रव्य हैं ।

टीकाकार कहते हैं कि—

“ जो तत्त्ववेशी प्रगटरूपसे ऐसा कहता है कि मैं शुद्ध जीवास्तिकाय हू तथा अ य सब भाव पुद्गल द्रव्यके भाव हैं वही अपूर्व सिद्ध अवाधाको प्राप्त करता है । ”

अगे अतएवका स्वरूप कहते हैं—

विविरीयाभिणित्रेमवि, वज्रियसद्दहणमेव सम्मत्त ।  
 समयनिमोहनिम्भमवि, वज्रिय होटी सण्णाण ॥ ५१ ॥  
 चलमल्लिमगाहत्त, त्रिवज्रियसद्दहणमेव सम्मत्त ।  
 अधिगमभात्रे णाण, हेयोपादयत्तचाण ॥ ५२ ॥  
 सम्मत्तस्म णिमित्त, निणसुत्त तस्म जाणया पुरिसा ।  
 अतरहेयो भणिद्रा, दमणमोहस्म खयपहुटी ॥ ५३ ॥  
 सम्मत मण्णाण, विजदि मोखस्म होदि सुण चरण ।  
 वरहारिणिच्छरण दु, तत्रा चरण परक्खामि ॥ ५४ ॥  
 वरहारणयचरित्ते, वरहारणयस्स, होदी तत्रचरण ।  
 णिच्छयणयचारित्ते, तत्ररण होदी णिच्छयदो ॥ ५५ ॥

धाम्माय अर्थ—उदटे अभिप्रायसे रहित जो भ्रद्धान है वही सम्यक्त है । ओ सशय, विमोह, विभ्रमसे रहित है वही सम्यग्ज्ञान है । अज्ञ, मब्धिन, अगाढ़ धारोंसे रहित जो भ्रद्धान है वही सम्यक्त है । हेय त्यागन योग्य तथा उपाध्य ग्रहण करन योग्य तत्त्वोंका जानना ओ ज्ञान है ।

सम्यक्तका निमित्त जिन सूत्र है अथात् जैन शास्त्रोंके द्वारा जो भाष ज्ञान होता है वही सम्यक्त होनेका निमित्त है । जिन सूत्रके ज्ञायक पुठवोंको सम्यक्त होनेमें अतरंग कारण दशन-मोहनीका क्षय, क्षयोपशम तथा परशम है । सम्यक्त और सम्यग्ज्ञानके साथ सम्यक्चारित्र भी मोक्षका कारण है इच्छिये व्यवहार निश्चयरूप चारित्रको आगे कहूंगा । व्यवहारनयसे व्यवहार चारित्र और तप होता है । निश्चयनयसे निश्चय चारित्र और तप होता है ।

विशेषाथ—इन गाथाओंमें रत्नत्रयक स्वरूपका वर्णन है ।

भेदोपचाररूप व्यवहार रत्नत्रयमें प्रथम व्यवहार सम्मग्नज्ञान विपरित अभिप्राय रहित श्रीवादि सात तत्त्वोंका भद्धान रूप है ।

कैसा है यह भद्धान, जो भद्धान मोक्षके परम्परा कारण भगवत् श्री व्यहृत्, सिद्ध आचार्य, वपाभ्याय और साधु इन पाच परमेश्वरी निश्चल हृद् भक्ति रहित है । कैसी है हृद्भक्ति, जिसमें शब्द, मन्त्र, आगाढ़ ये तीन दोष नहीं हैं—इस भद्धानमें पंचपरमेश्वरोंसे विपरीत हरिहरादिक द्वारा प्ररूपण किये पदार्थोंमें भद्दाका अभिप्राय है अर्थात् अथ एकात् अथोक्त तत्त्वोंको एकाग्र रूप अर्थात् अनकान्त मूर्तार्थ पदार्थोंसे कटा जो भद्धान करना तथा मोक्षमें कारणमूर्त पदार्थोंसे अथ अर्थात् भद्धान करना सो सम्पन्न है ।

व्यवहार सम्मग्नज्ञान भी संशय, विमोह विभ्रमसे रहित है । देव जिनेन्द्र होने चाहिये या शिव होने चाहिये ऐसा जो शकारूप ज्ञान सो संशय है । शक्य आदिके कहे हुये पदार्थोंमें भद्दा जानो सो विमोह है । कुछ भी निश्चय करनेकी आकांक्षा न होना सो विभ्रम है ।

इस दोषोंसे रहित सम्मग्नज्ञान आदरणीय है । यहा जिनेन्द्र प्रणीत जो हेय और उपारोप तत्त्व हैं उनका अर्थात् ज्ञान सो ही सम्मग्नज्ञान है ।

इस सम्पन्न परिणामका साह्य सहकारी कारण बौतरागी सर्वज्ञा मुख्यत्वसे उद्भूतरूप सर्व पदार्थोंके वृत्तमानेकी समर्थ वृत्तपक्ष रूप हो तत्त्वज्ञान है । क्योंकि उपचारसे पदार्थोंके निर्णयका कारण है । सम्मग्नज्ञानके होनेमें अतरेण कारण दर्शन मोहनी कमला अथ, उपजय अथवा अयोपशम है । तथा भेदरहित और उपचररहित निश्चय रत्नत्रयमें जो जीव परिणमन कर रहा है

वस जोबके टकोरहीने शायक एक स्वभावमें अपने आरमीक तरहकी जो मद्दा सो निश्चय सम्बन्ध है ।

इसी आरमीक तरहके ज्ञानरूप अवतरणमें जो परम बोध है सो ही निश्चय सम्बन्धज्ञान है । वस ही अपने आरमास्वरूपमें जो निश्चय स्थितिरूप है सो निश्चय स्वाभाविक चारित्र है—इन तीन अभेद रत्नत्रयके द्वारा ही जो अक्षतक मात नहीं हुए ऐसी अभूतपूर्व सिद्ध पथाय रूपप्र होती है ।

जो परम जिन जिनने-त्रो योगीश्वर मुनि प्रथम ही वापकिया ओस हटानेवाले व्यवहारनयसे जाननेयोग्य ऐम व्यवहार चारित्रमें ठहरत है अथात् व्यवहारचारित्रका आचरण करत हैं । ऐसे ही योगीके व्यवहारनयसे जानने योग्य व्यवहाररूप तपश्चरण भी होता है पश्चात् निश्चय रत्नत्रयकी प्राप्तिके अवसरमें निश्चय तप होता है ।

सहज निश्चयनयके आश्रित परम स्वभावमई परमात्मामें प्रवृत्त अथात् तपना अथात् दृढ़तासे त मय होना सो निश्चय तप है । इस तपके द्वारा ही अपने आरमाके स्वरूपमें निश्चय स्थितिरूप स्वाभाविक निश्चय चारित्र भी होता है ऐसा ही "एकरचस्रति" म कहा है—

अपने आरमस्वरूपमें निश्चय सो ही सम्बन्धज्ञान है, अपने आरमस्वरूपका ज्ञान सो ही सम्बन्धज्ञान है, अपने स्वरूपमें स्थिति अथात् ठहरना ही सम्बन्धचारित्र है । यही तीनोंकी योगरूप अक्षरया मोक्षपदको कारण है ।

टीकाकार कहते हैं—पय हो वस सहज आरमज्ञानकी । सम्बन्धरूप भी इसी आरमज्ञानरूप ही है, तथा निर्मल चारित्र भी नित्य इसी आरमाके ज्ञानमें क्रियारूप है । यह चैत य आरमाकी



चेतना समस्त प्रकारके मूढप्रमूढसे रहित मूर्तिबन्धी और स्वाभाविक आत्मीक तत्त्वमें स्थितिरूप है ।

भावार्थ—शुद्धस्वरूपकी शुद्ध चेतना परद्रव्य, परगुण और पर पर्यायोंसे रहित है तथा निजस्वरूपमें निश्चलता स्वरूप है । इसी शुद्ध चेतनाका निश्चय अद्वान, ज्ञान और चारित्र्य निश्चय तीन स्वरूप स्वरूप मोक्षका परमबीज है । मोक्षार्थी भव्य जीवको उचित है कि अपने आत्माको परम शुद्ध ज्ञाना दृष्टा निरञ्जन निर्विकार अद्वैत अविनाशी सम्पूर्ण पर औपाधिक भावोंसे रहित अनुभव करे । यह शुद्ध भावका अधिकार आत्माकी शुद्धिका परम अद्भुत निमित्त कारण है ।

इस प्रकार सुकवियों रूप कमलोंके छिप सूर्य पंचेन्द्रियके व्यापारसे रहित शरीरमात्र परिग्रहके घारी श्री "पद्मपद्ममन्त्रधारि देव" द्वारा कथित श्री नियमसारकी तारपर्यं वृत्ति नाम व्याख्यानमें "शुद्धभावाधिकार" नामका तृतीय अठसकध समाप्त हुआ ॥ ३ ॥



## व्यवहार चारित्र्याधिकार

बुलनोणिनीवमगण,—ठाणाइसु जाणउम्य जीराण ।

तम्मारभणियत्तण,—परिणामो होड पत्तमरद ॥ ५६ ॥

आमाय अर्थ—दुःखान योनिमाय, श्रीब्रह्ममाप्रधान, मागोप्रधान इत्यादि जीबोंके ठिकानोंका भाग करके उनमें आरम करनेसे इटनका जो परिणाम है वही प्रथम अहिंसाग्रन्थ है ।

द्वितीय अर्थ—दुःख गामा में अहिंसा ग्रन्थके स्वरुप अर्थ है । कुछ योनि आदिस्थानोंको पूरा कह चुक हैं । इनके भेदोंकी भले प्रकार जानकर जीबोंकी रक्षा करनेका जो भाव सो अहिंसा है । जीबोंकी मृत्यु होती है व नहीं होती है ऐसे विचारकी कोशिसमें जो दुःख परिणामके लिये बिना वापरुप हिंसामई क्रियाका त्याग नहीं हो सकता । अतएव इस रक्षाके प्रयत्नमें रहना ही अहिंसा ग्रन्थ है ।

येका ही सम उभट्टाबाभीजीन कहा है अथात् भीषमग्रन्थ रक्षामो अपने वृद्ध स्वयंमूर्त्तिमें भीहुनिभुग्रन्थनाथ रक्षामोकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि अग्रन्थमें यह बात सर्वको प्रगट है कि यह अहिंसा ही परममार्ग स्वरुप है अथात् आरमाधी बीतरागता ही अहिंसा है । अथात् येही बीतरागता है वही आरमाका शुद्ध स्वरुप है ।

जिस आश्रमके चारित्र्यमें अणुमात्र अर्थात् किंचित् भी आरम नहीं है वही यह अहिंसा प्राप्त होती है । मायाय—मुनियोंका २८ मूहगुरुरूप व १३ प्रकार चारित्र्यरूप जो आचरण है वही अहिंसा है । इसलिये परमदयावान हे प्रभु ! आपने—दुखी अहिंसाकी विद्विके लिये अठरंग और बाह्य २४ प्रकारके

आप बिहारी भेष और परिग्रहमें रत नहीं हो । भाषार्थ—नम्र दिग्गम्बररूप ही सदा अहिंसा मार्गका वेप है । इसके विबाय अ य वेप बिकारवान दोषी है । अर्हों परिग्रहमें सर्वथा मूढाका अभाव है वही अहिंसा धर्म है ।

टीकाकार कहते हैं—इस जिनमर्मकी जय हो जिसमें पेशी अहिंसाका पावन है, जो अहिंसा प्रस जीव द्वेन्द्रियादिकको घात करनवाले परिणामोंको जग मूढमे हटानका कारण है तथा जो पञ्चकार्यरूप पक्ष-त्रो रथावर जीवोंके नाना प्रकार होनेवाले बधसे विश्वकुल दूर है—जो अहिंसा सम्पूर्ण लोकके जीव समूहको सुख जनवाली है तथा जो सुन्दर सुखसे भरपूर समूहके अमात्र अगाध है ।

आगे द्वितीय अस्त्यग्रहको कहते हैं—

रागेण व दोसेण व, मोहेण व मोसमासपरिणाम ।

जो पनहहि साहु सया, निदियवय होइ तस्मेर ॥ ५७ ॥

सामान्य अर्थ—जो माधु सज्जन पुरुष रागसे, द्वेषसे व मोहसे छूट बोजनेके परिणामको जब छोड़ता है तब ही दूसरा अस्त्य ग्रह होता है ।

विशेष अर्थ—इस माधामें अस्त्य ग्रहके स्वरूपका वर्णन है—  
मृधा अथात् असत्य बोजनका जो परिणाम अथात् भाव है सो भाव असत्य भावसे उठता है विरोधी है । यह असत्य भाव राग भावसे द्वेष भावसे अथवा मोह भावके निमित्तसे जीवके पैदा होता है—अर्थात् यह अनुपपन्न इष्ट पदार्थमें व विषयोंमें रागकरके उनकी प्राप्ति व रक्षाके लिये असत्य कहता है व अनिष्ट पदार्थमें व विषयोंमें द्वेष करके उनके दूर होनेके लिये व उनका अन्ध व न पानके लिये असत्य कहता है अथवा मिथ्याबुद्धिसे ससारमें मोहके कारण उस मिथ्या भावकी रक्षाके अर्थ असत्य बोजता है ।

जो कोई निरुद्ध मध्य जोब चाधु पृथप इसप्रकारके अक्षय्य बोजनरूप परिणामको त्यागता है उसीके ही यह सरयव्र होता है । टाकाकार कहते हैं—जो कोई अतिशयकरके मध्य भावको अंतरंगमें जपता अथा प्रगल्भने मध्य ही बोधता है वह मनुष्य परबोकेमें स्वगही स्त्रियोंके घने भोगोंको भोगनेवाला होता है और इस बोकेमें सदा सर्व सज्जनोंके द्वारा पूजनीय अर्थात् आदरणीय होता है । इमद्विषये इस सत्यसे बढकर दूसरा कोई व्रत नहीं है यह बात सर्वथा सरय है ।

आगे तीसरे व्रतको कहते है —

गामे वा णयर वा, ऽरुण्णे वा पण्डिऊण परमं उ ।

जो मुचदि गहणमान, तिदियद होदि वस्सेन ॥ ५८ ॥

सामा यार्थ जो कोष्टे प्राप्तये, नगरमें वा अंगडमें दूसरेको बाहुको पदो इत्यकर नमके उठा लेनके परिणामको त्याग देता है उसो सज्जनच हा यह तीसरा अर्थात् व्रत होता है ।

विशुधार्थ— इस गायाम तीसरे अर्थात् व्रतका व्रतन है । वृक्ष आदिको बाढकरके जो वेढा हो नपको गाव कहन है । पार दिगाओंके चार दरवाजोंसे जो गोवायमान हो उवधा नाम नगर है ।

जहा मनुष्यांका गमनागमन नहीं हो तथा वृक्षरेड गुच्छोंकरके परिपूण हो नसका नाम अरुण्य अर्थात् वन है । ऐसे गाव वा नगर वा वनमें दूसरेके द्वारा रकरो हुई, पडो हुई, वा मूडा हुई परद्रव्यको दूखकर उसका स्पर्शकार करनके भावको सो त्यागता है उसके ही इस तीसरा अर्थात् व्रत होता है ।

जो वस्तु अपन परिभ्रमसे किधीका कुछ काम करके मिले व दूसरा व मान व ह्याकरके देवे वह वस्तु प्राह्य है—इसके सिवाय

कहींकी कोई चीजको भी लेना चोरी है । सूत्रज्ञान रथाउमें मिट्टी हुई चातुर्भोवर सबहीका अधिकार है जिसको वह भूमि है ।

टीकाकार कहते हैं कि यह अर्थात् प्रथम अर्थात् वस्तुका दाता है । इसके पावनकताको पुण्यक नन्दन अतिगदरूप ररताका देर प्राप्त हो जाता है । स्वगतरूप स्त्रीके सुखका मूर्धभूत यह प्रथम है और प्रथम कर्म करके मुक्तिरूपी छाका संगम करानबादा है ॥

शाने चौथे प्रथका कहते हैं -

दृष्टुण इच्छिरूप, वाठामार णित्तद तामु ।

मेहुणमण्णाविवजिनय, परिणामो अहव तुरीयवत् ॥ ५९ ॥

सामा यार्थे—जा स्त्रीके रूपको देखकर हो उसके भीतर अपनी इच्छा होनरूप भावको इटाता है तथा मैथुन सज्जामे रहित अपने परिणामाको करता है उसीके ही यह चौथा प्रथ मैथुन सप्तत्याग प्रदायर्थे प्रथ होता है ॥

विशेषार्थ—इस गाथामें प्रदायर्थे प्रथका गदरूप है । सु दर स्त्रियोंके मनोहर अर्थात् देखनक कारण जो उनसे छोड़ा करनकी चित्तमें इच्छाका होना उसको त्याग करनेसे अथवा वेद नाम नोकपयके तीव्र चयसे मैथुन सेवनकी इच्छाका होना उसको छोड़नेसे यह प्रदायर्थे प्रथ होता है ।

टीकाकार कहते हैं कि हे कामी पुठव ! तू क्यों सहज परम चरुवरूप जो अपना स्वरूप है नमकी छोड़कर सु दर स्त्रियोंकी शरीर आदि विभूतिको मनमें धार करता है और किस कारणसे तू मनमें अत्यंत मोहको प्राप्त होता है ? ऐसा करनेसे मेरा बचन अर्थात् उपदेश तेरे लिये किस कामका होगा ?

आगे पचम प्रथको कहते हैं—

मच्चेमि गयाण, तागो निरवेखमायणापुव्व ।

पंचमयदमिदि भणिदं, चारित्तमर वह तस्स ॥ ६० ॥

समा गार्थ—जो बाह्य रहित भावनाके अथ अर्थात् परिग्रहकी त्यागना है सो चारित्र्यके भारको धर, बहनेवाले साधुओंका पंचम ग्रन्थ है ।

विशेषार्थ—इस गाथामें परिग्रहत्याग प्रवृत्ति रक्षक है । जो सम्पूर्ण अंतरंग और बाह्य परिग्रहसे रहित है अज्ञान प्रसक्त ऐस कारणरूप परमात्माके शुद्ध स्वभावमें स्थित हैं ऐसे परम संयमी परम ज्ञान योगीश्वर जो हैं तथा जो मदा हो निश्चय व्यवहाररूप उत्तम चारित्र्यके भारको बहनेवाले हैं उनके अंतरंग और बाह्य २४ प्रकारके परिग्रहका त्याग करना ही पंचम ग्रन्थ है । केषा है यह परिग्रह त्याग ग्रन्थ, यही परंपरा-करके पंचम गति जो मोक्ष विसका कारण है ॥

येवा हो श्री समप्रसारजीमें कहा है । " कि ज्ञानो ऐसा जानते हैं जो मेरे परब्रह्म परिग्रह होय तो मैं भी अज्ञोबपनेको प्राप्त हो पाऊँ क्योंकि मैं तो ज्ञाता हो हूँ । इससे मेरे परिग्रह नहीं है । "

टाकाकार कहते हैं—भव्य जीवकी वसित है कि संसारसे भय करके परिग्रहरूपी विग्रह जो आपत्ति उत्पन्न होनेके त्याग और उपमारहित सुखके स्थानकी प्राप्तिके लिये अपने आत्मामें स्थितिको करे । वैश्री स्थिति करे, जो स्थिति अज्ञायमान न हो, सुखकी स्थान हो और अज्ञानकी अज्ञानकी दुःख हो अर्थात् आरम स्वभावमें अज्ञान होना सुखमें नहीं कि तु कठिन है तथापि साधु पुरुषोंके लिये ऐसी स्थितिको प्राप्त करना कोई बड़े आश्रयकी बात नहीं है कि-तु जो साधु विवेकी नहीं हैं ऐसे अज्ञान/पुरुषोंके लिये ही अज्ञानताका-अंतरंग है ।

अथ समितिको कहे हैं—

पासुगमगेण दिवा, अनलोगतो जुगप्पमाण हि ।

गच्छद्द पुरदो समणो इरिया समिदी हवे तस्स ॥ ६१ ॥

सामा यार्थ—जो छाधु पासुक मागस दिनमें एक युग प्रमाण आगे पृथ्वीको देखता हुआ गमन करता है अब छाधुके ईर्ष्या समिति होती है ।

विशेषार्थ—इस गाथामें ईर्ष्या समितिका स्वरूप कहते हैं— जो कोई परम संयमका धारी मुनि अपने गुरुके पास जानके अर्थ व मोक्षयात्रा आदि शुभ कामिप्राप्तको मनमें धारकर एक युग अर्थात् चार हाथ प्रमाण आगे मागको देखता हुआ दिनके नौवें जीवपत्तु रहित व दूसरोंके द्वारा रोदि हुये ऐसे पासुक मागमें स्थावर व्रत प्राणियोंकी रक्षाके अर्थ जब गमन करता है तब उस परम धर्मज अर्थात् माधुके ईर्ष्या समिति होती है ।

इस प्रकार व्यवहार समितिका स्वरूप कहा । अब तिस्रय समितिके स्वरूपको कहते हैं । अभेद उपचार रहित और रत्नत्रयका मार्गरूप परम धर्मके द्वारा अपने आश्रमस्वरूपमें सम् अर्थात् अन्धत्त यानी भले प्रकारसे इतना अर्थात् गमन तथा परिणमन को समिति है । अथवा अपने आश्रमके परम स्तरमें अति स्वभाविक परम ज्ञान आदि परम धर्मोंकी शक्तता को समिति है । इस प्रकार तिस्रय व्यवहार समितिक भेदोंको जानकर हम परम तिस्रय समितिको प्राप्त करके धारम्भार करनी योग्य है ।

टीकाकार कहते हैं कि इस प्रकार मुक्तिरूपी खोकी खसी जो परम समिति है उसको जानकरके जो कोई सत्कारके भयको पैदा करनेवाले सुवर्ण खी आदिक परिग्रहको त्यागता है तथा

अपूर्व स्वभावसे ही शोभायमान चेत वके चमत्कार मात्र स्वरूपमें जो विद्यता है सो ही अमेदरूप भावमें एकताको सम्यक् प्रकार प्राप्त करता है और मया परस्वरूपस्य अलग ही रहता है । यह ईया समिति अवगत होतु । ऐसी है यह समिति, मुनीश्वरोंका मूल गुण है । तस्य जीवोंके तथा स्यात्पर जीवोंके पातसे दूर है, संसाररूप अग्निही तपससे पेश होनेवाले क्लेशोंको शांत करनेके लिये भेषपाका है, सब समितियोंमें मुख्य है तथा अनेक प्रकारसे संतापको देनेवाली है ।

इस संसाररूपी ममदुर्मे जो समिति पावनस्य विरक्त है तथा कामरूपी रोगस्य आतुर है उनको निश्चयकरक यह संसार ही है अथात् वे संसार हीमें भ्रमण कानवाले हैं । इच्छिय हे मुनिश्वरान् ! तू मुख्यक विना सुन्दर मुक्तिरूपी खोके स्थानको अपने मनरूपी घरमें धागण कर अथात् मुक्ति अवरवादीका मनन कर । जो कोई जग अथात् जगमई समितिको पावता है वही मुक्ति प्राप्त करके मोक्षरूप होता है । सभी समितिका जो नाश करत है व मोक्षको नहीं पात तथा संसाररूपी महादुर्मे भ्रमण करते हैं ।

आगे भाषा समितिको कहते हैं—

पेमुष्णहामरुक्म,—परणिदृश्यममिमियं वयणं ।

परिचिन्ता मपरहिद, भामासमिदी नर्दं तस्म ॥ ६२ ॥

धामा य अथ—दुष्टताके दारपक, कठोर, तथा परको निन्दा तथा आरमणवाके बदनोको त्यागकर जो अपने और दूसरेको हितरूप बचन कहते हैं ऐसे मुनिके भाषा समिति होती है—

विशेष अथ—इस भाषामें भाषासमिति

नो... ..



एक पुत्रप, एक कुटुम्ब वा एक ग्रामके साथ महान् द्वेषके कारण कहे गए जो वचन हैं सो पैशुय हैं। कहीं कभी किसीके बिकारी रूप व कार्यको देखकरके वा सुनकरके हास्य नाम नोक्यायसे पैदा हुए कुछ शुभस मिले हुए होनपर भी अशुभ कर्मवकके कारण पुष्टवक मुखको बिकारी करनवाले जो वचन हैं सो हास्य कर्म वचन हैं—अर्थात् अपने अंतरंगमें कुछ शुभ भाव होनपर किसी मनुष्यके बिपरीत व इत्यजनेक कार्य वा रहरपक्षी ऐसी हैंसो प्रगट करना जिससे अपना मुख भी बिकारी हो जाय और सुननेवालोंका मुख भी बिकारी हो जाय सो वचन हास्य कर्मके वचन हैं।

कणक छिद्रके भीतर प्रवेश करत ही जो वचन सुननेवालोंको अप्रीति अर्थात् अर्थात् पैदा करें सुहावें नहीं सो कदश वचन हैं। दूसरोंके सधे झूठे दोषोंको प्रगट करनवाले वचनोंको कहना सो पर नि दा है। अपने होत न होते गुणोंकी खुति करना सो आत्म प्रशंसा है।

य सर्व प्रकारके वचन अपशरत अर्थात् अशुभ हैं ऐसे वचनोंको छोड़कर अपनेको और परको कल्याणकारी शुभ भावके कारण जो वचन कहना सो भाषा समिति है।

ऐसा ही श्री गुणभद्रबारीजीन कहा है कि जो सर्व प्राणियोंको समता करनेवाले हों, सब पापास दूर हों अपने आरमदितमें अपने चित्तको धारण करनेवाले हों, सर्वमें शान्तिको फलानवाले हों, स्वपरको हितकारी ऐसे वचनोंको कहनवाले हों, सर्व रागद्वेष अहंपसे रहित हों, ऐसे बातगामी भुक्ति मोक्ष पानेके पात्र कर्षों न होग अर्थात् अशुभ होंगे।

टीकाकार कहते हैं—जो महान् पुष्टव परब्रह्म स्वरूप चरित्रमें लीन हैं उनको अपने अंतरंगमें भी अक्षय करना अर्थात् वचन बोलना इष्ट नहीं है तो फिर बाह्य वचनोंकी प्रवृत्तिसे क्या प्रयोजन ? ॥

साधारण—मुनि निर्देश अपने आचारमन्त्रों से ही सम्पुष्ट होकर बचन रहित जो बालोद्भव करते हैं वही वाच्य ही है, अन्य रूपरहितकारी बचन भी निश्चय नयकरके प्रगाढ़ नहीं हैं ।

आग लोचनी धर्मिणियों कहते हैं—

कृद्वारिदाण्युमोदण, रहित तद् वासुग वन्यत् न ।

दिष्णं पण्य मत्त, ममभूनी णमणा ममिणी ॥ ६३ ॥

सामान्य अर्थ—जो कृत्, धारित अणुमोदना इनको एक गहर प्राणुद्ध, गुण और भावक द्वारा मन्त्रित द्विष्ट हृष्ट आहारको समभावस भोजन करे ऐसे मुनिक एवम् धर्मिणि हीने है ।

दिगुसाध—मन बचन वाच्य द्वारा करना मन बचन वाच्य द्वारा करना मन बचन वाच्य द्वारा प्रगाहना करना ऐसे ही विद्वानों करके रहित जो अर्थ है जो नीचादि शुद्ध कदा प्राडा है अथात् त्रिषमै मुनि कृष्ट भी अपना संकल्प न करें ।

अति प्रगाठ भोजनसे प्रदाजन यह है कि जो मनको हलनेवाला रोगादि क्या व निग आहारको पैदा न करे । इति वाच्यमई सविस्तृत्य सूक्ष्म प्राणियोंके संवाच्य अगाधर को प्रासुक है अथात् त्रिषमै सविस्तृत्य व वाच्यता मन्त्रण न ही ।

मुनिको प्रतिपद करना "आहार पानी शुद्ध अत्र तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ" एवा कहकर पदगाहना, उंचे गगनपर स्थित करना, चरण धोना, पूजन करना, प्रणम करना मन बचन और वाच्यको शुद्ध रखना तथा विद्या अथात् आहारको शुद्धता ऐव नरु प्रकर मन्त्रिकरक अहित जो प्राक्क है तथा त्रिषमै मन्त्रा, शक्ति, बोधका अभाव, भक्ति, ज्ञान दया, अथा ऐसे पाठ आहारके गुण विराजमान हो ऐव योग्य आचरणकारी प्रदायक प्राक्कते एवम्

किया हुआ जो भोजन सबको जो परम तरोचन अर्थात् मुनि प्रणय करते हैं वनक एषणा समिति होती है । यह व्यवहार एषणा समितिको कहा ।

निश्चय करके गुदु ओरके इस समितिका प्रवृत्त नहीं है क्योंकि समारो जोबोके छ प्रकारका भोजन व्यवहार नयकरके हो होता है । जैसा कि भी समयमारजोमें कहा है—

कि आहार छ प्रकारके हैं नोकमेंआहार जैसे बेबझोके, कर्म आहार जैसे नारिकयोंके, लेप आहार जैसे पको-द्रव्योंके, कबड आहार जैसे छद्माम मनुष्योंके, घोसाहार जैसे अलोंके, मानसिक आहार जैसे देवोंके ।

भी गुणभद्राचार्यजीने कहा है कि—जो मुनि यम और नियममें जीन हैं, जिनका आरमा अवरंग और बाह्य शात है, जो धर्माधिमें परिणमन कर रहे हैं, जो सर्व प्राणीमात्रपर दया करनेवाले हैं, जि इनि अपनी हित चिया है, जो मर्यादारूप आहार करनेवाले हैं, जो निद्राको इतानवाले हैं तथा जो आभ्यरमाके तरबके निश्चय करनेवाले हैं वे ही मुनि अह मूखसे कलेशोके समूहको जडा देते हैं ।

टीकाकार कहत हैं—जो भक्त भाषकद्वारा हमके अपमागमें प्रदान किये हुये आहारको प्रहण करके पूण ज्ञानस प्रकाशमान ऐसे आरमाका ध्यान करत हैं तथा जो तरबसे ही सम्यक् तपको तपनवाले हैं वे ही तपाको हैं तथा वे ही सुन्दर मुक्तिरूपी खोको प्राप्त करत हैं ।

आगे चौथी समितिको कहत हैं—

पोयहृक्मडलाडं, गहणविसग्गोसु पयत्तपरिणामो ।

आदानणवित्तेण,—समिदी होटिचि णिदिट्ठा ॥ ६४ ॥

आभा-भार्थ—पुस्तक कमडक पीछा आदिक पठान करनेमें

जो यत्न करनेरूप परिणाम को आदाननिक्षेपण समिति है  
 ऐसा कहा है ।

बिशेषार्थ—इस गायाम अपहृत सवमियोंके द्वारा सयमका  
 उपकरण पीछा कमहल तथा ज्ञानका उपकरण शास्त्र आदिकोंके  
 उठाते करते समय जो भ्रमिति करी जाता है उस समितिका  
 बणन है । उपस्था सवमधारी मुनियोंके पुस्तक कमहल आदि नहीं  
 होते हैं वे उपेक्षा सवमधारी मुनि परम जिते त्री एकातबाधी  
 शिबकुद्र चेचाह होत हैं निर नर आत्मस्थानमें लीन रहते हैं इस  
 द्विय वनको बाहरक शस्त्रा'द उपकरणोंकी जरूरत नहीं होती ।

ऐसे सयमी माधु क२० तर उपकरण जो आपदा निज परम  
 सरब उसके ही प्रकाश करनम चतुर होत हैं उनके सब उपाधि  
 रहित स्वरूप स्वाभाविक आरमज्ञानके सिवाय और कोइ भी  
 प्रहण योग्य नहीं होती । परंतु अपहृत सयमी मुनियोंके बिये  
 परमाणम जो शास्त्र उसक अथको बार बार ज्ञान करानेका कारण  
 ऐसी जो पुस्तक तथा शोध करनेका कारण तथा शरीरको  
 विशुद्धताका कारण जो कमहल तथा सयम अथवा मानी रक्षाका  
 कारण जो पोछो पो होती हैं ।

इनके उठान धरनमें प्रधी समय नीबगक्षाके निर्मितसे पैदा  
 होनबादा जो धरन तिसमें लबडोन ना आत्माके परिणामोंकी  
 विशुद्धता मा ही आदाननिक्षेपण समिति करी गई है ।

टीकाकार—कहते हैं कि उत्तम परम जिन मुनियोंके सर्व  
 समितियोंके अरु यही वही समिति शोभायमान है जिससे  
 उनको सर्व प्राणिमात्र पर क्षमा और मन्त्रेभाव हाता है । हे भगव  
 जीव । तू भी अपने मनरूपी कमडमें इस  
 जिससे तू मुक्ति लोक स्वामी हो

भावाथे—सर्व जीवोंपर समा और सर्वका हित बितन यही इस समितिके पाठनेका अभिप्राय है ।

आगे पापमी समितिको कहते हैं—

पासुङ्भूमिपदमे, गूटे रहिण परोपरोहेण ।

उच्चारणद्विवागो, पडच्छा समिदी हने तस्म ॥ ६५ ॥

मामा-य शर्थ—जो मुनि जीवजंतु रहित पासुङ्ग जमीनमें जो गूद हो, अ यद्वारा बोकने योग्य न हो ऐसे स्थानमें मलमूत्रादिका त्याग करते हैं, वनहीके यह पापमा प्रतिष्ठापना समिति होती है ।

विशेषार्थ—इस माथामें मुनीश्वरोंके द्विप शरीरका मल्लादि त्याग करनेके द्विप जो स्थानकी शुद्धता चाहिये उसका वर्णन है । शुद्ध निश्चय करके जीवके देह ही नहीं है, देहके अभावसे अशादिका लेना भी नहीं है ।

व्यवहारकरके आत्माके देह है उस देहके होतेसते आहार प्रदण होता है । आहार लेनस स मा प मुनियोंके मलमूत्रादि होते ही हैं इसद्विय समयियोंकेद्विय मलमूत्र शेषनका स्थान जीवपरहित तथा दूसरोंके द्वारा शोके आनेके अयोग्य होना चाहिये । ऐसे स्थानमें शरीरका भस्म करके पीछे उस स्थानसे कुछ पद धरर जाकर उत्तरमुख कायोरक्षग स्रडे होकर समस्त कायको क्रियाओंको त्यागकर संसारका कारण पैदा जो परिभ्रम तिसको करानेवाले ऐसे समारके निमित्त देहादिको तथा अपने आत्माको धीर होकर ध्याते हैं तथा जो परममयमी इष्ट शरीरका अर्पणप्रपना भी बारबार विचार करते हैं उन मुनियोंके निश्चय करके यह प्रतिष्ठापना समिति जानी है अथ यतीनामवागी स्वर्ग वृत्ती शिष्याचारोक्त कोई भी समित नही जानी है ।

टीकाकार कहते हैं—यह समिति इच्छाकर्म सुनीश्रुते द्विये मोक्षरूपी राज्यका मुख्य कारण है। कैसे है मुनि, जो जैनमतमें चतुर हैं और अपने अरमाको विम्वामे बखशीत हैं। परन्तु जिनमुनियोंका चित्त मरुत बपगे तबबारकी धारमें आसक्त हो चपट हो रहा है।

भाषार्थ—जो विषय मुख्य उद्यम सइतरे समान है जो तब बारकी धारमें बिपटा हो, वम मुख्य होलुना जो मुनि हैं उनके यह समिति नहीं होगी है।

जो अतिदूष सूत्रक अमिहायो हैं उनहीके समिति होती है। है मुनिप्रधान । भये प्रकार इच्छा समितिको जाने। कैसे है समिति जो मुक्तिरूपः शोकी प्यारी है, भवभङ्गका भवरूपी अन्वकार उमको नाश करनेके द्विये चन्द्रमाकी प्रभाके समान है, तथा तेरी अम्यक जो मुनिपदकी दीक्षा उमके द्विये सुदर मद्यो है। प्रसन्नचित्त हो अथ इच्छा पेशा लभ्याम करा जो तुमको जिन धर्मके तपसे सिद्ध होनेवाला अविनाशी ही कोई पद्य फलको प्राप्ति हा। निश्चयकरक मुनि इस समितिकी सगतिसे शीघ्र ही किसी उत्तम फलको प्राप्त करते हैं जो फल मनसे चि तदनयोग्य तथा बचनघ कहनेयोग्य नहीं है तथा जो केवल सुखमई असृतरूप है।

भाषार्थ—समितिके पावते हुए मुनि जिन-सुग्यको पा सकते हैं। आग मन मुनिको रहे हैं —

कालुम्ममोहमण्णा रागरोमाह असुद्धभावाण ।

परिहारो मणुगुत्ती, वचहारणयेण परिद्धहिय ॥ ६६ ॥

सामा याथ—कटुपरना, मोह, अभिजाय, राग, द्वेष आदि अशुभ भावोंका जो त्याग करना उसे ही उपबहारनयसंश्रुको-मुनि कहते हैं

विशेष—इस गायामें व्यवहार मनोगुप्तिके स्वभावका बणन है। मोह, मान, लोभ इन चार कषायोंसे क्षोभित आकुञ्चित भया जो चित्त घटको कालुष्य कहते हैं। मोह दो भेदरूप है एक दर्शन मोहनी, दूसर चारित्र्य मोहनी। संज्ञाके चार भेद हैं—आहार भय, मैथुन और परिग्रह हैं। राग दो प्रकारका है—एक अशुभ दूषण शुभ। जिन मनुष्योंका सम्बन्ध अपनेका न सुहावे स्वयंका जो वस्तुएँ अपने मनको नहीं ठहें उन सबसे बेरमई परिणाम सो द्वेष है। इत्यादि सब अशुभ परिणामोंके कारणोंको रथागना ही व्यवहारनय करके मनगुप्ति है।

टीकाकार कहते हैं—जो अपने मनको यदा परमात्मके अर्थकी चिन्तामें लब्धहीन रखते हैं, जो जितेन्द्रिय हैं, जो वाद्य और अत्यन्त परिग्रह करके रहित हैं तथा जो भीमान् जितेन्द्रके कारणोंके स्मरणमें दत्तचित्त हैं उनहीके यह मनगुप्ति होता है ॥६६॥

आगे बचन गुप्तिको कहते हैं—

थौरानचोरभक्तरु,—हादीवयणस्म पायहेउस्स ।

परिहारो वचगुत्ती, अलियादिणियत्तिवयण वा ॥ ६७ ॥

सामा यर्थ—पाप बन्धकी कारण लोभकथा, रागकथा, चोरकथा, तथा भोजनकथा इन ४ विकथारूप बचनोंका जो रथाग करना को बचनगुप्ति है इसीको अलीकनिवृत्ति बचन भी कहते हैं।

विशेष—इस गायामें बचनगुप्तिका स्वरूप है। अति वृद्ध पुरुषोंके न कामी पुरुषोंके मुख द्वारा जो स्त्रियोंके सयोग तथा विवाहमें वेदादृष्ट अनक प्रहारकी बचन रक्षना रूप कथा तिनका किया न न तथा तिनका सुना जाना को ही लोभकथा है।

राजाओंके युद्धके कारणोंका जो वचनको ररक्षकथापर्यन्त है। चोरोंका चारी करनकी रीतियोंका जो कथन को चोरकथा

बिघान है। अत्यन्त बड़ी हुई भोजनकी प्रीति करके नानाप्रकार भोजनके समूह खाद्य दही, दूध आदि भोजन पानकी प्रशंसा करनी भी मुक्तकथा है। इन चारों ही प्रकारका कथाभाषा जो त्याग है सो भी बचन गुप्ति है। इसको अलोक बचनसे निवृत्ति भी कहते हैं। और भाषा य सम्युक्त अशुभ बचनोंका त्यागना भी बचन गुप्ति है।

ऐसा ही भाषि भी पृथक्पाद स्वामीने भी कहा है—भाषाथ-रूप प्रकार व हरमें बचनकी प्रवृत्तिको त्याग कर अतरंगमें विनोदरूपसे अंतर्जन्म अर्थात् भीतर ० ही बचन कहना उचित भी रूप करनेसे योग अर्थात् ध्यान होता है यही ध्यान परम तमाको प्रदत्त अर्थात् प्रकाश काननादा है।

टाकाकार कहते हैं—या भव्य जीव संपारके भयको करनेबाधो सर्व ही बचनकी रचनाको त्यागकर सद्गुण विद्यासत्त्व चेत यथा चमत्काररूप एक शुद्ध आत्माके ध्याता है वह जीव जीव ही कम अवधारक समूहको अतिशय करके बिध्वन कर समावकी महिम का आनन्द ऐस सुखको खान मुक्तिको प्राप्त करता है।

अब कायगुप्तिचा कहते हैं—

वधण उद्वणमारण, आवुञ्जण तद्द पमारणादीया ।

कायकिरियाणियत्ता, णिदिट्ठा कायगुत्तित्ति ।. ६८ ॥

सामा द्राघ—वधन, छेदन, मारन, संकोचन बिस्तारन आदि शरीरकी क्रिय आदिको न करना भी कायगुप्ति कहा गई है।

विनोदाय—किञ्चिक्का प्रयत्न होना रूपमें अतरंग निमित्त कमका उदय तथा बाह्य कारण किञ्चिक्के कायका व्यापार है। छेदनमें भी अतरंग कारण कमका उदय और बाह्य कारण प्रमादी कषाय सहित जीवके शरीरकी क्रिया है।



मानका भी अतरंग कारण कमका वदयः बाह्य कारण श्रय करनेवाले वदय किछीके काय आदिकी चेष्टा है। अक्षोच विस्तार एक ही वय्यायमें समुद्रघातकी अपेक्षा होता है जिसमें आत्माके प्रवेश आत्माको न त्यागकर कुछ परके लिये फँड जाते हैं और फिर सकुड जाते हैं इत्यादि बंधनादिमप जो कायकी क्रिया वनसे अलग रहना सो कायगुप्ति है। टोकाकार कहते हैं— जो मुनि कायके विकाराको त्यागकर बारबार शुद्धात्माको भावना करता है उसीका ही ज म में इस सप्चारमें अफळ समझता ह।

अथ निश्चय नयसे मनोगुप्तिका स्वरूप कहते हैं —

जा रायादिणियत्ती, मणस्त जाणीहि तम्मणोगुत्ती ।

अलियादिणियत्ति वा, मोण चा होइ वदिगुत्ति ॥ ६९ ॥

सामान्यार्थ—जो मनसे रागादि भावाका दूर करना सो मनगुप्ति है तथा अस्तय आदि बचनका न कहना मौन रक्षना सो वागुप्ति है।

विशेषार्थ—जो मुनि अथ मोह रागद्वेषको दूर करके तंद्ररहित अद्वैत परचेत यस्वरमें अले प्रकार स्थित होता है उसीके ही निश्चय मनोगुप्ति होती है। हे शिष्य! तुम अवतक इस स्थिरतासे बढायमान न हो तबतक मनोगुप्ति जानो। सम्पूर्ण अस्तय भाषाका त्यागना अथवा मौनप्रतका रचना ऐसा कि चेतना जिसमें नहीं ऐसे मूर्तिक द्रव्यमें व इन्द्रियज्ञान अगोचर ऐसे अमूर्तिक द्रव्यमें व दोनोंमें बचनको प्रवृत्ति न करना सो निश्चय बचन गुप्ति कही जाती है।

टोकाकार कहते हैं जो मुनि आराममें भले प्रकार छीन हो शुभ तथा अशुभ मन बचनकी क्रियाको त्यागता है, तथा शुद्ध वा अशुद्ध नय विकरनीसे रहित वापरहित चैतन्यमात्र

विद्यमाननि ररनको प्राप्त करता है सो मुनि वापहूयो बनीके छिप अग्नि समान हो बोगियोंमें शिरोमणि होता हुआ अनन्त अनुपपन्ना कामधर वनमें शिवत गढ़ पदा ही जीव मुक्ति अर्थात्प्राप्ता भोगी होता है ।

अब निश्चय कायगुप्तिके करते हैं—

कायक्रियानियत्तो, काउस्मगो सरीरगे गुत्तो ।

हिंसाइणियत्तो वा, सरीरगुत्तित्ति निदिद्धा ॥ ७० ॥

सामा याय—कायकी सम्पूर्ण क्रियाओंको रक्षणना, कायसे सम्पत्तभाषको छोड़ना सो शरीर गुप्ति है अथवा सर्व हिंसासे दूर रहना सो काय गुप्ति है ऐसा कहा गया है ।

विशेषार्थ—सब ही मनुष्योंके शरीरोंमें सहस्रधी क्रियायें हुआ करती हैं, उन सर्व क्रियाओंको छोड़कर कायोत्सर्ग करना सो काय गुप्ति है । तथा पच प्रकार रथावर जीव और सब प्रम जीवोंकी हिंसा न करनी सो काय गुप्ति है । तथा परम समयके धारी परम जिन योगीश्वर जब अपने आत्माके चैत यमई शरीरसे इस जगत्का भेदज्ञान करते हैं तब उनके अंतरंगमें अपने आत्माकी चकृष्ट मूर्तिक निश्चयका होना सो कायगुप्ति है ।

ऐसा ही भी तत्त्वानुशासनमें कहा है कि शरीरकी सम्पूर्ण चैष्टाओंको तथा संसारके कारण राग द्वेषादि भावोंको छोड़कर स्थिर हो अपने आत्मस्वरूपमें धीन हो जाना सो कायोत्सर्ग कहा जाता है ।

टोकाकार कहते हैं—आत्मा अरिस्वरूप हृदय चकन क्रिया सहित है । व्यवहारसे यह हृदय चकन मेरे आत्मामें होता है इसलिये मैं शरीरकी विकाररूप क्रियाओंका रक्षण करता हूँ ।

अथ भी अरहत परमेष्ठोका स्वरूप कहते हैं—

धेणघाडम्मरहिया, केवलणाणाडपरमगुणसहिया ।

चोत्तिमअदिसयजुत्ता, अरिहंता एरिसा होति ॥ ७१ ॥

सामान्यार्थ—जो सम्पूर्ण धार्मिक कर्मोंसे रहित हैं केवल ज्ञानार्थि परम गुणके धारी हैं अतीश अतिशय बिराजमान हैं सो ही अरहत कहलाते हैं ।

विशेषार्थ—आरमाके गुणोंको घ तनेवाले कर्मोंको धार्मिक कहते हैं । धनरूप अर्थात् आत्मास जो एकमें एक हो रहे हैं ऐसे जो ज्ञानाक्षरणी, वृत्ताक्षरणी, अवगाव और मोहनी इनसे जो अर्हत परमेष्ठो रहित हैं । इन धार्मिक कर्मोंके नाशसे समस्त लोकको आनन्दका कारण मन्वथा निमल ऐमा केनबुद्धान, केवलदशन केवल बोध और केवल सुख इन चार चतुष्टय करके जो अर्हत भगवान युक्त हैं तथा आगममें प्रसिद्ध ३४ अतिशयके जो धारो हैं वे ही भगवान अर्हत होते हैं ।

टीकाकार कहते हैं—व सुमीमाजीके पुत्र भीषणममु पयस त हो जिनका शरीर परमोदारिक है जिसमें पदारग प्रसिद्ध है, जिनके नेत्र प्रफुल्लित कमलके समान हैं जो पुण्यसमूहके तीर्थंकर मात्रके धारी हैं जो पवन जाह्नवी कमलोंको ममत्र करनके लिये मूयके समान हैं जो मुनिजनरूपी वनांको शोभाको बढ़ानके लिये क्षेत्र मास अर्थात् वसन्तकाल हैं, जो कमरूपी सेनाके नाश करनेको शत्रु हैं तथा जिनका धार्मिक धर्म प्राणियोंका हित करनेवाला है ।

जो कामधरूपी हाथीके नाशके लिये सिंहके समान हैं, जो पुण्यरूपी कमलके खिलानेको मूय हैं, जो सम्पूर्ण गुणोंके समान हैं, जो सबको इच्छित सुखदाता कल्पवृक्ष हैं । जो दुष्ट

कर्मोंके बीजको लज्जानेवाले हैं, जो ममारेके पक्षको छोड़ चुके हैं, तथा जिनके चरणोंको इ इ नमस्कार करते हैं ऐसे श्रीजिनन्द्र देव जयवन्त होइ ।

जिन्होंने कामदेवके धनुषको जीत दिया है, सो सर्व दिया ओंके प्रादुक्ता है, जिनको परिणति सुखरूप है, जो पाप समूहके द्विये यमराजके समान हैं जिन्होंने ममारेके कारको शान कर दिया है जिनके परमब्रह्मसमुक्त पदोंको राजाविराज नमन करते हैं, जिन्होंने कोवको जीत दिया है तथा विद्वानोंके समूह जिनको नमस्कार करते हैं ऐसे श्रीजिनन्द्र जयवन्त होइ ।

यदा पर टीकाकारने पद्यरम्भ अर्द्धन भगवानकी एक स्तुति मनोहर श्लोकमें लिखी है । वही दूर प्रथम श्लोकमें अथ समास न शीक अन्तमें 'श' अक्षर आया है, दूसरे श्लोकमें 'अ' अक्षर व तीसरेमें 'व' अक्षर आया है ।

अथ चोप श्लोकका अर्थ करते हैं—जिनके समास पदोंके अन्तमें 'अ' अक्षर आया है—अर्थात् जि होंने मोगको प्रादु किया है, जिनके नम्र पद्म कमलके समान दिग्धार युक्त हैं जिन्होंने पापको सेनाको जीत दिया है कामदेवको पक्षको पराजित किया है, जिनके धुगद चरणोंका यज्ञ नमन कात् हैं, जो तरुविद्य नमें वृक्ष अर्थात् चतुर हैं जिन्होंने सुदधान भव जीवोंको शिक्षा प्रदान की है, तथा जि होंने निर्बीजका कारण मुनि दास्यका स्वरूप कहा है ऐसे श्रीजिनन्द्र प्रभू जयवन्त होइ ।

आगके श्लोकके पदोंके अन्तमें 'श' अक्षर है—जो कामदेव धरणे इ ओर "व"के ईश हैं, जिनका शरीरका प्रदेश काविराम शोभायमान है, जिनके चरणोंको यमोश अर्थात् मुनियोंके ईश नमस्कार करते हैं, जि होंने यमराजको पक्षको मर्हकर दिया है जो पा

सुयश कव दिशाओंमें फेना हुआ है जो जगत्के ईश हैं, ऐसे मनोहर भी पद्मवसु स्वामी जयव ठ होइ ।

आगे श्री सिद्धभगवानका स्वरूप करते हैं—

षड्द्रुम्भनया, अद्रुमहागुणसमणिया परमा ।

लोपगाटिदा णिया, मिद्रा ज परिमा ह्योति ॥ ७० ॥

सामान्यतः—जि ह्येन अष्टकमके ष घनांको नाश कर दिया है, जो आठ मह गुण काके अद्वित परम अर्थात् बडे हैं, जो आठके अमभागम स्थित हैं जो निरय अर्थात् अविनाशी हैं वे सिद्ध होते हैं ।

विशेषार्थ—इस गायामें मोक्ष प्राप्त करनेके परम्परा कारणमूत्र ऐसे जो भगवान सिद्ध परमेष्ठ हैं उनक स्वरूपको कहते हैं ॥ सम्पूर्णने अ तरगके अ मुख्य होकर ध्यान और ध्येयके बिचलोंसे दूरबर्ती ऐसा जो परम शुद्ध शुद्ध ध्यान उसके बलसे जि ह्येन ज्ञानावरणो आदि आठ प्रकार कर्मनबोंको नष्ट कर दिया है तथा जो क्षायक सम्पत्क आदि आठ गुणोंसे पुष्ट कीर पुष्ट अर्थात् सतोषित हैं तथा जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र ऐसे हीनां तत्त्वके विशेष गुणधाररूप होतअ परम हैं, अर्थात् हीनों तत्त्वोंकी जहा पूणता है, तथा जो व्यवहारसे ठान बोकके शिखरके आगे गमनका कारण धमत्रय न होतसे बोकके अमभागमें ही तनुवातबलयम बिराजमान हैं तथा जो अपनी इष्ट अमूत्र पूषपयायसे कभी अ य पयायरूप न ह्येन अर्थात् सिद्धपर्याय न रयांगे इस कारण नित्य हैं ऐसे जो सिद्धपरपेछी होते हैं ।

टीकाकारकहते हैं—कि ज्ञानके पुत्र ऐसे जो भी सिद्ध भगवान् हैं सो व्यवहारनयकरके हीन भवनके शिखरक अमभागक चूडामणि हैं परन्तु निश्चय काक भी सिद्धदेव स्वाभाविक परम

चैत य चिन्तामणि स्वरूप अथन अविनाशी युद्ध निष्कल्पमें हो बिराजत है ।

जिं होन सर्व दोषोंको धात कर दिया है, जो दहसे युक्त होका तीन भवनके शिखरपर बिराजित है, जो सिद्ध अथाधामें अपमारहित परमज्ञान दशन शक्तिसे युक्त है, जिं होन अष्टधर्म प्रकृतिके समुदायोको नष्ट कर दिया है और अष्ट महागुणोंको सिद्ध किया है, जो अठ रहित, अष्टपाप हैं जो तीन भवनके शिरोमणि और सिद्धिदारी के स्वामीक हैं ऐसे निरप युद्ध सर्व सिद्धोंको मैं नमस्कार करता हू ।

जो अपने अरम स्वरूपमें स्थित हैं, लक्ष्मीन हैं जिंहीन धात गुणकी सम्पदाको प्राप्त किया है और धात कर्मके समूहको नष्ट किया है ऐसे सिद्ध महाराजोंको मैं बार बार नमस्कार करता हू ।

अने भी आचार्यके स्वरूपको कहते हैं —

पचाशरसमगा, पचिद्रियदृष्टिदृष्यणिः ।

वीरगुणगमीरा, आपरिया एरिसा होन्ति ॥ ७३ ॥

अन्वय—जो दशन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य । पाचों आचार्योंमें परिपूर्ण हैं, जो पचेन्द्रियरूपों हायिकोंके मद् दशन करनवाले हैं, जो धीर और गुणोंमें गमीर हैं वे आचार्य होते हैं ।

विशेषार्थ—जो ज्ञानादि पाचों आचार्योंमें परिपूर्ण हैं, वदशन रक्षण धन, चतु और धीर इन पाचों इन्द्रिय मदाय इन्द्रियोंका मद् दशनमें दक्ष हैं, तथा जो सम्पूर्ण मका धार करसर्गोंका विनयकरके धीरता गुणके कारण गमीर हैं । अज्ञोहीसे ज्ञाननय य भी मगवान आचार्यही हैं ।

पेडा ही भी " बविराजदेवन " कहा है—किं

आचारमें लीन हैं, अहिंसन अथात् निर्प्रयत्नाके जो स्वामी हैं, कषाय चोरोके ध्यानोको जि होने नष्ट किया है, प्रगट ज्ञानके बलसे परमतेजको जि होने प्राप्त किया है, जो पंचास्तिकायके स्वरूप ज्ञानमें लब्धहीन हैं, जो प्रगट स्थिर योगाभ्यासमें प्रमाण बुद्धिगाली हैं, जो गुणोक्तके उद्भव रूप हैं ऐसे भी आचार्य महाराजकी हम भक्तिरूपी क्रियाके अमितापी अपने संसार सबधी दुःखमूढको फाटनेके लिए पुत्रन करते हैं ।

टाकाकार वदत हैं—जिन 'श्रीचंद्रकीर्ति' मुनिका मन सपूर्ण इन्द्रियोंके प्रभोके आलंबनसे रहित है, जो आकृष्टता रहित अपने आत्मव्यवधानमें त मय है, जो शुद्ध है और निर्बाणका कारण जो शुक्लधन उल्लास प्राप्तका कारण है जो ममता और इन्द्रियदमन ताका मर्द है, जो मत्तो, दया और दम अर्थात् जितेन्द्रियताका घर है, जो उपमारहित है ऐसा भगुच्छा मन मेरे वदनांक है ।

आगे भी उपध्याय महाराजका स्वरूप कहते हैं—

रयणत्तयमजुत्ता, जिणरुहियपपच्छदमया स्या ।

णिकखमायसहिया, उवझाया एरिसा होन्ति ॥ ७४ ॥

सामर्थ्य—जो रत्नत्रयसे युक्त हैं, जिनके भगवान् वणीक पदार्थोंके उपदेशक हैं जो इच्छारहित ऐसे भावमहित हैं ऐसे उपध्याय कहे जाते हैं ।

विशेषार्थ—इस गायामें अध्यापकस्वरूप परम गुणोंके स्वरूपक, वर्णन है । जो निश्चल रहित अद्वैत परम चेत य रूपक अद्वान ज्ञान और आचरणसे शुद्धनिश्चय स्वभाव रत्नत्रयके धारी हैं, जो जिनके मुखारविन्दसे प्रगट हुए लोकादि सद्यत्तोंके अर्थे सहित व्याख्यान करनेवाले हैं, जो सम्पूर्ण परि त्याग है ब्रह्म जितका तथा कर्मात्तन रहित ऐसा जो

निज परमात्मतत्त्व समक्षी भावनासे पैदा होनेवाले परम शीतराग सुखरूपी अमृतके वीनमें अनुरागो है इच्छित्त्व इच्छा रहित परम भावनाके रक्षामी है । ऐसे ब्रह्मर्षीके पहचानने योग्य लैनियाके शवाध्याय महाराज होते हैं ।

टीकाकारों कहते हैं—मैं रत्नप्रपण्ड, शुद्ध, भव्य कमलोंके द्विये सूर्य एसे उपदेश दाता उपध्यायोंको नित्य बार-बार च इना करता हू ।

आगे निरंतर अरुंद्धित परमतपश्चरणमें तीन ऐसे मवेद्याधुके स्वरूपको कहते हैं—

वानारनिष्पमुक्ता, चउव्विहाराहणामपारत्ता ।

णिग्गथा णिम्मोदा, माहू दे एरिसा होन्ति ॥

सामा यार्थ—जो सर्व व्यापारसे रहिन हैं, चार प्रहण आराधनामें सदा लक्ष्मीन हैं, जो निप्रय और मोह रहिन हैं वे लधु होते हैं ।



निर्वाणरूप श्री लक्ष्मी सुन्दर केशोंका जूटा लक्ष्मी लोभा तथा लक्ष्मीके साक्षात्कार करणका रूप पुत्र लक्ष्मी प्रीभायमान नानाप्रकार वर्णका अलङ्कार लक्ष्मीके आचरणमें वीतुल्य बुद्धि हैं अर्थात् मुक्ति श्रीके प्रेमो हैं ऐसे लक्ष्मीधु होते हैं ।

श्रीलक्ष्मी कहते हैं कि मातृका मन लक्ष्मी जीवोंके ऐसे सुखोंसे रहित है सर्व परिमलसे सम्बन्ध वसे दूरवर्ती है इम लोकोसे नमस्कार करनयोग्य है । हे साधु ! ऐसे मनकी अपने आत्माहोमें शीघ्र लुकाओ ।

आगे इस अधिकारकी सकोचते हैं—

एरिसयभायणाण, व्यवहारणयस्म होदि चारित्त ।

णिच्छयणयस्म चरण, उत्ती उडु पयक्खामि ॥ ७६ ॥

सामा यार्थ—इन ऊपर द्विविध भावनाओंमें व्यवहारणयकी अपेक्षासे चारित्र्यका फलन किया है । निश्चयनय अपेक्षा चारित्र्यकी आगे कहेंगे ।

विशेषार्थ—इस प्रकार पहले बहे पाचमहागत, पाचममिति, निश्चय व्यवहार, तीन गुणित तथा पांच परमेशोका स्वरूप—इनके द्वारा अत्यन्त शुभ भावनाकी प्राप्ति होती है यह सर्व व्यवहारनयके अभिप्रायसे परम चारित्र्य होता है ।

आगे कहनेयोग्य पाचवें अधिकारमें परम पंचम भाव जो पणिगामिक भाव लक्ष्मी ज्ञान तथा जो पंचमगति अर्थात् मोक्ष लक्ष्मी कारणरूप ऐसा शुद्ध निश्चयनयके आधीन जो परम चारित्र्य है लक्ष्मी स्वरूप दिखलाएगे ।

ऐसा ही श्रीमोक्षमागप्रकाशमें कहा है कि जिस चारित्र्यके बिना सन्ध्यावृत्त और ज्ञान ऊँछलके भीतर पड़े हुए लोखके समान तथा मेलस अलग नहीं है सब जनके चारित्र्यको मैं

नमन करता हू । इस चारित्र्यही मृति देव, असुर तथा मनुष्य  
सब करते हैं ।

टीकाकार कहते हैं कि मोक्षपत्ती कोके जनग अर्थात् अर्धे  
त्रिप सुम्यथा मूक यह परम निष्पन्न चारित्र्य है ऐसा व्यापारनि  
बद्ध है तथा इस चारित्र्यका अष्टम साधन व्यवहार चारित्र्य भी  
है ऐसा वर्णन किया है ।

इस प्रकार मुक्तबिह्वलकोके लिये सूर्य पर्वत द्वयके विशङ्कसे रहित  
गरीरमात्र परिमदधाती भीषणप्रममदधादिद्वय रहित  
निवसत्तारको तात्पर्यवृत्ति नाम टीकामें व्यवहार  
चारित्र्यका अधिकार पूर्ण हुआ ।

## ५-निश्चयप्रतिक्रमणाधिकार

आगे आचार्य टोकाकार श्री आश्वसेनाचार्यको नमस्कार करते हैं—जो समय और ज्ञानकी मूर्ति हैं तथा दिनयवान् जो जिनरूपी कमल जनक विद्याग करनेके लिए सूर्य हैं तथा काम स्वरूपी शशीके कुम्भमण्डल बिन्दारनका सिद्धके समान हैं ऐसे जो श्रीमाधवचंद्र आचार्य जो श्रीभाको विस्तारते हैं ।

आगे मय व्यवहार चारित्र्य और धर्मके फलका ज्ञान धर्मसे प्रतिपक्षी जो शुद्ध निश्चयनयमरूप परम चारित्र्य धर्मको प्रतिपादन करनेके आभिप्रायसे निश्चय प्रतिक्रमण अधिकारको आगे कहेंगे ।

जिसमें प्रथम ही पंचारनका स्वरूप कहते हैं—

णाह षारयमानो, तिरियच्छो मणुदेवपजाओ ।

कृत्ता ष हि करइदा, अणुमता णेव कृत्तीण ॥ ७७ ॥

णाह मग्गणठाणो, णाह गुणठाण जीउठाणो ण ।

कृत्ता ष हि करइदा, अणुमता णेव कृत्तीण ॥ ७८ ॥

णाह वालो बुद्धो, ण चेव तरुणो ण कारण तेसिं ।

कृत्ता ष हि करइदा, अणुमता णेव कृत्तीण ॥ ७९ ॥

णाह रागो दोसो, ण चेव मोहो ण कारण तेसिं ।

कृत्ता ष हि करइदा, अणुमता णेव कृत्तीण ॥ ८० ॥

णाह कोहो माणो, ण चेव माया ण मोहि लोहो हिं ।

कृत्ता ष हि करइदा, अणुमता णेव कृत्तीण ॥ ८१ ॥

सामाय अर्थ—न मैं नारकभाव धारी हू न मैं तिर्येच ।  
मनुष्य तथा देवपथीयबाबा नहीं हू न मैं इनका कर्ता हू, न  
हू और करनेकी अनुमादना करनेवाला हू ।

न तो मैं मागणा स्थान हू न गुणस्थानरूप हू, न जीवसमाप्त स्थानरूप हू, न मैं इन भावोंका कर्ता हू न करानेवाला हू न मैं कर्ताओंको अनुमोदना करनेवाला हू । न बाह्य हू न बुद्ध हू न मैं जुबान हू और न इन अवस्थाओंके होनेका हू ।

न मैं इनका कर्ता हू न करानेवाला हू और न मैं इनके करनेवालोंकी अनुमोदना करनेवाला हू । न मैं रागरूप हू न द्वेष रूप हू न मोहरूप हू और न इन भावोंका कारण हू ।

न मैं इनका कर्ता हू न करानेवाला हू और न अनुमोदना करनेवाला हू । न मैं क्लेशरूप हू न मानरूप हू न माया रूप हू और न कभी खोम रूप होता हू । न मैं इनका कर्ता हू न करानेवाला हू और न करनेकी अनुमोदना करनेवाला हू ।

विशेषार्थ—इन गथाओंमें कहा है कि शुद्ध आरम्भके सर्व कर्तृत्व भावका अभाव है । बहु आरम्भ और बहु परिग्रहके अभावसे मैं कभी नारक पर्यायरूप नहीं होता हू क्योंकि सप्तरी जीवके ही व्यवहारसे बहु आरम्भ और बहु परिग्रह होते हैं और इसी कारण सब सप्तरीके नारकादि दुर्गातिका कारण ऐसा पूण मोह, राग तथा द्वेष होता है । मैं शुद्ध निश्चयक बलसे शुद्ध जीवचित्तकाय हू ।

मेरे नरक पर्यायके समान तिर्यच पण्य भी नहीं है और न मनुष्य पर्याय है और न मेरे देवपर्याय है क्योंकि देवपर्यायके योग्य सुन्दर रम गद्य तथा शुभ रूप पद्म पुत्रक द्रव्य वनका सम्बन्ध मेरे साथ नहीं है ।

इसी प्रकार १४ प्रकार मागणाके स्थान, १४ जीव समाप्तके स्थान व १४ गुणस्थान ये कोई भी शुद्ध निश्चय कर्ताके मेरे नहीं हैं । केसा हू मैं, परम भाव को शुद्ध परिणामिक भाव वलको कारण करनेवाला हू । मनुष्य तिर्यचकी कायकी जातिमें अवस्थाक प्रेमिन्तसे जो विकार पैदा होता है वही विकार शरीरका बाह्यक,

वृद्ध, युवान शिथिल आदि अवस्थात्तर होनेसे अनेक प्रकार हैं—  
सो इनमेंका कोह भी विकार शुद्ध निश्चयनयके अभिप्रायसे मरे  
नहीं हैं ।

अज्ञा, ज्ञान, परमनैत यमयो सुखदा अनुभव इनमें जीन जो  
सकृष्ट आत्मिक तत्त्व है वम तत्त्वको प्रण करनेवाली जो शुद्ध  
न्यायिक नय इसके बलसे मेर मोह, राग व द्वेष बिलकुल नहीं  
हैं । मैं स्वाभाविक निश्चयनयम मदा निराकरण हू, कर्मके आव-  
रणसे अलग हू । शुद्ध ज्ञान स्वरूप हू, अज्ञा चेत यमई शक्ति  
धारी हू ।

सहज दशन गुणसे प्रकाशमान और परिपूर्ण मेरी मूर्ति है,  
अपने स्वरूपमें निश्चलतासे ठहरा हू इस कारण स्वभावसे ही  
यथावशात चारप्रका धारी हू । इसलिये मेर सम्पूर्ण संसार  
सम्बन्धी दुखोंके कारण ऐसे क्रोध, मान माया शोक नहीं हैं  
तथा न मैं इन नानामकारके आकुलतागद बिभाव पर्यायोंका  
निश्चयसे कर्ता हू, न करानेवाला हू और न पुत्रक कर्मके  
करनेवालाका अनुमोदक हू । न मैं नारक पर्यायकी करता हू  
मैं तो स्वाभाविक चत यक बिलालरूप आत्माकी ही अनुभव  
करता हू ।

न मैं पशुपर्यायकी करता हू । मैं तो सहज चित्तके बिलालरूप  
आत्माकीका स्वाद लेता हू । न मैं मनुष्य पर्यायकी करता हू, मैं  
स्वाभाविक चत यक बिलालरूप जो आत्मा वल होका अनुभव  
करता हू । न मैं देव पर्यायकी करता हू मैं सहज चेत यके  
प्रकाशरूप आत्माका ही मनन करता हू । न मैं मिथ्यादशन आदि  
गुणधानोंके भेदको करता हू । मैं स्वाभाविक चेत यके बिलालरूप  
आत्माका ही मचेतन करता हू । न मैं एकेश्वर आदिक जीव  
समायके भेदको करता हू । मैं सहज चत यके प्रकाशरूप आत्माकीका  
करता हू । न मैं शरीर मन्त्र वी बाह्य वृद्ध आदि भेदको

करता हूँ । मैं स्वामाबिह चेत उसके विद्यासत्त्व आरमाका ही स्वाद लेता हूँ । न मैं रागद्वेष आदि भावकमक भेदोंका करता हूँ । मैं सहज चेत उसके प्रकाशरूप आरमाहीका मग्न करता हूँ । न मैं भावकमक क्लेशादि चार क्लेशको करता हूँ । मैं स्वामाबिह चेतके विद्यासत्त्व आरमाका ही अनुभव करता हूँ । इस प्रकार पञ्चरत्न सह ५ गाथाओंमें गभिर सधुसमें यह कथन दिया है कि सब विभावपदार्थोंको त्याग करनेके भावना करना ही कायकरी है ।

टोकाकार कहते हैं—जो मन्व चोच इन पाञ्चरत्नमड पाञ्च गाथाओंके द्वारा अपन चित्तको सब इन्द्रिय विपरिक इटस छुड़ाता है तथा अवन आरिमक द्रव्यके शुद्धगुण पदार्थोंमें अपन व्यवयोगकी शीघ्र करता है वह आत्मा अपन आरिमक भावको भिन्न सब विभावको त्यागकर शीघ्र ही मुक्तिका लाभ करता है ।

आगे कहते हैं कि भेद विज्ञानसे ही मन्व से निश्चयचारित्र्य होता है—

एरिमभेदमामे, मज्झन्थो होहि तेण चारित्त ।

त दिदकरणाणिमित्त, पटिकमणादी परमखामि ॥ ८२ ॥

सामा यथ—उपर कहे प्रमाण भेदविज्ञानके भीतर जो अनुभव करते हैं वे मध्यम होते हैं—इस भावके द्वारा चारित्र्यका लाभ होता है । इसी चारित्र्यको दृढ करनेके लिये प्रतिक्रमण आदिसे कहेंगे येही श्राकु दकु दाचार्ये प्रतिपाद करते हैं ।

विशेषार्थ—पहले कही हुई पञ्चरत्नमई पाञ्च गाथाके द्वारा एकका भाव जाननेमें मोक्षका माघक ऐसे जीव और पुत्रोंका भेद विज्ञान होता है, इस भेद विज्ञानका अनुभव करत करते जो मुमुक्षु मोक्षके इच्छुक इस भेद विज्ञानके माघमें सदा स्थिर रहत हैं वे ही मध्यम अर्थात् भीतराग हो पाते हैं ।

इस कारणसे ही उन परम सधुसो मुनिर्षिक इ नानवर्षे

चारित्र्य होता है—इसी चारित्र्यमें निश्चयरूपसे स्थिति करनेका उपाय प्रतिक्रमण आदि निश्चयरूप कियाए कही गई हैं। अनीत अर्थात् गतकालमें किये हुये दोषोंको छुड़ानेके लिए जो प्रायश्चित्त किया जाता है उसको प्रतिक्रमण कहते हैं। आदि शब्दसे प्राया उपान आदि भी प्रदण करने। आगे इनहीका स्वरूप कहेंगे।

ऐसा ही श्री अमृतचन्द्रमूर्तिने कहा है कि निश्चय करके जोर मिद्ध हुये हैं वे सब ही भेद विज्ञानकी महिमासे हुए हैं और जो जो संसारमें बंधे हुए हैं वे सब ही भेद विज्ञानके अभयसे ही बंधे हुए हैं।

टीकाकार कहते हैं—कि श्रीगुनिनाथके विसर्गमें अतिशयकरके भेद ज्ञानका भाव होने पर स्वय ही यह उपयोग मोहको छोड़ देता है तथा शाश्वतरूप ऐसा शमरूप समुद्र उससे समस्त पापरूपी बलकको धो डालता है—यह कोई निश्चय करके समय कायका ही एक भेद है।

आगे प्रतिक्रमणका स्वरूप कहते हैं—

मोक्षार्णवयणरयण, रागादीभावनवारण मित्रा ।

अप्यार्णवो ज्ञापदि, तस्स दु होदिचि पडिकमण ॥ ८३ ॥

वामा यार्थ—बचनकी रचनाको छोड़कर तथा राग द्वेषादि भावोंको निवारण करके जो कोई आत्माको ध्याता है उसके प्रतिक्रमण होता है।

। शेष य—जो मोक्षार्थी जोब प्रतिदिन सर्व पापके समुद्रोंको अरु न नक छिय बचनमई प्रतिक्रमणकी श्रुति करता है उसके इस गायाम निराकरण है। जो कोई परम तपश्चरणका कारण स्वभाविक वगाकरवा अमृतका जो समुद्र उसके बदानक छिये पूण चद्रम के समान है उसके अगुय बचनोंको करनेका राग ता दाना हो हे तागी वह प्रतिक्रमण सूत्रमें गठन की हुई कठिन नाकी रचनाकी छोड़ता है और संसार की घेबके मूखधद जो

सब मोह राग द्वेष भाव इनको दूर करता है तथा स्वदाहित आनन्दमई निश्चयकारण परमात्माका ध्यान करता है सभी सुमुक्त जीवके निश्चयकारके निश्चय प्रतिक्रमण होता है ।

कैसा है यह निश्चय प्रतिक्रमण, जसा परमब्रह्मिण तद्वत् सम्बद्ध भ्रद्धान, ज्ञान और आचरण विद्यमान है । तथा जस सम्पूर्ण वाग्ब्रह्मस्य अर्थात् बचन रचनारूप व्यापारका श्याम है ।

ऐसा ही श्रीमातृ अमृतचन्द्र सूत्रोने कहा है—*चित्तं तद्वत्* खाट विकृतरूप बचनकी रचना करनेसे कोई क्यही *कैतु* नहीं है । परमार्थवात यही है कि निश्चय एक *सम्बद्ध* अनुभव करना ठीक है । क्योंकि अपने आत्मीक *सम्बद्ध* ऐसे पूज्यज्ञानका जडा प्रगटपना है ऐसे समयघाटके *सिद्ध* कोई कुछ अनुभवन योग्य नहीं है ।

टोकाकार कहते हैं—*अथ त तत्र मूढसे मे* जो कम चनका प्रतिक्रमण करके मैं निश्चय *सम्बद्ध* अपने आत्मम्बरूपक द्वारा चतन करता हूँ ।

आग कहते हैं कि जो आत्माकी *आत्मा* सभी जीवके ही प्रतिक्रमण कहा जाता है—



साक्षात् स्वभावमें ठहरकर आत्माकी आराधनामें बतन करता है वही जीव निरपराध स्वभाव है । आत्माकी आराधनाका विगत होना अर्थात् बिराधना होना सो अपराध है अक्षरक जो रहित है वही भय निरपराध है ।

एसा भव्य जीव सम्पूर्ण प्रकारसे बिराधनाको छोड़ देता है । जिसके परिणामसे आराधना चली गई है उस परिणामको बिराधना कहते हैं । ऐसा निरपराधो जीव ही निश्चय प्रतिक्रमण-स्वरूप है ऐसा कहा गया है । सो ही भोक्तव्यसारजीमें कहा है ।

सबहीका समयसारकी व्याख्यामें उक्त है—जो अपराधो जीव है वह निरंतर अनंत कर्मसि यवथा है परन्तु जो निरपराधो है वह कमी भी बदनको स्पर्श नहीं करता है । क्योंकि अपराधो याने आत्माको नियतरूपसे अशुद्ध हो भजता है परन्तु निरपराधो भले प्रकार अपने शुद्ध आत्माका सेवक होता है ।

टीकाकार कहते हैं—जो परमात्मस्वरूपके ध्यानसे रहित है ऐसा आत्मा निश्चय करके समारी और अपराधो ही है क्योंकि अपनेको अपराध मंदित हो स्मरण करता है अर्थात् अशुद्ध भावके मननसे अशुद्ध ही रहता है । किन्तु जो निरंतर रहित एक अद्वैत चैतन्यके भावमें तल्लन रहता है वही निरपराधो होता है तथा वही कर्मके नाश करनेमें प्रवीण होता है ॥

आगे कहते हैं कि जो निश्चय चारित्रिके धारी परम वदेसा समयके पाखनेवाले हैं वहीके ही निश्चय प्रतिक्रमणका स्वरूप होता है—

मोतूण अणाधार, आपारे जो दु वृणदि थिरभार ।

सो पडिङ्गमण उच्चइ, पडिङ्गमणमओ हवे जम्हा ॥ ८५ ॥

सामा य अर्थ—जो भय अनाधारको त्यागकर स्वभावामें

सिद्ध भावको करता है बही प्रतिक्रमणमई होता है तथा बही प्रतिक्रमण रक्षण है ।

विशेष र्थ—नियतरूपसे परमोपक्षा सयमो मुनिके द्वारा  
 आराधना अर्थात् भक्ति रूप सिवाय अरे ही अनाचार है इन्  
 द्विये सर्व ही अनाचारको दशाकर जो स्वामर्दिह संन्यास  
 विद्यारूप ऐसा निर्जन अपना परमात्म तद्वशी भावनाके से  
 आचार उद्यमे जो कोई अहज वैराग्यका भावने संन्यास  
 करता हुआ अपने सिद्ध भावको करता है बही एक ही  
 मुनि प्रतिक्रमणरूप कहा गया है क्योंकि बही एक ही  
 समता रक्षण भावनामें प्रतिष्ठापन करता हुआ निश्चय  
 मई होता है ।

भाषार्थ—वैराग्यमई भाव करता हुआ जो कहे गये है  
 भावना करता है तक्षीक निश्चय प्रतिक्रमण इति ।

आगे कहते हैं कि ३ मार्गको त्यागकर अर्धश्रुतीरागके मार्गको स्वीकार करना चाहिये—

उत्तमम परिचिता, निणमगो जो दु कृणटि थिरभाष ।

सो पढिरुमण उच्यइ, पढिरुमणमत्रो हने जइता ॥ ८६ ॥

मामा याथ—३ मार्गको त्यागकर जो जोष त्रिनमार्गमें अपना स्थिरभाव करता है वही प्रतिक्रमणरूप कहा गया है क्योंकि वही जोष प्रतिक्रमणमई होता है ।

विशेषाथ—जो कोई शुद्ध निश्चय सम्यग्दृष्टो शंका, काक्षा, विचिचिन्ता, अयत्नप्रशया, तथा अयत्नप्रसत्तव ऐसे पाष मरुतवा बलकको क्षीयसे मुक्त होकर बुद्ध आदि एता तथादिमके रहे हुए मिथ्या दशन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चारित्ररूपी मार्ग सागरे दोर पर तु घममाग नहीं ऐसे ३ मार्गोंको छोड़ता है और व्यवहार नयकके महादेवादिदेव परमेश्वर सबह्र बीतरागके द्वारा कहा गया जो व्यवहार चारित्ररूपी मार्ग, अर्थात् पाष महाउठ, पाष अविनि, तीन गुप्ति पांच इन्द्रियोका निरोध, प्रतिक्रमण आदि छ आचरपक आदि ८ मूष्ट गुणोंके आचरणमें अपने परिणामको स्थिर करता है तथा शुद्ध निश्चयनय करके स्वाभाविक ज्ञान आदि शुद्ध गुणोंसे शोभायमान तथा रत्नाभाषिक परम चैत यक साभा य विशेषरूप प्रतिभाममान ऐसे अपने परमारम द्रुदमें अपना स्थिर भाव करता है अर्थात् शुद्ध चारित्रमें क्षीन होता है वही मुनि निश्चय प्रतिक्रमण स्वरूप कहा गया है । क्योंकि निश्चय प्रतिक्रमण परम आत्मोक तत्त्वमें ही प्राप्त है इस कारणसे ही यह तपोवन सरा ही शुद्ध है ।

ऐसा ही भी प्रबन्धनसारम कहा है—विशेष आदरके धारी पुराण द्वारा यह चारित्र वरम और अपवाद ऐसे दो भद्ररूप किया जाता है उस चारित्रको स्पष्टपने अनेक मूमिकाओंको

आचरण करके मुनि सबसे अपनी अनुष्ठान करके चतुर्विधे  
मामान्य विशेषरूप अपने आरम्भपूर्वमें विष्टता है ।

ऐसा ही टीकाकार कहते हैं कि जो मुनि इन्द्रिय विषयोंके  
सुखस बिरक्त हैं, शुद्ध आरिषक तत्त्वमें हीन हैं तयमें अपने  
चित्तको अनुशासित करके हुए हैं, कायसमूहको सर्गतिमें समत  
हैं, गुणरूप मणिकोंको मात्रासे दुष्ट हैं तथा सब भौतिक  
धर्मकीस रहित हैं, ऐसे मुनि क्या नहीं अमृतमई मोक्षरूपके  
बल्लभ होकर शुकुत्तमान हीने प्रयात् अवदक मुक्त प्रस काक  
प्रदायमान होत न ग कहने हैं कि श्रवण रहित भावोंमें  
परिष्कमन करनेवाला मज्ञानबोधन अथात् मुनि ही निश्चयप्रति  
क्रमकर होता है—

मोक्ष्ण मज्ञान, विष्मले जो दृ साह्य परिणमदि ।

सो पठिकमण उरुचर, पटिदपणगगो ह्ये जम्हा ॥ ८७ ॥

धामान्यधे—जो मुनि सब शक्य ग बको त्यागकर श्रवणरहित  
भावमें परिष्कमन करता है वह पठिकमणकर कहा जाता है  
क्योंकि वह मुनि पठिकमणमई हो जाता है ॥

विशेषध—निश्चयकरके यह ज्ञानमा सर्व शक्यमें रहित स्वरूप  
परमात्मा है पर तु व्यवहार नयके बलसे कमलसे लीचदसे  
सहित है इस कारणमें उपचार करने यह समारी जोर मावा,  
मिथ्या, अन्यान ऐसे तीन शक्योंके साथ है

इकारण इन तीनों शक्योंको छोड़कर जो कोई विषयोंसे  
विमुक्त परमयोगी परम निश्चय रहत्य परमरमरभावमें हीन  
होता है वही मुनि निश्चय प्रतिक्रमण स्वरूप कहा गया है । कर्णोंके

अपने आत्मस्वरूपमें प्रपन्न होना ही वास्तविक प्रतिक्रमण है ।

टीकाकार कहते हैं कि विद्वान् यति तीन शक्तियोंको त्यागकर शल्यरहित परमात्मामें ठहरकर प्रगटपन सदा शुद्ध आत्माहीकी भावना करता है । हे मुनि ! तू स्वयं काष्ठिमास रजायमान होता हुआ बार २ कामदेवक बाणसे निकली जो अग्नि उल्लङ्घनके दग्ध हो चुका है सो अब तू भवभङ्गमें भ्रमणका कारण देवा जो अतीव शक्ति उल्लङ्घनके शक्ति और प्रबल सत्कारसे भयको प्रपन्न करके जिन निर्मल तथा स्वभावमें ही रहे हुए आनन्दको अनादि कर्म इसके बन्धन नहीं प्राप्त किया उल्लङ्घन आनन्दको भज ।

आगे कहते हैं जो मुनि तपोधन मन बचन कायको मुनिधर्मोंमें गुप्त होता है वहीक ही निश्चय चारित्र्य होता है—

चत्ता अगुप्ति भाव, त्रिगुप्तिगुप्तो हेनेइ जो साह ।

सो पठिक्रमण उच्चर, पठिक्रमणमओ हरे जम्हा ॥ ८८ ॥

पामा वार्थ—जो माधु अगुप्ति भावको त्याग निश्चयकरके तीन गुप्तिधर्मोंमें गुप्त होता है वही प्रतिक्रमण स्वरूप कहा गया है क्योंकि वह मुनि प्रतिक्रमणमें ही जाता है ।

विशेषार्थ—जो कोई परम तपश्चरणरूप चरोंकरके कमलकिण्विये आनन्द तेजवान् मूर्खके समान है ऐसा अत्यन्त निकट भव्य मुनीश्वर है जो वस्तु प्रपन्नरूप जो अगुप्तिभाव उल्लङ्घनके त्यागकर त्रिगुप्तिमें गुप्त अर्थात् अतीव ऐसी विकल्प रहित परम समाधि योही है अलग जिनका ऐसे अति अपूर्व आत्माको ध्याता है वही निश्चय प्रतिक्रमणमें परम समयमें ही इसलिये उल्लङ्घन ही निश्चय प्रतिक्रमण स्वरूप होता है—

टीकाकार कहते हैं जो मुनि भव्य रमा बचन कायके विकारोंको

अथा त्यागकर घम्भशानमद् स्वामाधिक परम गुप्तिको शुद्धारमाची भावनाके सायमें मजन करता हे वह मुनि प्रियुतिमई होकर अपने प्रत्यक्ष स्वभावको प्राप्त होता है ।

आगे ध्यानके भेदोंको कहते हैं—

मोक्षण अट्ट रुद्, ज्ञाण जो ज्ञादि घम्म मुक्कं वा ।

सो पट्टिक्रमण उच्चड, जिणवरणिद्धिमुत्तेसु ॥ ८९ ॥

शामा यर्थ—जो कोई आत्त तथा रौद्रध्यानको छोड़कर घम्म ध्यान और गुह्यध्यानको ध्याता है उसीके दो जिनेद्र कथिय सूत्रोंमें प्रतिक्रमण कहा गया है ।

बिद्येयार्थ—अपने देशके त्यागसे, द्रव्यके नाश होनेसे, मित्र व पुत्रनोंके विदेश जानेसे, तथा सुन्दर स्त्रोके वियगसे इष्टबियोग अनिष्ट आत्तध्यान होता है । जो चेतन अचेतन पदार्थ अपनेको इष्ट नहीं हैं उनका संयोग होत उनके बियोगकी इच्छासे पैदा हुआ अनिष्ट संयोग आत्तध्यान होता है ।

शरीरमें वेदना होते उसके दूर न होनेतक बार बार उस पीड़ाको बिचारकर दुख मानना सो पीड़ा बि तबन आत्तध्यान है । आगामी भव व काळमें मोगोंकी इच्छासे बार बार उनका बि तबन सो निदान अर्त्तध्यान है । खोर, आर, शत्रु आदिको बध, बन्धन आदि चाहते हुए महाद्वेषरूप भावके बि तबनसे उत्पन्न हुआ द्विषानन्द रौद्रध्यान है । जारी करने करान आदिमें आन देका ध्यान सो खीवानन्द रौद्रध्यान है । मृपाबाइमें आन इ मृपानन्द रौद्रध्यान, बि परिग्रहको बद्धिमें आन इ मानना सो परिग्रहानन्द

ये दोनों ही आत रौद्रध्यान स्वर्ग और मोक्ष सुखके बिगोबी हैं तथा ससार दुःखक मूळ हैं । इन दोनोंकी सर्वथा त्यागकर जो कोई भक्त श्रेष्ठोंमें मुख्य परम भाव जो अपने आत्मका शुद्ध भाव अपनी भावनामें परिणमन करता हुआ धर्मध्यान और गुह्य ध्यानको ध्याता है वही मुनि निश्चय प्रतिकर्मण स्वरूप होता है । ऐसा है निश्चय धर्म ध्यान, जो स्वर्ग और मोक्षकी मर्यादा रहित सुखका मूळ और अपने आत्मस्वरूपमें निश्चित है । तथा ऐसा है निश्चय शुकुध्यान, जहा ध्यान और ध्येयका भेद नहीं है ।

जिसका ध्यान करनेवाला अपने अंतरंगमें अपनी परिणति करके सब ही इन्द्रिय प्रामोक्षे बाहर रह भेदरहित परम कलाका नाथ होता है । यह कथन परम जिनेद्र भीतीर्थकर देवके मुख कमलसे प्रगट हुआ जो द्रव्यभूत सममें प्रगट है ।

इस प्रकार ४ भेद स्वरूप ध्यानमें आदिके दो ध्यान आत और रौद्र हैं अर्थात् त्यागने योग्य हैं । प्रथम अवस्थामें धर्मध्यान प्रवृत्त करने योग्य है । परंतु अग्रुथ गुह्य ध्यान सबदा ही उपारेय है—यही ध्यान मोक्षका निवृत्त कारण है । ऐसा ही अग्र्य प्रथममें कहा है—जो ध्यान क्रियारहित, इन्द्रियबाध, ध्यान व ध्येयके बिच्छवसे रहित, अंतरंग स्वीनरूप है, उसीको योगियोंने शुद्ध ध्यान कहा है ।

टीकाकार कहते हैं—शुद्ध नय ध्यानके भेदममूर्को ही नहीं कथन करता है—शुद्ध नयसे यह आरमा जदा जिसमें मोक्षके ज्ञान ईश्वररूप अपने परमात्म तत्त्वमें व्यक्त अर्थात् प्रगट है ।

ध्यान और ध्यानके भेद । हैं इस कथनकी व्यवहार नय ही सदा कथन करता है । हे जिनेद्र ! आपका उरध परम आश्रयकारी है मानों इन्द्र जाल ही है क्या ।

भाषामें—शुद्ध नय वास्तुके शुद्ध अक्षर स्वरूपकी ही कहनेवाला

है। उपबहार नय शुद्ध तथा भेद रूप कथनको कहनवाला है। परम शुद्ध अवाधामें ध्यान और ध्येयका विचक्षण ही नहीं है। यह आत्मा स्वयं ही साध्यरूप कायको सिद्ध किये हुए शुद्ध हो जाता है, वही ठीक अवाधया इस आत्माका असल स्वरूप है। तबको कहनवाला जो शुद्ध नय मो अग्य अवाधयाको नहीं कह सकता। इस कारण निश्चय अवाधयाक कारणरूप जो ध्यान वह सर्व उपबहार और भेदरूप परम है दूसरे उपबहार नयहीका विषय है।

इन्द्राज्ञाका दृष्टात कहनेका प्रयोजन यह है कि जैसे इन्द्रा ज्ञातक खेडका समझना कठिन है उस ही जिनवाणीक भेदोंका जानना दुगम है। फिर भी कहते हैं—ओ यह परमात्मातरक सम्पन्नानका भंडन अर्थात् आभूषण है तथा बहुत खोरमे समस्त विचक्षणोंके समूहोंसे मुक्त है उस तत्त्वमें मठक नय सम्यक् भी कोई भी विचक्षणरूप प्रपंच नहीं है तो फिर कहिये तब तत्त्वक स्वरूपमें ध्यानावली कैसे उदय हो सकती है? अर्थात् ध्यानादि धर्म साधक अवाधामें ही अत एव उपबहार मग है। शुद्ध निश्चय नयसे ये सब विचक्षण नहीं हैं।

आगे कहते हैं कि अत्यन्त निश्चय मध्य जीवके पूर्व अवाधामें कौनसे परिणाम हात हैं तब पश्चात् कौनसे पुणिम होते हैं—

मिच्छत्तपद्दुद्रिमावा, पुञ्च जीवेण भाविया सुद्धं ।

सम्मत्तपद्दुद्रिमावा, अभाविया होति जीवेण ॥ ९० ॥

शामान्यार्थ—पूर्वमें जीवने अनादिकादसे मिश्रतरक आदि भावोंको भाषा है। तथा सम्यक्त आदि भावोंको अनादिकादसे कभी नहीं भाषा है।



विनोपार्थ—मिथ्यात्व, अज्ञान, कृपाय, योगपरिणाम ऐसे चार सामा यस्वस बंधक कारण भाव तथा इनके तेरह भेद (१३) गुणस्थान रूप हैं। जैसा कहा है—मिथ्यादिद्विगुणद्वयादि सधो गिरिष चरिमत। अथात् मिथ्यादिष्टि गुणाधानोंमें चारोंको अज्ञान नाम, चतुर्थ गुणस्थानमें अज्ञान आदि तीनोंको, मिश्रगुणस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्व, तथा अज्ञानात् सीताको, देशद्विरतसे ले दसवें सूक्तमें सांपराय गुणस्थान तक कृपाय और योग होको तथा ११ वें उपशांत मोहस १३ वें अयोगकेशदि तक मात्र योग हीको बंधक कारण कहा गया है।

अत्यन्त निवृत्त भव्य जीवने पूर्व अवस्थामें निरंजन स्वरूप अपन परमात्म तत्त्वक ध्यानको पाकर मिथ्यात्व आदि बंधके कारण भावोंको अनादि काळसे भाया है अथात् निवृत्तरूपके ज्ञानसे रहित बहिःशरीर मिथ्यादृष्टी जीवने परम नैऋत्य चरित्र अर्थात् निश्चल स्वरूपमें स्थितिरूप स्वरूपाचरणको न पाकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान चरित्ररूपी मोक्षके कारण भावोंकी भावना नहीं की है। मिथ्यादर्शनसे विपरीत होकर सम्यग्दृष्टी अर्थात् निवृत्त भव्यजीव गुणममूहसे पूण रह सम्यग्ज्ञानकी ही भावना करता है। सो कैसे करता है इसके लिये भी गुणमद्रूपामेन कहा है कि इस ससारके चक्रमें मैं जन भावनाओंकी भावना करता हूँ जिनको मैंने पहले नहीं भाया है। जो इन भावनाओंको भाते हैं उनके लिये य भावनाएं ससारका अभाव करनेवाली हैं।

टीकाकार कहते हैं—इस संसाररूपी समुद्रमें डूबे हुए जीवने जो कोई भी निवृत्ति अथात् मोक्षका कारण भाव है उसकी कभी भी नहीं भाया है यह बड़े बड़े बात है चाहे इसने भवभक्तमें उच्च तरफको बचन मात्र सुना व कहा है यह मोक्षका कारणस्व भाव सर्वदा एक आत्मज्ञान ही है।

आगे कहते हैं कि परम सुप्रभु जोहको सम्पद्दर्शन ज्ञान चारित्रिके बर्चया शोकार करने और मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्रिके बिडकुळ त्याग करनेहीसे निश्चय प्रतिक्रमणका आभ होना है —

मि-ठाटमणणाण,-चरित्त चद्रुण निरपसेमेण ।

सम्मत्तणाणवरण, जो भावत् सो पटिक्रमण ॥ ९१ ॥

व्याख्य — जो कोई मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्रिको बर्चया त्यागकर सम्पद्दर्शन ज्ञान चारित्रिको भावना करता है वही प्रति क्रमणरूप होता है ।

विशेष — भगवान् अहुरारमेश्वर कथित जो धर्मका चरमे मल्ट मागाभावका भद्धान करना सो मिथ्यादर्शन है । वसा ही धर्मका बस्तुओंमें अर्थात् पदार्थोंमें सप्त पदार्थको बुद्धि करना सो मिथ्याज्ञान व वसही मागाभावमें धर्मका आचरण करना सो मिथ्या चारित्र है । इन तीनोंको बिडकुळ त्याग देवे अथवा अपन आत्मतरबका भद्धान ज्ञान और आचरणरूप जो निश्चय रहनत्रय सबक बिगोको जो मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र इनको मो त्याग कर देवें

तीनों काष्ठोंमें आचरण रहित विश्व आनन्दमई एकरूप है बक्ष्य जितका ऐसा निरजन निज परम परिणामिक मावमई ऐसा जो कारण परमात्मा तम स्वरूप हा मेरा आरमा है ऐसे अपन अस्मोक तरबका भद्धान ज्ञान और आचरण वही निश्चय रहनत्रय है । जो मुनि भो भगवान् परमात्माक सुखक चारनेशाले हैं और परम पुरुष थ जो माक्षका वद्यम वसमें डबडीत हैं और गुद्ध रहनमई अरमाकी भावना काते हैं वे परम तपोवन मुनि हो निश्चय प्रतिक्रमणरूप है ऐसा आगममें कथन है ।

टोकाका

परमाक चरके

हवा है वे सर्व विभावों को तथा व्यवहार रसनयके मार्गों को त्यागकर गुह्यमन्त्रमें सिद्ध करने एक ज्ञान स्वरूपहीका महान ज्ञान और आचरण करते हैं ।

जगत्त्रिय उक्तमाथ प्रतिक्रमणका स्वरूप कहने हैं —

उत्तमशुद्ध आटा, तस्मिन्नि ठिदा इणदि मुणिवरा कम्म ।

तदादु ज्ञापमेव हि, उत्तमशुद्धस्म पडिक्कमण ॥ ९२ ॥

सामांथ — आरमा ही उत्तमार्थ है । इसीमें स्थित रहकर मुनि महागज कर्माँको नाश करते हैं इसलिये आरमा ही उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है ।

विशेषार्थ—जिनेश्वरका यह मार्ग है कि मुनियोंको सल्लेखना अर्थात् समाधि मरणके समय ४२, विगाडाए आचार्यानि विषा दुष्ठा ओ उत्तमार्थ प्रतिक्रमण स्वरूप होकरके देहका त्याग करना को व्यवहार करके सल्लेखना धर्म है ।

निश्चयकारके सल्लेखनाको कहते हैं कि, नव पश्याँवे उत्तम पर्ये निश्चयकारके आरमा ही है इस आरमाके म'अज्ञानमई कारण समबन्ध स्वरूपमें जो तपोधन तिष्ठते हैं वे निश्चय सल्लेखनाक प्राप्ति हैं वे मुनि निश्चय मरणरूपसे भयभीत होते हैं इसलिये जीवको छ म मरण न प्राप्त हो ऐसा विचार कर वे मुनि कर्माँका नाश करते हैं

इसकारण आध्यात्मिक आशाकी अपेक्षा जो निश्चय परम शुद्धग्यान ध्यानभ्येय विवरणसे रहित सर्वथा प्रकार आरमाके म स्वरूप सम्पूर्ण इन्द्रियोंके अंगो,पर हैं वही ग्यान उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है ऐसा जानना चाहिये । प्रयोजन यह है कि निश्चय उत्तमार्थ प्रतिक्रमण अपने आरमाहीके आशय है । जो निश्चय समबन्धन तथा निश्चय शुद्धग्यानमई है । इसलिये अमृतका कुम्भ

है अर्थात् अमृत रससे भरा सुन्दर कदम है। तथा व्यवहार  
समयमें प्रतिक्रमण, व्यवहार अमभ्यानमई है इसलिये विपक्ष  
स्वरूप है अर्थात् महारसे समान है।

ऐसाही श्री समयधारश्रीमें कहा है कि प्रतिक्रमण, प्रतिघरण  
परिहार, माधना, निवृत्त, निदा गरी, शुद्धि ये आठ  
प्रकार विपक्षम है। क्योंकि इन क्रियओंमें कठारनेकी शुद्धि  
सम्भवे है इप कारण ये सर्व यथक कारण हैं। तथा ऐसाही श्री  
समयधार श्रीकी व्यवहारमें कहा है-यहा वन जं बहो ओ निश्चय  
प्रतिक्रमण न कर सकनेके कारण व्यवहार प्रतिक्रमणको विपक्ष  
जानकर उसे भी छोड़ देना है वरका आशय कहते हैं कि शिष्य  
आरमाके निमैत्र भावमें प्रतिक्रमण अर्थात् व्यवहार प्रतिक्रमणकी  
ही विपक्षरूप है ऐसा कहा है बहा प्रतिक्रमणको विपक्षरूप ही न  
करना अर्थात् व्यवहार निश्चय शीर्षका न करना अमृतरूप कैसे  
ही सफ़्त है।

आशय अश्रय करके कहते हैं कि यह शीघ्र नीचे नीचे  
गिरता हुआ क्यों प्रमादी हो रहा है क्यों नहीं यह प्रमादीको  
रफाकर ऊपर ऊपर बढ़ता है। आशय यह है कि जो व्यवहार  
प्रतिक्रमणमें प्रमादी था उसको उपद्रव किया है कि व्यवहार प्रति  
क्रमण तो करो परन्तु इसको करते करते निश्चय प्रतिक्रमणकी  
प्राप्ति करे क्योंकि निश्चय अमृतरूप है और व्यवहार विपक्षरूप है  
तथापि प्रतिक्रमण न करनेकी अपेक्षा शरीरेय है इसलिये ऊपर  
ऊपर बढ़नेकलिये ऐसा उपद्रव है जो व्यवहार प्रतिक्रमण कर रहा  
है उसको छुड़ानके लिये नहीं।

टीकाकार कहते हैं—आरमाके ध्यानके विनाय अथ समस्त  
ध्यान नयानक सकारका कारण है। ध्यान ध्येय आदिवा विपक्ष  
रूप जो उप है या कदन मात्र ही सुन्दर है परा समस्तकर  
शुद्धिमान पृथक् स्वाम विषय परमान रूतों अमृतसं भरे

हृदये हृत्पश्चात्पश्चात् एक परमत्माहीका अनुभव करते हैं ।  
आगे बड़े हैं कि सर्व पदार्थोंके भीतर एक ध्यान ही उपदेश्य है अथवा सर्वव्यापक है—

ज्ञानगिरीणो साह, परिचाग वृणइ सन्वदोसाण ।

तम्हाद् ज्ञानमेव हि, सन्वदिचारस्म पडिकमण ॥ ९३ ॥

सामान्यार्थ—जो ध्यानम लक्ष्मीन साधु है वह सब दोषोंका त्याग कर देता है इसलिये ध्यान ही सर्व अतिचारोंका प्रतिक्रमण करनेवाला है ।

विशेषार्थ—कोई परम जिते श्री य गीश्वर साधु अत्यंत निकट है मध्य जीव है जो आध्यात्मिक भाषाकी अपेक्षा अपने आत्माहीके अश्रयमें स्थितीभूत ऐसा जो विश्व धर्मध्यान सममें ऐसा हीन है कि भोः गदितपनसे ठहरा हुआ है अथवा सर्व क्रियाकाहके आह्वानपरसंभूत हुआ है व्यवहार नये आधीन ध्यान ध्येयका भेदरूप विकल्प उनमें गहन, सम्पूर्ण हृदयोंके अगोचर, परम तब जो शुद्ध आत्मनस्व तबके विषयभेदकी वरपनाकी अपेक्षा न करके लक्ष्मीन हीनरूप जो निश्चय शुद्धध्यान - तबमें जो साधु ठहरता है वह सम्पूर्णतः अंतरंग हीन होता हुआ शुभ तथा अशुभ समस्त मोह राग द्वेषोंको त्याग कर देता है । इसलिये अपने आत्मस्वरूपके आश्रित जो निश्चय धर्मध्यान और निश्चय शुद्धध्यान ये दोही ध्यान सर्व अतिचारोंके लिये प्रतिक्रमणरूप हैं ।

टाकाकार कहते हैं—यह शुद्धध्यानरूपी दीपक जिसके बिन्दु रूपी धर्ममें प्रकाशता है वही योगी है उसीको ही अपने आप शुद्धात्माका प्रत्यक्ष हो जाता है ।

आगे व्यवहार प्रतिक्रमणका फल कहते हैं—

पडिकमणणामधेये, सुत्ते जह वणिग्द पडिकमण ।

तह पादा जो भावइ, तस्स तदा होदि पडिकमण ॥ ९४ ॥

सामा-यार्थ—प्रतिक्रमण नाम सूत्रमें केसा प्रतिक्रमणका स्वरूप कहा है उसको वैसा ही जानकर जो पसंदी भावना करता है तब ही उसके प्रतिक्रमण होता है ।

विशुद्धार्थ—सर्व आगमके ज्ञाता, मात और ज्ञानारके विचार करनेमें परम चतुर्गर्ह आदि सुगुणके धारी नियामक आचारार्थाने प्रतिक्रमणसूत्र नाम द्रष्टव्यभूतमें विनाशपूर्वक केसा प्रतिक्रमणका स्वरूप कहा है उसको वैसा ही जानकर जिने द्रष्टी नोतिरुत आश्रय को नहीं रह्यपन करता हुआ सुन्दर आश्रयको मूर्तिस्वरूप जो मुनि को सफल मयमको भावना करता है सभी महासुनिके व्यवहार प्रतिक्रमण होता है । केसा है मुनि, बाह्य प्रपञ्च जाहसे उराम है, परो-द्रव्य विषयोक्त विनाशसे रहित शरीरमात्र परिमदका धारी है तथा अपने परम गुरुके चार्णिके शरणा में आसक्तचित्त अथात् बचकोन है ।

टीकाकार कहते हैं कि निर्दोषकाचार्यके द्वारा सुचितस्वरूप आगमके अनुवार सचनोंका सुनकर जिस सुनका चित्त सब चारित्रको धारण करता है उस समयधारी मुनिको मेरा नामकार होतू ।

जिस सुसुसु मुनिके महा व्यवहार और निश्चय प्रतिक्रमण विद्यमान है तथा जिसके अतिशय पूर्वक रचमात्र भी अप्रतिक्रमण नहीं है ऐसे सर्व सयमरूपी आसुपयके धारी भी बीरनंद नाम मुनिको मैं निश्चय नामकर करता हू ।

इस प्रकार सुकविरूपी कर्मलोक द्विये मूर्त्तिके समान परो-द्रव्य विषयके विनाश रहित शरीरमात्र परिमदके धारी भीपद्मप्रमृमकधारी देवसे रचित भी नियमकार व्यवसाक गारथे वृत्ति नाम टीकामें निश्चय प्रतिक्रमण नामका पंचम सुतसर्वथ पूण मया ॥

## ६-निश्चयप्रत्याख्यानाधिकार

अगो ब्रह्म रथागरुपी जो मुनि दीक्षामई शोभनीक पठाका चमके द्विये भागी दृष्टके समान तथा चर्च कसकी निजराका कारण, मोक्ष महदको सीदीरूप मुक्तिरूपो स्त्रोके मुखको प्रथम दिखवान आको ऐसी जो समी वच समान इत्यादि विशेषणों सहित जो प्रत्याख्यान वचके अधिकारको कहते हैं ।

प्रथम ही निश्चयनसे प्रत्याख्यानका स्वरूप कहते हैं—

मोक्षोपमयलजप, - मणागयसुहमसुहभरण किंवा ।

अप्याण जो क्षापदि, पञ्चस्त्राण हवे तस्त ॥ ९५ ॥

आमा यार्थ—जो सब बचन जाडको रथागकर आगामो सर्व शुभ अशुभ भावोंको ब कर्मको दूर करके आत्माहीका ध्यान करता है उसके ही निश्चय प्रत्याख्यान होता है ।

विशेष थ—व्यवहारसे मुनिगज प्रति दिन भोजन करके अपनी शक्तिके अनुसार आगामीके द्विष्ट योग्य काष्ठ पर्यंत इष्ट अन्न, पान खाद्य और छेद्य ऐसे चार प्रकार भोजनको ठीकिया रवाग करते हैं ।

यहा टीकाकारने ४ प्रकार आहारके ये नाम दिये हैं अथ प्रथमे खाद्य, खाद्य, छेद्य और पेय हैं सो विरोध नहीं है । इस रथागका व्यवहार प्रत्याख्यान कहते हैं । निश्चयनकरके सब बचन रचनाका जो जाड वचको रथाग करके जो शुद्ध ज्ञानकी भावना और सेवा है उसकी कृपासे नवीन शुभ तथा अशुभ सुखदुःख ज्ञानावरणादि और भावकर्म राग द्वेषादि इनका जो सब रना अथात् रोकना सो प्रत्याख्यान है । जो कोई वचन अथवा आत्माके भीतर परिणामको करके परम कलाके धारक

अपूव आत्माका ध्यान करता है उसीके नित्य प्रत्याख्यान होता है ।

ऐसा ही श्री समयसारजीम कहा है कि आप सिखाय जो सब ही पदार्थ हैं वे पर (अभ्य) हैं ऐसा जानकर जो प्रत्याख्यान करे अर्थात् त्यागते हैं, इस कारणम ऐसा जो प्रत्याख्यान रूप ज्ञान सो ही नियमस्य प्रत्याख्यान है । तथा श्री समयसारजीकी व्यवस्थामें कहा है कि आगामी समस्त कर्मोंको त्यागकर तथा मोहको निवारण करके मैं नित्य ही चैतन्य स्वरूप और निःकर्म ऐस आत्मस्वरूपके भीतर अपने आत्मस्वरूपके द्वारा वर्तन करता हूँ ।

टीकाकार कहते हैं—सम्यग्ज्ञानकी निमित्तरूप ऐसा सम्यग्दृष्टि कीस संपूर्ण द्रव्य कर्म, भाव कर्म, मोहमत्सम्बन्धी परिणामोंको त्याग देता है इसलिये सभीके नित्य प्रत्याख्यान होता है तथा उसीके ही अतिशयकरके कर्मोंको इनेबादा सम्यक्चारिण होता है । इसलिये मैं अपने भव-भवक क्लेशोंको नाश करनेके लिये नित्य सब भवपरमाको च देना करता हूँ ।

आगे अनन्त चतुष्टयमें अपने ही आत्मके ध्यान करनेका उपदेश संक्षेपमें कहे हैं—

केवलज्ञानसहायो, त्रेलदसणमहाव सुदुर्मर्षयो ।

केवलमत्तिसहायो, सोऽह इति चिंतण णाणी ॥ ९६ ॥

जामा याथ—जो कोई केवलज्ञान प्रभाव है, केवल दर्शन सम्भाव है, परमसुदुर्मर्ष है तथा केवलशक्ति स्वभाव है वही मैं हूँ ऐसा ज्ञानोको विचार करना चाहिये ।

विशेषाथ—यश आचार्य उच्च परम तत्त्वज्ञानी नाथको शिक्षा प्रदान करते हैं जो समस्त बाह्य प्रपञ्ची बाधनासे रहित सर्वथा मकार अपने अन्तरगमें लक्ष्मण है । आदि अन्त रहित अमूर्तक-



अतीन्द्रिय स्वभावपर येसे शुद्ध मद्मून व्यवहारनकरके शुद्ध स्वप्न स्वप्न गद्य वर्णाका भारी पुस्तक परणशुद्ध समान केवदज्ञान, कवदज्ञान, वेदसुख और कवदशाक्त स हत जो परमारमा हे सो हो भ हू पयो भावना अपन सम्मज्ञानके द्वारा करभीयोग्य हे । अर्थात् 'मध्यम में सद्मज्ञान स्वरूप हू, मैं सद्मज्ञान स्वरूप हू, मैं उद्मज्ञान स्वरूप हू, मैं सद्मज्ञान स्वरूप हू, मैं सद्मज्ञान स्वरूप हू । इस प्रकार भावना करना चाहिये ।

येका ही 'भी एकरवसतिमे' कहा हे ।क वह परमव्योति केवदज्ञान दर्शन सुखस्वभावमई हे । उस व्योतिके देखते हुये ज्ञानस क्या नहीं जाना गया, दृष्टि क्या नहीं देखा गया, धुनिष क्या नहीं सुना गया । अर्थात् वह व्योति आत्माकी स्वयं ज्ञानादि स्वरूप हे उसको जानत हुये सब ज्ञान किया जाण है ।

टोकाकार कहते हैं वह परमारमा जयवत होहु जिसकी मूर्ति कवद ज्ञानरूप हे जो सपुणरूपसे निर्मैक दर्शनको धारनेकाटा हे जो अविनशी आनदरूप हे तथा जो स्वामाधिक परम चत य शक्तिस्वरूप हे, अविनाशी हे और मुनीश्वरीक चिन्तरूपी कवद सरोवरक द्विय राजदस हे ।

आगे परममावनाके स मुख जो ज्ञानो पसको फिर शिक्षा कहते हे --

नियमभारं णवि सु चइ, परमाय णेर गेण्हए वेइ ।

जाणदि यम्मदि मब्ब, सोह इदि चित्तये णाणी ॥ ९७ ॥

सामा माय--जो अपने मायको कभी नहीं छोड़ता हे, तथा किसा भी परमायको कभा प्रश्न नहीं करता हे परन्तु सबको हे और देखता हे सोही मैं हू येका ज्ञानी चित्तजन करे ।

विशेषार्थ--जो कोई कारण परमारमा सम्पूर्ण पापरूपी बीर बैदि



धारण करता है। तथा चेत य यान चित्तमणो जो मेरा स्वरूप  
उल्लोमे मेरा अतः कारण रात्रिदिन हीन है। मेरे मनमें परद्रव्यको  
प्रदूषण करनेसे जो विप्रद (बिचार) पैदा होता है उसको त्याग  
दिया है। मुझे विशुद्ध पूण स्वाभाविक ज्ञान स्वरूप सुखकी ही  
मासिका प्रयोजन है। मुझे अथ पदायके भोगनेकी आवश्यकता  
नहीं है।

चार प्रकारके देवोंकी मूर्ति जब उनके कठमें धारणवाले  
अमृतम ही हो जाती है तब अथ प्राप्त रूप बाह्य करनेकी  
उहे कोई जरूरत नहीं ही। इच्छा कोई आश्रय नहीं  
मानना चाहिये। तथा जो कोई पुण्यात्मा जीव इष्ट पुण्यमई कर्म  
तथा भावकी भी त्यागकर निद्रा व उपद्रव रहित, उपमारहित निरप  
अपन आत्मास ही उत्पन्न तथा जिनकी उत्पत्तिमें अन्य किसी द्रव्य  
थ विभागकी गम्य नहीं ऐसा जो आनंद अमृतमई निर्मल जड  
वमको पीता है वही प्रगतपने उसी समय अद्वितीय, अशुद्ध  
व्यत यमात्र चि उमणे ररनको प्राप्त करता है।

कौन ऐसा विद्वान है जो कहेगा कि पर द्रव्य मेरा ही है ?  
कहा है विद्वान, जो अपने आत्माकी मईमाको जानता है फेसो  
है मईमा, जो श्री गुरुके चरणोंकी भक्ति और सेवासे प्रगत  
हुई है। अथात् ज्ञाता कभी परको अपना नहीं कह सकता।

आगे मध्य जीवको शिक्षा करते हैं कि वंध रहित आत्माकी  
ही भावना करना चाहिये।

पपडिद्विद्विअणुभाग,—पदेसयधेहि नजिदो अप्या ।

सोह इति चित्तोजो, तत्येय य कृणदि यिरमाव ॥९८॥

सामान्यार्थ — यह आत्मा निश्चयसे प्रकृति, विशिष्टि, अनुमात्र  
और प्रदेश वंध ऐसे चार प्रकार बंधोंसे रहित है आ देखा है वही

मैं हू इस तरह चिन्तन करता हुआ ज्ञानो वषामें ही अपने  
द्विध भावको करता ।

विशेषार्थ—शुभ तथा अशुभ मन, बचन और कायको क्रिया-  
ओंसे प्रकृति और पदार्थ बंध होते हैं । जारों क्रोधादि व्यापकोंसे  
विचिंत और अनुभाव बंध जाने हैं ।

इन जारों ही प्रकारके बंधोंसे रहित अदा व्यापि रहित  
स्वरूप ही निश्चयकरके यह आत्मा है जो ही मैं हूँ, सम्प्रज्ञानीको  
निरंतर ऐसी ही भावना करनी चाहिये ।

टीकाकार कहते हैं कि मोक्षके इच्छुक पुण्य सद्ब्र परमानंद  
रूप धैर्य पण्ड्य रूपमा रहित भक्तिव्यक्त मूढमूत्र येसे एक अपने  
स्वभावकी ही प्रज्ञा करते हैं, इसलिये हे मित्र ! मेरे बचनोंका  
सा सुनकर तू अतिशयकरके स्वयं इस अपने धैर्यपटे पराकार  
मात्र स्वभावमें श्रेष्ठ अपनी बुद्धि कर ।

आगे समस्त विभाव भावोंको त्याग करनेकी विधि कहते हैं—

ममत्ति परिव्रजामि, गिम्ममत्तिशुद्धिदो ।

आलक्षण च मे आदा, अवमेमं च चोसर ॥ ९९ ॥

सामा वार्थ—मैं ममताभावको त्यागता हूँ तथा आत्माके  
निर्ममत्व भावमें ही ठहरता हूँ । निश्चयकरके मुझको आत्माका  
ही आत्मन है । शेष सबको मैं त्यागता हूँ ।

विशेषार्थ—सु दर धो, सु-ण आदि समस्त परद्र-धोंके गुण  
और पर्याशोषमें मैं अपने मम म रको हटाता हूँ, परमप्रेक्षा  
सम्रजसे चिह्नित जो मेरे आत्माका ममत्व रहित परिणाम सयोग  
ही ठहरकर तथा अपने आत्माका ही आत्मन लेकर सासारिक  
समोर्गोंसे व्यपन्न जो सुखदुःख आदि अनेक विभाव परिणाम  
उनको त्यागता हूँ ।

प्रेमा ही श्री अमृतचक्र मूरीने कहा है—कि सर्व पापपुण्य कार्योंको इटाकर निश्चयसे निष्कर्मरूप आत्मामें आचरण करते हुए मुनिगण अशरणरूप नहीं हो जाते हैं अर्थात् महाय रहित नहीं होते जब समय अपने ज्ञानरूप आत्मामें अपने आत्म-ज्ञानका आधना यही उनको शरणरूप है । वे मुनि स्वयं ही अपने आत्मोक्त तरबमें होन रहकर परम अमृतका अनुभव करते हैं ।

प्रेमा ही टीकाकार कहते हैं—मैं नियमसे सम्पूर्ण मन वचन काय और इन्द्रियोंकी इच्छाको, तथा संसार समुद्रमें चरपत्र मोह रूप जलजंतुओंके समूहोंको तथा सुषर्ण और झीकी बाँझको इत्यादि सबको अपनी अत्यंत तीव्र विशुद्ध सर्व शक्तिसे त्याग देता हूँ । भाषा—आत्मभ्यानमें हीन होते ही सर्व विभाव भावोंका प्रलय हो जाता है ।

आगे कहते हैं कि सब स्थानमें एक आत्मा ही उपादेय है—

आदा सु मञ्जु णाणे, आदा मे दसणे चरित्ते य ।

आदा पचक्खणाणे, आदा मे सवर जोगे ॥ १०० ॥

आमायाय—निश्चयकरके मेरे ज्ञानमें आत्मा है, मेरे दर्शनमें आत्मा है, मेरे चरित्रमें आत्मा है, प्रत्याख्यान अर्थात् त्यागमें आत्मा है तथा मेरे सबर और उपयोगमें आत्मा है ।

विशेषाथ—यह आत्मा निश्चयकरके आदि अंत रहित अमूर्तक अतींद्रिय स्वभावरूप शुद्ध स्वाभाविक सुखमई है । यही आत्मा स्वाभावसे शुद्ध प्रेमी जो शुद्ध ज्ञान चेतना वधमें परिणमन करनेवाला जो मैं सो मेरे सम्यग्ज्ञानमें शोभायमान है । यही आत्मा परम पूजनीक पंचम गति जो मोक्ष वलके लाभ करनेका साधनरूप पाचवा पारिणामिक भाव वधकी भावनामें रमण

करनेवाला जो मैं सो मेरे स्वाभाविक अन्वय ज्ञानमें भी प्रकाशमान है । आकाश निर्वाण प्राप्ति करनेका उपाय जो निज आत्मस्वरूपमें अविवक्ष्य होकर स्थिति होना है उसरूप जो स्वाभाविक परम चारित्र्य है उसमें परिणमन करनेवाला जो मैं सो मेरे सहज चारित्र्यमें भी बही आत्मा है ।

बह परमात्मा जो सदा निकट हो है जो सदा अपने पास ही विराजमान है वही आत्मा निश्चय प्रत्याख्यानमें भी है । फेला है निश्चय प्रत्याख्यान, जहा शुभ अशुभ, पुण्य पाप, सुख दुःख इन लोका सम्पूर्णपने त्याग है ।

मैं भेद विज्ञानमें डीन हूँ पर द्रव्योंसे परागमुख हूँ, पंचेन्द्रियोंका जो फेलाव उससे रहित शरीर मात्र परिग्रहका धारी हूँ, मैं स्वाभाविक वैराग्यरूपो महत्क शिखरका शिखामणि हूँ, स्वरूपमें गुण हूँ, पापरूपी बनीके जड़ानेकलिये अप्रति समान हूँ, मेरे शुभ तथा अशुभके सुखकी अवस्थामें बही आत्मा है, मैं अशुभोपयोगसे परागमुख हूँ, मैं शुभोपयोगसे भी वशाहीनतारूप हूँ; आकाश शुद्धोपयोगके स मुख हूँ । परमागमकी मकरद (सुगण) धर्ममें डीन ऐसा मैं जो पद्मम सो मेरे शुद्धोपयोगमें भी वही परमात्मा अपने सनातन सदाके प्राचीन स्वभावरूपसे विराजमान है ।

ऐसा ही एकरव सततमें कहा है—बह आत्मा ही एक परम ज्ञान है वही एक पवित्र सम्यक् दशा है, वही एक सम्यक् चारित्र्यरूप होता है, वही एक निर्मल तप है । वही एक नमस्कार करने योग्य है । वही एक मगल (सुखदाता) है, वही एक सर्वमें उत्तम पदार्थ है, स त साधु जनोंके लिये बह आत्मा ही एक शरणरूप है, बह आत्मा ही एक आचाररूप है, वही आश्चर्यक क्रियारूप है, स्वाध्यायरूप भी वही एक आत्मा है ऐसे ही आत्म उच्चरूपमें शोभीजन स्थिति करने हैं ।

येसा ही लीकाकार कहते हैं । मेरे स्वामाविक सम्यग्दर्शनमें, मेरे शुद्ध अस्वप्नज्ञान और चारित्र्यमें तथा मेरे शुभ अशुभ कर्मोंके त्यागके अवसरमें यही आत्मा मेरी सधर अक्षय्या तथा मेरे शुद्ध उपयोगमें है । इस जगत्में मोक्ष प्राप्तिके लिये अन्य कोई पदार्थ येसा नहीं है ।

यही आत्मा कहीं तो निर्मलरूपसे शोभता है ? कहीं शुद्धा-शुद्ध मिम भावरूप शोभता है, कहीं विदकुष्ठ अशुद्ध ही भगता है, अज्ञानीके लिये यही आत्मा परम गहन है, कठिनतासे प्राप्तियोग्य है ।

यही आत्मा निज आत्मिक ज्ञानरूपी दीपकसे पापोंको नाश करनेवाला है, यही आत्मा हृदयरूपा कमलके महलमें निश्चररूपसे विराजमान है ।

आगे कहे हें कि सघार अवस्थामें अथवा मुक्त अवस्थामें यह जीव सदाय रहित है—

एगो य मग्दि जीवो, एगो य जीवदि सय ।

एगस्म जादि मग्ण, एगो सिद्धदि जीरयो ॥ १०१ ॥

सामा यार्थ—यह जीव अकेला ही मारा जाता है—एक्य अकेला ही ज मता है, अकेला ही मरता है तथा अकेला ही कर्मोंसे छूटकर सिद्ध होता है ।

त्रिषोबार्थ—नित्य मरणावस्थामें अर्थात् नित्य आयुनिपेकोके क्षयस्व मरणमें तथा एक पर्यायके छूनेरूप मरणमें किसी अवस्था अक्षय्य बिना व्यवहारकरके अकेला ही जीव मारा जाता है अर्थात् व्यवहार अशोच्यतादि भावोंसे रहित होता है—आदि और अवच्छिन्न, मूर्तीक तथा आत्माकी आदिसे विच्छेदन पेसी जो । व व्यसनपर्यायरूप अनुप्यदेहकी व नरकादि देहकी प्राप्तिमें

अति निकट अनुपचरित अणुदमूत्र व्यवहार नपकरके स्वयं यह जीव अकेला ही जन्मता है ।

सब व धुआँसे रक्षा किये जाने भर भी तथा महापराक्रम धारी होने पर भी बिना इच्छा व याचनाक स्वयं ही अकेले एक जीवका मरण हो जाता है । तथा परमगुरुके प्रसादसे जिसको अपने ही आरमाके शाश्वतसे रहनेवाला निश्चय श्रुतग्यान प्राप्त हो जाता है वह जीव उसके बलसे अपने आरमरवहूपको त्यागकर कमरूपी रजसे छूटकर शीघ्र ही स्वयं अकेला निबागको प्राप्त हो जाता है । ऐसा ही अन्य प्रायमें कहा है कि यह आरमा स्वयं ही कर्मोंको करता है स्वयं ही उन कर्मोंके फलको भोगता है । स्वयं ही समारमें घूमता है तथा स्वयं ही समारसे मुक्त होता है ।

ऐसा ही भी धीमदेव मंडितदेवने कहा है—यह जीव अकेला ही जन्म और मरणमें प्रवेश करता है तथा अकेला ही अपने किये कर्मोंके फलको भोगता है, दूसरा कोई भी सुख दुःखको बिचिमें चढाय नहीं करता है । अपनी आजीबिकाके किये ही नष्टको अपनी पटी मिछी है ।

माथार्थ—नष्ट स्वयं गेट करता है और स्वयं उनके फलको भोगता है । ऐसा ही टीकाकार कहते हैं—यह जीव अकेला ही प्रबल कर्मके तद्वयसे जन्म और मरणको प्राप्त होता है तथा अकेला ही तीव्र मोहके तद्वयसे, सब आरमिक सुखसे विमुक्त होता हुआ शुभ अशुभ कर्मके फलको सुख दुःख तथा दुःखको बारबार भोगता है । तथापि किसी भी उपायसे किसी गुणके निमित्तसे अपने एक आरमिक तत्वको पायकर यह जीव स्वयं उसीमें ही ठहरता है ।

आने

धीन अभ्यग्नानीका



एको मे मासदो अप्पा, णाणढमणलक्खणो ।

समा मे बाहिरा भाणा, सव्वे सजोगलक्खणा ॥ १०२ ॥

मामा अर्थ—निश्चय करके मेरा आत्मा एक अविनाशी, ज्ञान दशन ब्रह्मका धारी है। मेरे आत्मीक भावके विषय सब सब भाव मुझसे बाहर हैं तथा सब ही भाव संयोगबद्ध हैं अर्थात् पर द्रव्यके संयोगसे उत्पन्न हुए हैं।

विशेषार्थ—यह आत्मा द्रव्य कर्म और भाव कर्मके अभावके एक अकेला है। कैसे हैं ये कर्म, जो समस्त ससाररूपी नृ-बनके वृक्षोंकी वयारीम जल भरनेके बिये प्रण ब्रिहा (मीरी) सब समान हैं तथा इस सामारिक कलेवर जो नोकर्म उसके कारणसे हैं। अर्थात् इ ही कर्मोंके निमित्तसे नये कर्मका आस्रव और पत्र होता है। यही आत्मा सबे कियकाहुका आहम्बर और सबके बिये नाना प्रकारके कोलाहल वलसे दूरवर्ती ऐसी जो इन चेतना वसमई अतींद्रिय सुख उच्चको भोगनेवाला है तथा अविनाशी है, यही मेरे बिये उपादेय है।

यही तीनों कारणोंसे उपाधि रहित स्वभावको धारनेवाला है और आवरण रहित निर्मल ज्ञान और दर्शन ब्रह्मस पहचानने योग्य कारण परमात्मा है। तथा शुभ, अशुभ कर्मोंके संयोगसे उत्पन्न भए मेरे आत्माके निज स्वरूपसे भिन्न समस्त बाह्य और आन्वय तर परिषद हैं ऐसा मेरा निश्चय है।

भावार्थ—मैं शुद्ध आत्मा ही हू, मुझसे भिन्न सबे पर हैं। दोषाकार कहते हैं कि मेरा परम आत्म स्वभाव अविनाशी है यही एक स्वाभाविक परम चेतन बि तामणिरूप है, तिस्य शुद्ध है, मर्यादा बिना अपने दिव्य ज्ञान दशन करके पूर्ण है अन्य बहूय विकल्पोंसे तथा बाह्य पदार्थोंसे मुझको किंच कलकी भांति



अग्नेय अनुपचाररूप चारित्र्य स्वभावमें निश्चय अवधारारूप स्थिति मई है। इस प्रकार क्रमश तीन प्रकार सामायिकको स्वीकार करनेसे निराधार चारित्र्य प्राप्त होता है। कैसा है निराधार चारित्र्य, वहा स्वाभाविक परमतराममें अविचल स्थिति है तथा वही स्वाभाविक निश्चय चारित्र्य है क्योंकि वही निराधार तरण जो आरमोक्त तरण वक्षीमें उद्योतपना है।

ऐसा ही "श्री प्रवचनशास्त्री"की व्याख्यामें कहा है कि द्रव्यको अनुष्ठाण करनेवाला चारित्र्य होता है। अर्थात् आरमद्रव्यको सिद्ध करानावा चारित्र्य होता है तथा चारित्र्यके अनुष्ठाण प्राप्त होनेवाला आरमद्रव्य होता है। अपश्चात्से दोनिका ही यहाँ उद्भव है। जहाँ आरमद्रव्य है वही चारित्र्य है इत्यन्तिर चाहे द्रव्यकी प्रतीति करके चाहे व्याख्यानकी प्रतीति करके मोक्षका चाहनेवाला मोक्षमार्गमें आरोहण करता है अर्थात् मोक्षके उपायमें उन्नति करता है।

टीकाकार कहते हैं—जो मुनि यती आरमाके चैतन्यपनेकी भावनामें आसक्त बुद्धि हैं वे यती संसारमें तिरानेके स्वभावको धारनेवाला जो यम ( काळ ) उद्यको नाश करनेके कारण होते हैं अर्थात् मन्त्रमें भ्रमणका कारण जो कर्म उद्यको दग्ध कर देते हैं।

आगे कहते हैं जो अंतरगमें क्षीन हाकर मुनिगण व्याखरण करते हैं वहीके भावोंकी शुद्धता होती है—

सम्प मे सव्वमूदेसु, नेर मज्झं ण केण वि ।

आमाए वोमरित्ता ण, समाहि पडिवज्जए ॥ १०४ ॥

सामान्यार्थ—सर्व प्राणियोंसे मेरे समता है तथा ज्विहीके भी साथ मेरा वैशभाव नहीं है। निश्चयकरके आशाको त्याग करके सामाविभावको प्राप्त होता है।

विशेषार्थ—समस्त ईद्रियोंके व्यापारसे दृग्ग हुआ ऐसा जो

जो जो मेरे भेद बिज्ञान ज्ञानी अज्ञानी सब हो पाजियोंमें समता भाव है । मित्ररत्नेकी अथवा द्वेषरत्नेकी परिणतिके अभाव जानसे मेरा दिली भी मनुष्यके साथ बंधभाव नहीं है तथा स्वाभाविक वैशम्यमें परिणमन कानबाटा ऐसा जो मैं जो मेर एक भी आशा नहीं बिद्यमान है, इसलिये पाम अमता रखमें दूषा दूषा जो भाव एक भावको अर्थात् जो परम समानि (कल्पित समता) उसके भावको ही मैं प्राप्त होगा हूँ ।

एसा ही श्री योगीन्द्रदेवन कहा है—'सुखबाह्यपरमैविविषयव्यथ योपपन्न इत्यादि परां च समतां कुर्वन्वना रव । सप्तमचक्रमद्मग गृह्यात् तूर्णवृत्तानमत्रियुक्तमाहृतिपूर्वमद् ।'

भावार्थ—हे संवारी जीव ! तू वनमें बसता हुआ आहारपत्तो रसाहार और अपनी कुदकी जो कल्प समता उसके अरण करके शीघ्र ही अन्वयज्ञानरूपी अक्षको मरण कर और अज्ञानमशी करके अहित मोहरूपी कत्रुका मदन कर ।

टोकाहार कात है कि मैं इस समताकी अनिश्चयकरके भावना करता हूँ । वैसी है समता, जो मुक्तिरूपी ओमें अमरके समान विज्ञ है । अपुनभव जो मोक्ष इसके सुखकी अह है । छोटी भावनाके अंधकारमें समूहको नाश करनेके लिये अद्मकी कीर्ति अर्थात् निमल आदनीक समान है तथा सर्वमी मुनियोंको तरकाह हा मन्मथ अथात् माननाय है । इस समताकी जय हो । जो समता निरप बाणियोंको भी दुःख है तथा आत्मीक सुखको बढ़ानके लिये अकुलित पूर्ण अद्मकी प्रभाके समान है ।

परम यमी जो महाप्रती मुनि इनकी शीघ्ररूप श्री इनके

१ संस्कृत टोकामे इसक बदले "सुखस्यगानादि" इत्यादि लिखा है ।

मनको धारणी यह समता सत्तीके समान है । तथा मुनिबरोके गणके द्विये यह समता एक अतिशयमई अलंकार है । यही समता जगतके प्राणियोंके द्विये भी परम आमूषण है ।

आगे निश्चय प्रत्याख्यानके योग्य जो जोष तिसका स्वरूप कहते हैं—

गिरमायस्स टतिस्स, धूरम्म चवमायिणी ।

ससारभयभीदस्स, पचसखाण मुह द्वये ॥ १०५ ॥

सामा यार्थे—जो क्वाय रहित है, इन्द्रिय दमन करनेबादा है बोद्धा है, शमी है, तथा ससारसे भयभीत है सत्तीके ही सुखमई यह प्रत्याख्यान होता है ।

विशेषार्थे—जो मुनि अब क्वायरूपी कलंकको कीचसे विमुक्त (रहित) है, जिसने सब इन्द्रियोंके व्यापारोंको विजय कर लेनेसे परम दमपना प्राप्त किया है, तथा जिसने सम्पूर्ण परीषदरूपी महात्त बोद्धाओंको विजय करके अपने बोद्धापनेके गुणोंको उपजाया है । और जो मुनि निश्चयरूप जो परम उपकरण वसमें लीन हो शुद्धभाषका धारी है तथा जो ससारसे भयवान है सत्तीके ही व्यवहारनयस चार प्रकार आहारका त्यागरूप प्रत्याख्यान होता है ।

यह व्यवहार प्रत्याख्यान मिथ्यादृष्टि पृथक्के भो कहीं किलीके धारित्र मोक्षक उदयरूप जो द्रव्यकर्म और भाषकर्म सतके शयोपशमसे हो जाता है । अतएव जो निश्चयनय करके प्रत्याख्यान है वही चारुतिक प्रत्याख्यान है । यह प्रत्याख्यान अत्यंत निकट भव्य कीर्तिक ही होता है । जैसे सुबणको रखनेवाले पत्थरका सपादपना है अर्थात् मानपना है ऐसा व्यवसायाणका नहीं है क्योंकि वमसे सुबण प्राप्त नहीं हो सकता । इसद्विये ससार

शरीर और भोगोंसे जो वैराग्य है वही निश्चय प्रत्याख्यानका कारण है ।

आगामी कालमें जिनका होना संभव है ऐसे सर्व मोह राग द्वेषादि नानाप्रकारके विभावोंका त्यागना ही परमार्थ प्रत्याख्यान है । अथवा आगामी कालमें होनेवाले विविध जो अंतरगमें बचनरूपी विकल्प मनका त्याग करना सो शुद्ध निश्चय प्रत्याख्यान है ।

टीकाकार कहते हैं कि हे मुनिप्रधान ! यह प्रत्याख्यान जिनैःप्रथमसे प्रगट भया है, यही परम मुनियोंको प्रकृत्य निवाण सुखका करनेवाला है, यही स्वाभाविक समतादेवीके सत्य वर्णोंका आमूषण कर्णपूट है तथा अतिशयकरके यही दीक्षारूपी स्त्री चक्षुको अत्यंत यौवनवान करनेका कारण है । ऐसे प्रत्याख्यानकी निरंतर जय होहु ।

आगे निश्चय प्रत्याख्यान नामा अध्याय उसकी सकोचते हुए संक्षेपमें कहें—

एव भेदभ्यास, जो कुव्वड जीवरुम्मणो णिर्घ ।

पचकरवाण मक्कदि, धरिदे, सो सज्जो णियमा ॥ १०६ ॥

सामा यार्थ—ऊपर कहे प्रमाण जो कोई चीज और कमोंके भेदके अध्यासको निरत्य करता है वही सयमी नियमकरके प्रत्याख्यानको धारण कर सकता है ।

विशेषार्थ—जो कोई श्रीमान अर्ह त भगवानके मुखकमलसे प्रगट जो परमागम उससे अथको विचार करनमें समथ है तथा अपने भेदाभ्यासके बलसे अशुद्ध आत्माके साथ जो परम पुट्टकोंका अनादि बंधनका सम्बन्ध है उनके अर्थात् आत्मा और कमके भेदको कर देता है अर्थात् दोनोंको मिश्र अतुलन करता है

13-20-1927

तथा रम सयमो त्रिप्रप और क्यबहार पर्यसयानको स्वीकार करता है ।

हीकाकार कहते हैं—आगामी कासमें होनेवाला जो संघार उसके भावोंको दूर करनेवाला मुनियोंका स्वामी रात्रि दिन सम्पूर्ण सुखका निधान, निर्मल, आदमीक स्वरूपमें जो सोई तत्त्व उसके भावना अपने कर्म लुप्तानेके लिये करा करता है ।

भावार्थ—जैसे सिद्ध भगवान हैं वैसा ही मैं हू यह भावना परम सुखवाँ और स्वरूप समाधिको कारण है । जिनेन्द्र भगवानने इस तत्त्वको भयानक संघाररूपो समुद्रसे पार करनेके लिये एक शोभनीक जहाजके समान कहा है । निश्चयसे यही परम तत्त्व है इसलिये मोहको जीतकरके मैं तत्काल इसीकी ही भावना करता हू ।

यह परयाग्यान निरंतर वही होता है जो शुद्ध चारित्रको मूर्ति है तथा जिझने पर दुःखके मरमको नाश कर देनेसे स्वाभाविक परमानन्दमें चेत य शक्तके द्वारा बिकल्परूप बुद्धिको नष्ट कर दिया है । अब य आगममें ज्ञान अग्य योगियोंका सुखदान ( उपयोग ) इस और नहीं हो सकता । इसके बिना पुन पुन जीवोंका इस भयानक सन्तारमें धमण होता है । यह सिद्धात्मा महान ज्ञान वीमें परमानन्दरूप है, अगतमें प्रविद्ध है, अविनाशी स्वरूप है, अतिशयकरके अपने निज गुणमें ही जिसकी निश्चय वस्ती है । ऐसे ज्ञान दूरको छोड़कर यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि ये विद्वान लोग भी लीज कामके जालोंसे पीड़ित हो किस प्रकार पापस होते हुए जलबुद्धि होकर पाप कायकी इच्छा करत हैं ।

परयाग्यान करनेसे ही मुनियोंको शगटरूपसे अत्यंत शुद्ध आत्माचारित्र होता है । वैसा है सम्यक्चारित्ररूप आरमतरव,

जो पापरूपी वृक्षोंसे भरी जो ससाररूपी बनी वृक्षके लङ्घनेके लिये अग्निके समान है ।

हे मर्योंमें सिंह ! तू अपनी बुद्धिमें इसी तत्त्वको धारण कर, यही तत्त्व स्वाभाविक सुरक्षा देनेवाला और मुनियोंके रक्षभावका भूट है । सब सद्गुरु आत्मीक तत्त्वकी जय हो जो स्वाभाविक तत्त्व आत्मीक तत्त्वमें धारी है, बुद्धि जि होने उनके हृदयरूपी सरोवरमें उत्पन्न होता है तथा जो आत्माके अन्य तत्त्वमें स्थित है, तथापि अपने स्वाभाविक तेजसे मोहरूपी अन्वकारको चिखने नाश किया है तथा जो अपने आत्मीक तत्त्वके फेड़ावसे प्रकाशमान ज्ञानका प्रकाशमात्र है ।

मैं हृदयपूर्वक निरंतर सब स्वाभाविक तत्त्वकी ही नमन करता हूँ । कैसा है यह तत्त्व, जो खण्डन रहित है, सम्पूर्ण दायोंस दूर है, उत्कृष्ट है, ससार समुद्रमें मग्न प्रीति समुद्रोंको निकालनेके लिये जहाजके समान है तथा प्रबल कम धमुररूपी दावानल अग्नि वृक्षके शांत करनेके लिये अग्निके सदृश है ।

तथा मैं इस सद्गुरु आत्मीक तत्त्वको अतिशय करके नमस्कार करता हूँ । कैसा है यह सद्गुरु तत्त्व, जो जिन त्त्वके मुख्यतमल्लसे प्रगट है, अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित है, मुनीश्वरोंके मनरूपी घरके अन्दर अङ्कनेवाले सुन्दर रत्नदीपक समान है, मिथ्या दर्शनदिक्षोप रहित योगियोंस तथा नमस्कार योग्य है, तथा आनन्दका मन्दिर है, तथा सब परम तत्त्वकी उभन करते हैं । कैसा है यह परमतत्त्व, जिसने पापके समुद्रको नष्ट कर दिया है, पुण्यकर्मके समुद्रको भी धात किया है, कामद्व आदिवा संशर किया है, जो प्रबल ज्ञानका महल है, तत्त्व वेत्ताओंके समुद्रों करके म



भाषा—आत्मतर्कमें तल्लीनता हो सब प्रत्यक्षानका भूठ दे ।  
 इस प्रकार सुकृषियोंके कमर्चाको प्रकुल्लिठ करनेके लिये  
 स्युके समान पंचेन्द्रियोंके बिरतारये रदित शरीरमात्र परिमदके  
 धारी श्रीपद्मम अडचारीद्वारा विरचित श्रीनियमसार प्राकृत-  
 ग्रन्थकी सात्पयवृत्ति नाम संस्कृतटीकामें निश्चयप्रत्यक्षान नामका  
 छठा अतरर्कष पूण हुआ ।



## ७—निश्चयालोचनाधिकार

आगे निश्चय आलोचनाका स्वरूप बतत है—

शोकम्मरम्मरहिय, विहावगुणपजणहिं वदिरित्त ।

अप्पाण जे क्षायदि, ममणस्ताओपण होदि ॥ १०७ ॥

सामान्यतः—जो मुनि आत्माको नोचम, द्रव्यकर्म तथा विभावगुण और पदार्थोत्कर्षे रहित भ्याता है तभी ममणके आलोचना होती है।

विशेषतः—औदारिक, वैश्लेषिक, आहारक शरीर ही नोचम है। ज्ञानावरणी, वानावरणी अन्तराय, मादनी, वेदनी, आयु, नाम, और गेत्र ये आठकर्म द्रव्यकर्म हैं। कर्माधी तथापिही अहाँ अपेक्षा नहीं है ऐसी निःशेष सत्ता मात्रकी महण करनेवाली जो शुद्ध निश्चय द्रव्याधिक नव उसकी अपेक्षा यह आत्मा द्रव्यकर्म और नोचमोंसे रहित है।

मतिज्ञान, सुतज्ञान, अक्षयिज्ञान, मनःपदयज्ञान विभाव गुण है तथा नर, नारक तिर्यक, दुःख ये त्र्यङ्गन पदार्थ हैं तथा ये ही विभाव पदार्थ हैं। गुण सहभावी होते हैं और पदार्थ क्रम-क्रमसे बतनेवाली होती है। इन सम्पूर्ण विभाव गुण और पदार्थोंसे जो आत्मा रहित है तथा अपने स्वभाव गुणोंकरके सहित है ऐसे तीनों काठोंमें आवरण रहित कर्माजनसे दूर ऐसे परम शुद्ध आत्माको जो कोई परमभ्रमण (परम दिगम्बर यती) मनबचन कायकी गुणिमई समाधिसे अत्यन्त ध्यानके समयमें समस्त

उदयरूप जो यह सम्पूर्ण उदयमें प्राप्त कर्म है उसकी आलोचना करके अर्थात् उसका त्याग करके कमरहित चैतन्य स्वरूप आत्माके उदर में नित्य अपने आत्मारूपके द्वारा वर्तन करता है।

श्री उपासकाध्ययनमें ऐसा कहा है कि कुतः, कारित और अनुमोदनासे कपट रहित हो सर्व पापको त्यागकर मरण पर्यन्त सम्पूर्ण प्रकारसे महाभयोंको धारण करना योग्य है। ऐसा ही टोकाकार कहते हैं—में आलोचना करने योग्य जो घोर संधारके मूल समस्त पुण्य और पाप इनको निरय त्यागकर अपने आत्मा द्वारा उपाधिरूप गुणासे रहित शुद्धात्माका ही अवलम्बन अर्थात् आश्रय लेता है। पश्चात् अतिशय करके समस्त द्रव्यकर्मोंकी प्रकृतियोंको नष्ट करके स्वाभाविक विद्यारूप मोक्षरूपी बदनीको प्राप्त होईगा।

आगे आलोचनाका उद्देश्य और भेद कहते हैं—

आलोपणमालुंछण, वियहीकरणं च भावसुद्धी य ।

चूटनिर्हमिह परिऋयि, आलोपणलक्खण समए ॥१०८॥

सामा अर्थ—आगममें आलोचनाका उद्देश्य चार प्रकारका कहा गया है। अर्थात् आलोचन, आलु छन, अतिकृतिकरण तथा भावसुद्धि ॥ इन चारोंका स्वरूप आगे कहेंगे।

विशेषार्थ—अद्वैत भागवानके मुखारविन्दसे उदयको प्राप्त हुई जो अनस्यारामक दिव्य शक्ति, जो सम्पूर्ण समारिधत जनोंको प्रवणगोचर है परम सुन्दर और आनन्ददायक है उस दिव्य शक्तिके द्वारा ज्ञान रूप ज्ञानमें कुशल और मन प्रयय ज्ञानके भारी गौतम महर्षि उनके मुखकमलसे प्रगट जो चतुर बचन समूह उस कर रोचत रादात आदि समस्त शास्त्र उनके अर्घोटा सार जिघमं सर्व प्रकारसं गर्भित है ऐसी जो शुद्ध निश्चय परम आलोचना उसके चार भेद हैं।

आगेके सूत्रोंमें इनका वर्णन करते । टीकाकार कहते हैं कि मुक्तिरूपी लोके सगमका कारण जो वह आलोचना उसके भेदको जानकरके जो भव्य जीव अपने आत्मत्वभावमें स्थिति करता है उस भव्य जीवको अपने आत्मत्वभावमें स्थिति होनेके लिये मैं नमस्कार करता हू ।

आगे आलोचनाका स्वरूप कहते हुए परमसमताचारको कहते हैं—

लो पस्मट्टि अप्पाण, ममभावे सठवित्तु परिणाम ।

आलोयणमिट्ठि जाणह, परमजिणदस्म उवएस ॥ १०९ ॥

सामा याथ—जो समताभावमें अपने परिणामको ही करके अपने आत्माको देखता है उसीके ही आलोचना है । ये परम जिनेन्द्रका उपदेश है ।

चैतन्य रूपमई द्यता है वह थोड़ेसे ही भावमें मोक्षके निश्चय स्थानको प्राप्त होता है । जहा मुक्तिरूपी ब्रह्मीका बिछाव है और जो अत्यंत अतीन्द्रिय सुखरूप है, ऐसा ही महारमा इन्द्रो मुनियोंकी पत्नियों बिछावरो तथा मूर्तिगोचरियोंके द्वारा ब्रह्मीक है । उन ही गुणोंकी अपेक्षासे मैं तब चैत यरूपको नमन करता हूँ जो ब्रह्मीक और सर्व गुणोंका स्थान है ।

यह आत्मा परम यमी मुनियोंके चित्तरूपी कमलके मध्यमें मगट रहता है । ऐसा है आत्मा, जो ज्ञान च्योतिमई है, जिनके पापरूपी अ प्रकारके पुलका नाश कर दिया है, जो समीचीन है तथा जो आत्मा जीवोंके बंधन और मनसे अगोचर रहता है । आचार्य कहते हैं कि जो अत्यंत प्राचीन परम पुरुषपरमात्मा है उसमें बिबि निषध क्या होगा ? ऐसा कहनेसे परमयोगीश्वरने व्यवहार आलोचनाके प्रपञ्चकी हँसी की है ।

टीकाकार कहते हैं—तब पाप रहित चैतन्य स्वरूपकी जय हो । ऐसा वह महजतरण, जो अतिशय करके समस्त इंद्रियोंके समूहसे उत्पन्न जो कोलाहल ( विकल्परूप वद्वेग ) उनसे मुक्त है तब महज तत्त्वमें नयोंका तथा अवनयोंके समूहोंका प्रवेश नहीं है, निश्चय व्यवहारनय आदि विकल्पोंसे जो दूर हैं ऐस यह सत्त्व योगियोंकी गोचर है । यह आत्मीक तत्त्व मह ज्ञान-दमई और सकृष्ट है परन्तु आत्मज्ञानसे रहित अज्ञानी जीवोंके लिये वह तत्त्व महादुःख है ।

मध्य जीव परम गुणके प्रसादसे इस शुद्धात्माको आत्मो मुखरूपी अमृतके समुद्रमें मग्न समझ कर अविनाश सुखको प्राप्त करते हैं । इसलिये मैं भी अतिशय करके सब शरीरकी भावना करता हूँ । ऐसा वह तत्त्व, जो अपूर्व है सम्पूर्ण

मेरीके अभावसे वह कोई स्वाभाविक वस्तु है तथा सिद्धि स्थानके सुख करके शुद्ध है ।

मैं उस परमात्म तरबकी भावना करता हूँ जो-समस्त संगके समुद्रसे मुक्त है, जो मोह रहित, पापास दूर और पर भावोंसे द्रुग दृष्टा है तथा मैं निश्च ही निरागम्य लोक अती द्रव्य सुखके द्विये सभी ही तरबको प्रणम करता हूँ ।

अपने भावसे भिन्न सम्पूर्ण विभावोंको त्याग कर संसार-समुद्रसे तरनेके द्विये निश्च एक चैतन्यमात्र तिमल भावकी भावना करता हूँ तथा अत्यन्त ही भेदीस रहित जो मोक्षदा मार्ग है सबको भी नमन करता हूँ ।

आगे आलु छनका स्वरूप कहते हुए परममावस्वरुपका व्याख्यान करते हैं —

धम्ममहीरइमूल,—छेदसमत्यो सरीयपरिणामो ।

साहीणो समभावो, आलुणमिदि समुदिठ ॥ ११० ॥

सामा यार्थ — अष्ट धर्मरूपी वृक्षके मूलको छेद करनेमें समर्थ जो अपने ही आत्माका स्वाधीन और समस्त भावस्वरूप परिणाम सभीको आलु छन इम नामसे कहा है ।

विशेष — यहां पंचम जो पारिणामिक भाव उल्लाख स्वरूप कहते हैं । भठवरुच नाम जो पारिणामिक भाव उल्लाख स्वरुपका धारी जो भठवजीव उल्लाके निजधारम अस्वामी जो पारिणामिक भाव जो ही परम भाव है । यह पंचम भाव औद्विक, औपशमिक, आयोपशमिक और आयिक इन चार विभाव स्वभावोंके गोचर नहीं है । अतएव उद्य अर्थात् समय पाकर कर्मोका उद्य, उदीरण अर्थात् आगामी उद्य योग्य कर्मोका पहले एक साथ बहुवर्षोका उद्य हो जाना ।

क्षय अर्थात् कर्मादि सर्वथा नाश । क्षयोपशम अर्थात् कर्मोंके क्षय घाती स्वच्छकोंका उदयाभासो क्षय तथा उपशम, देशघाती स्वच्छकोंका उदय ऐसे चार अवस्था द्वारा उपपन्न हुए नाना प्रकारके बिचार भाव उनकरके रहित है इस कारण इस एक आत्माके शुद्ध परिणामको ही परमत्त्व अर्थात् उत्कृष्टपना है इसकी अपेक्षा अन्य चार विभाव भावोंको अपरत्त्व (हीनपना) है यह परम भाव सम्पूर्ण कर्मरूपी विषयवृत्ती जड़को उत्पन्न करनेको समर्थ है ।

तीनों काशोंमें भी जिसके आवरण नहीं होता ऐसा निरावरण निज कारण परमात्मा उसके स्वरूपका जो ध्यान वह सम्यक्त है । उसका पिरोशी जो तीव्र मिथ्यात्वकर्म उसके उदयके बशमें जो शुद्ध परम भाव यद्यपि शुद्ध निश्चय नयके द्वारा मिथ्यादृष्टिके भी सदा विद्यमान है तथापि वही भाव अविद्यमानके समान ही है क्योंकि मिथ्यादृष्टिको वह परम भावका भाव भी नहीं होता । निश्चय निगोह क्षेत्रवासी जीवोंके भी यह परम भाव शुद्ध निश्चय नयके द्वारा है तथापि अमठयत्न पारिणामिक भावकी अपेक्षासे उनके यह भाव संभव नहीं है ।

जैसे सुमेरु पर्वतके नीचे अशोभागम स्थित जो सुवर्ण राशि उसके भी सुवर्णपता है तैसे ही अमठय जीवोंके भी यह परम स्वभावपता वस्तुनिष्ठ है अर्थात् आत्मपदार्थमें शोभायमान है अर्थात् शक्तिरूप है किन्तु उसकी व्यक्तता नहीं है, व्यवहार नयसे उन जीवोंमें परम स्वभावकी योग्यता नहीं है, सम्पदशी जीवोंके यह परम भाव सफ़लताको लिये हुए है ।

कैसे हैं सुरष्टी जीव, जिनके ससारका नाश अति आसन्न है अर्थात् जो अत्यंत निकट भव्य जीव है ।

यह परम भाव सदा निरजनरूप है, कर्माजनसे रहित है क्योंकि यही परम भाव सम्पूर्ण कर्मरूपी कठोर विषयके वृत्तके

इदं मूलके उद्यादनेमें समर्थ है । निश्चय परम आलोचनाका भेद-  
रूप यह आलु छन भाव इस परम पंचम पारिणामिक भावहीके  
द्वारा ही अति निकट भव्य जीवको मिद्व होता है । यश टीकाकार  
यहते हैं कि—यह एक पंचम भाव यदा जयव त रहो । केसा है  
यह भाव जो अरयन्त शुद्ध है ।

कर्मोंके नाशसे प्रगट जो आत्माकी रक्षाभाविक अवस्था उद्यके  
द्वारा यह भाव स्थितिरूप है । यही भाव आत्मामें हीन संपूर्ण  
मुनियोंकेद्विये मुक्तिका मूढ है, एक आकाररूप है, अपने रसके  
बिस्तारसे पूण है पवित्र-तै तथा समीचीन है ।

यह ज्ञान उद्योति अनादिज्ञानके सभारसे अवतक संपूर्ण  
जीवोंके तीव्र मोहयमके उद्यसे अवन आत्मोक कायमें मुग्ध  
( मूढ ) हो रही है तथा कामदके बगमें प्राप्त होकर यह उद्योति  
निरय उ मत्तरूप हो रही है । यही ज्ञानउद्योति मोहके अभाव हो  
जानेसे शुद्ध भावको प्राप्त हो जाती है । केसा है शुद्ध भाव,  
त्रिचन दिशाके महलको षोडाहा है अथात् अवत्र क्यात है तथा  
त्रिचने आत्मामकी रक्षाभाविक अवस्थाको प्रगट कर दिया है ।

आग अतिकृतिकरणका स्वरूप कहते हैं—

कम्माटो अप्पाण, मिण्ण भावेइ विमलगुणणिलय ।

मज्झत्थ भाण्णाए, नियडीररणति विण्णेय ॥ १११ ॥

सामान्यार्थ—निश्चय करके कर्मोंसे भिन्न निर्मल गुणका स्थान  
जो आत्मा उद्यको जो कोइ मध्यम अथात् बीतराग भावना  
उद्यमें हीन होकर भावता है उद्यके ही अतिकृतिकरण जानना  
चाहिये ।

विशेषार्थ—यहा शुद्धोपयोगी जीवकी परिणतिविशेषको कहते  
हैं । जो कोई भव्य पापरूपी बनको, दग्ध करनेके द्विये अग्निके



समान होकर द्र-य, भाव और नोकर्मोंसे भिन्न तथा स्वभाविक गुणके निधान आत्माको घटाता है उसीके ही सद्गुणरूप जो परम आढोचना उसका स्वरूप प्राप्त होता है ।

टीकाकार कहते हैं कि यह आत्मा सम्पूर्ण द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि और नोकर्म औदारिक शरीरादि वनकी राजियोंसे सदा ही भिन्न रहता है, अंतरगमें शुद्ध है, शम कहिये शांतभाव और दम कहिये द्वां द्रव्यशता ऐसे शमवमरूपी कमलोंके बिये राजहंसके समान है—जैसे राजहंस कमलमें केळि करता है ऐसे ही आत्मा शम दममें रमता है । मोहके अभाव होनेसे यह आत्मा अपनेसे भिन्न सबे अ यस्तुओंको कभी नहीं प्रहण करता है ।

ऐसा यह आत्मा नित्य ज्ञान व आदि अनुपम गुणमई तथा चैत य अमरकारकी मूर्ति है । यह शुद्धात्मा अविनाशी अंतरग गुणरूपी रत्नोंका समूह है, शुद्ध सावरूप अमृतके अत्य त निर्मल समुद्रमें जिघने अपने पापरूपी कलकोंको घोटाटा है, जिघने द्वां द्रवरूपी प्रामोंके कोटाहलका हटा दिया है तथा अपनी ज्ञान ज्योतिरके मोह अमकारके पैशाबको नाशकर दिया है ऐसा शुद्धात्मा प्रकाशमान होता है । यह लोक ससारके अ म मरण आविरूप भयानक और स्वभावमई ततापमान हो रहा है अर्थात् दु खी हो रहा है ऐसे लोकमें मैं मुनिपति अमता भावकी कृपासे शम अर्थात् शांतभावरूपी अमृत मई ऐसी जो हिमानी ( दफ ) उसको प्राप्त करता हू अर्थात् परम शीतल स्वभाव होता हू ।

जो आत्मा मुक्त हो जाता है अर्थात् सिद्ध होता है वह जीव कभी भी फिर विभावनेको नहीं प्राप्त होता है क्योंकि उसने विभाव शरीरके कारणभूत समस्त पुण्य और पापका नाश कर दिया है । इसलिये मैं इस लोकमें पाप पुण्यरूप कर्मोंके जाड़ोंको छोड़कर एक ही सुमुमुक्षु पुरुषोंके द्वारा बळे हुए भागमें बढता

ह, मैं पुत्रके रक्षार्थके जाहसे बनी हुई इस सत्कारकी मूर्तिको स्थापन करके अर्थात् इस शरीरस मोह हटाकरके सदा शुद्ध ज्ञान शरीरी आत्माको ही प्राप्त होता हूँ केमा है यह भवमूर्ति, भद्रा अनादि कर्म मनुष्ये कर्मज जो संसाररूपी रोग समका प्रदण है । तथा केमा है यह ज्ञानशरीरी आत्मा, कर्मज है और शुभ अनुभव मात्से मुक्त है इसी अर्थसे विष्णुका नाम शुद्ध चैतन्यका भावना है ।

अनक विकृतकर सतिमान सपरक मूढ शुभ अनुभव कर्मोको प्राप्तवने जानकारके मैं भवभ्रममें परम रक्षण पंचमगत्रि मोक्षका दाता येमा जो कोइ गूढ आरमोक भाव है सचको नयाकार करता हू और वहीको प्रतिदिन भावना करता हूँ । यह आत्म शोक्ति न मनोहर अविश्व उन्मीका विषय है । सत्यवचनोका विषय है । यह शोक्ति आदि और अनकारके शून्य है तथापि श्रीगुठके बचनोंके प्रतापस जो कोइ शुद्ध अन्वयवणी इसीको प्राप्त करता है वह मोक्षरूपे परम उन्मीका वर होता है ।

यह आत्माका सदन वामाविक तेज सदा जयवन्त रहो । जिनने रागके अधकारको मिटा दिया है जो मुनिबरोके मनके गोचर है, धरय त शुद्ध है, विषय सुखमें कोन पुठयोको दुलव है, जो मर्षदा परम आरमोक सुभका समुद्र है, तथा विष्णो अपने शुद्ध ज्ञानक द्वारा मोह निद्राको धरय कर दिया है ॥ १११ ॥

आगे चौथा भेद भावशुद्धि नामकी जो परम आशोचना समका स्वरूप कहत दूये शुद्धनिष्प आशोचनाके अविष्णुको संकोचते हैं—

मदमाणमायलोहनि,—रजियभापो दु भाव सुद्धिधि ।

परिकहिय भव्वाणं, लोपाओयप्पदरिसीहि ॥ ११२ ॥

धामायार्थ—मद, मान, माया और बोग इन चारों अर्थोंसे रहित जो भाव है तमको भावशुद्धि कहते हैं। बोक और अडोको देखनेवाले भी जिन द्रु भगवानने मध्य जीवोंके लिए ऐसा कहा है।

विशेषार्थ—वीर्य पारिथ्र मोहनो नामा कर्मके उदयके बड्डे पुरुष वेद नाम नोकपायका जो बिडास है उसको "मद" कहते हैं। यथा मद शब्दसे मदन अर्थात् काम सेवनेका परिणाम ऐसा अर्थ लेना चाहिये।

अपुर वचनोंकी रचना सहित प्रकीर्ण और भेष कवितापनेके द्वारा आदेश नाम नामकभके उदयसे सर्व जनोंमें पुण्यपता पानेके कारणसे अथवा माता सम्बन्धी और पिता सम्बन्धी कुछ जातिकी उज्ज्वलतासे अथवा महाचर्य प्रतके पाउनेसे उत्पन्न जो पुण्य तिससे प्राप्त जो १ लाख कोटिभटके समान तपसा रहित बड्डे होनेसे, अथवा दान पूजा आदि शुभकर्मके द्वारा उत्पन्न जो पुण्य तप पुण्यके उदयसे प्राप्त जो सम्पदा धनादिकी शुद्धि पसके बिडाससे अथवा बुद्धि, तप, बिक्रिया, औपच, रस बड्डे तथा अक्षीय देवी सात प्रदियोंके होनेसे अथवा सुन्दर स्त्रियके बोध नोंको आन इकारी ऐसी शरीरकी सुन्दरताक रसके बिटारसे आरमाके अहकारका पैदा होना को "मान" है।

गुप्त रीतिसे पाप कर लेना को "माया" है। योग्य स्थलमें धनका व्यव नहीं करना को बोग है। निश्चयकरके सम्पूर्ण परि प्रहका रवाग है लक्षण जिसका ऐसा कमरूपी अजनसे रहित अपने परमारम तत्वको प्रदण करनेके बिठद्ध अपनेसे अन्य परमाणु मात्र द्रव्यका रीकार करना को "बोग" है। इन चारों भावोंसे रहित जो शुद्ध भाव है वही भावशुद्धि है। इस प्रकार मध्य

शास्त्रियोंके विषय लोकादिक दर्शा, परम भीतराग सुखरूपी अमृतके पानमें एत भी अर्हैत भगवानने कहा है ।

टीकाकार कहते हैं कि जो कोई मध्यमजीव सब तरफसे परमात्मकी त्यागकर जिनेश्वरके मार्गमें बड़े हुये समस्त आलोचनाके भेदरूप जादोंको दखकर तथा अपने आत्मस्वरूपको जानकर विमुक्त है वही जीव मंजूररूपी लोका बर होता है । सदा शुद्ध नयके आधीन येही जो आलोचना है सो मुनियोंको श्रेष्ठ मोक्षमार्गके फलको देनवाली है । यह आलोचना गुह्यारम तरबमें निश्चिन्त आचरणरूप है या येही आलोचना मुक्त समयकीके विषय निश्चयकरके कामयेतुके समान मनबाह्यित फलका देनवाली होवे । जो कोई मोक्षार्थी तीनशोकको जाननवाक विवक्षित रहित इस शुद्ध तरबको समस्ततर लक्ष तरबकी सिद्धिके विषय शुद्ध स्वभावमें आचरण करता है वह भव्य जीव सिद्धिरूपी लोका स्वामी होकर सिद्ध अस्वायाको प्राप्त करता है ।

तरबज्ञाता जितेश्वरी मुनियोंके दृश्य-कमलकी केसरमें जो शोभायमान है तथा जो आनन्दरूप, आभासहित, विशुद्ध, काम-देवके बाणोंकी भयानक सेनाको जलानेके विषय दावानल अग्निके समान है । जो शुद्ध ज्ञानरूपी दीपकके द्वारा मुनियोंके मनरूपी घरमें फले हुये घोर अन्धकारको दूर करनेवाला, बाधुओंसे बंधनीक तथा समार समुद्रके लंपनमें लहात्रके समान है येही जो शुद्ध तरब है उसको मैं बंधना करता हूँ । जो तपस्वी बड़े बुद्धिमान होनेपर भी दूररेको कहते हैं कि इस नवीन पापको करो तथा आप भी करते हैं क्या वे तपस्वी हैं ? निश्चयसे वे तपस्वी नहीं हैं । रोदकी बात है कि वे दृश्यमें विभाषरूप शुद्ध ज्ञानमई अत्यंत श्रेष्ठ इस स्वरूप परकी जानकरके फिर भी साराग भावकी अचर्याको प्राप्त होते हैं ।

एत स्वभाविक तरबकी जय होइ । जो तरब सम्पूजे

आत्मनाशी अकुशला रहित, सदा ही सुखम और प्रकाशमान है तथा जो सम्वाहृष्टि जोषोंके द्विप ममताका घर है। अपनी परम कला अहित है। अपने अशुष्ट गुणोंके द्वारा बद्धमान है। अहं अक्षय्यामें प्रकाशित है तथा रात्रिदिन अपनी महिमामें छोन है। यह स्यामाबिक तरुण छात तरुणोंमेंसे सर्वाशुष्ट तरुण है, परम निमोह है, सब प्रकारसे निमल ज्ञानका घर है, आचरणोंसे रहित है, मोक्ष रूप है, अत्यंत विशद (स्पष्ट) है, निरय है, बाह्य प्रपञ्च जालोंसे निष्ठ है, मुनिजो भी मन और बधनोंसे दूर है ऐसे तरुणको हम नमस्कार करते हैं।

सम जिन द्रवी जय होहु जो शतरसमई अमृतके समुद्रको बढ़ानेके द्विये प्रति दिन सद्यरूप सुन्दर चन्द्रमाके समान है तथा तुल्यनारहित ज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंसे जिधने मोहरूपी अघकारक समूहको नाशकर दिया है। जिधने अम जरा मरणके समूहको जीत लिया है, अत्यंत भयानक रागके समूहका घात कर दिया है, पापरूपी महाअघकारके समूहके नाशके द्विये सूर्यके समान है तथा जो परमात्माके पदमें स्थित है उस महात्मा जीवको सदा जय होहु।

इस प्रकार सुकविरूपा कमलोंके द्विये सूर्यके समान पचेन्द्रियोंके विस्तारसे रहित शरीर मान परिमरके धारी भीषणरसुमद धारी देव विरचित भी नियमसार ग्रन्थकी सारपर्यवृत्ति नामकी कथाख्यामें परमात्मीयता नामका सातवा श्रुतार्कष पूर्ण हुआ।



## ८-निश्चयप्रायश्चित्ताधिकार

आगे सबे द्रव्यमात्र और नोकर्मके त्यागका कारणमूत्र जो शुद्ध निश्चय प्रायश्चित्त नामका अधिकार सबको कहते हैं—

वदममिदिमीलमंजम,—परिणामो करणणिग्गहो मापो ।

सो हरदि पायश्चित्त, अणुररय चेव कायव्वो ॥ ११३ ॥

स मा यर्थ—घ्न, समिति, शोच और संयमका जो परिणाम तथा इन्द्रियोंके रोकनका जो भाव उन्नका नाम प्रायश्चित्त है । सो ही निरन्तर करना योग्य है ।

विशेषार्थ—अहिंसादि पाच महाभूत, पाच / समिति, शोच और सबे इन्द्रियोंके तथा मनबचनकायको सवम करनेका परिणाम और पाच इन्द्रियोंका निरोधरूप जो भावको परिणतिविशेष सो ही प्रायश्चित्त है । प्राय का अर्थ प्रचुरपन बिचार रहित चित्त अर्थात् मन सो प्रायश्चित्त है ।

सो प्रायश्चित्त मुझ पञ्चमभकरके करना योग्य है । कैसा होकरके करना योग्य है, निरन्तर अन्तरगमें डीन हो परम समाधिपुक्त होकर, जितेद्री योगीश्वरकी दशमें रहकर तथा पापबन्धके दग्ध करनेको अग्नि समान भाव रखकर । तथा कैसा हूँ मैं, पंचेन्द्रियोंके फेडाबसे रहित शरीर मात्र परिग्रहका धारी हूँ, स्वाभाविक बैराग्यरूपी महदके शिखरका शिखामणि हूँ तथा परमात्मकी सुगन्ध लेनेम स मुख हूँ ।

यहा टीकाकार कहते हैं कि—मुनियकि निरन्तर अपने आत्माकी चिंता होना सो प्रायश्चित्त होता है । इन्ही करके पापोंको भोकर तथा अपने आत्माके स्वभावमें रह होकर मुनि करते हैं । जो मुनि इसके सिवाय अन्य चिंता क

मूलपूर्ति पापा कामदेषके द्वारा सीद्ध होकर फिर भी पापको करने हैं यह एक आश्चर्यकी बात है ।

आगे छय कर्माँको पस्वादनमें समर्थ जो निश्चय प्रायश्चित्त उक्तको कहते हैं—

रोहादिसगन्भार, खयपहुदीभावणाए णिग्गहण ।

पायच्छित्त भणिद, णियगुणचित्ता य णिच्छपदो ॥ ११४ ॥

सामान्य र्थ—क्रोधादि अपने विभाव भावोंके क्षय करने आविधी भावनामें बतना तथा अपने आत्मीक गुणोंको चित्त करना सो निश्चयसे प्रायश्चित्त कहा गया है ।

विषेपाय—क्रोधादि सबे मोह राग द्वेष विभाव भावोंको क्षय करनेमें काणमूत्र जो अपने कारण परमात्माके स्वभावकी भावना समके होते हुए निज स्वभाव प्रदणकी अपेक्षासे प्रायश्चित्त कहा गया है । अथवा परमात्माके गुणस्वरूप शुद्ध अवतरण स्वरूप जो अपना स्वभाव उक्तमें सहज ज्ञानादिक जो सहज गुण है उक्तकी चित्त करनी सो प्रायश्चित्त होता है ।

टीकाकार कहते हैं कि अतिशयकरके मुनियोंका प्रायश्चित्त काम क्रोधादिक जो आत्माके अर्थ भाव हैं उनके नाशके अर्थ अपने आत्मास्वभावका जानना अथवा उक्तकी भावना करनी मो ही है ।  
\*आत्मप्रवाद प्रथमे संतपुरुषोंने ऐसा ही जाना है ।

आगे चारी कथाओंके जीतनेका उपाय बतलाते हैं—

रोह समया माण, ममद्वेणऽऽज्जेण भायं च ।

संतोसेण य लोहं जयदि खुए चउविहकसाए ॥ ११५ ॥

साम यार्थ—क्रोधकी क्षमासे, मानके आत्मीक माद्व भावसे, पापको त्याग धर्मसे तथा क्रोधकी संतोषसे इस तरह ४ प्रकार कथाओंके योगी जीतता है ।

विशेषार्थ—जघन्य माध्यम और उत्तम भेदसे क्षमा तीन प्रकार है । बिना कारण हो अप्रियवादी मिरवाहणो मेरी निंदा करता है य प्राण देनेका इच्छाग करता है परन्तु मेरे पुण्यके उदयसे यह कुछ न कर सका ऐसा जानकर क्षमा करना सो प्रथम जघन्य क्षमा है । बिना कारणके ही यह जोष मुझे प्राण करना और ताड़ना व बाधा देना चाहता है पर तु मेरे पुण्यके उदयसे यह मेरा कुछ बिगाड न करसका ऐसा जानकर क्रोध न करके क्षमा करनी सो दूसरी मध्यम क्षमा है । और यदि अपनको बाधा व प्राण प्राप्त हो तो ऐसा विचारना कि मैं अमूर्ताके परम सत्य स्वरूप हूँ मेरे शुद्ध स्वरूपको कुछ हानि नहीं होता है ऐसा स्थानमें लेकर परम-समता रखके भावमें ठहर जाना सो तिसरी उत्तम क्षमा है ।

इस प्रकार तीनों क्षमाओंसे क्रोध कषायको जोतकर तथा मार्दव भावरूप कोमल परिणामोंसे मानकषायको और कषट रहित आज्ञा भावसे मायाको तथा परमउत्सवका स्थावरूप जो सतोष उदयके द्वारा मोह कषायको जोतना योग्य है ।

ऐसा ही गुणभद्राचामोने कहा है—

भाषार्थ—हर ( महादेव ) ने अपन चित्तमें रहे हुए काम देवरूपो शत्रुको तो न पहिचाना और अपनो मूल्यतासे क्रोधकरके किसी बाह्य ही प्राणीको कामदेवकी युद्धिसे दम्भ किया पश्चात् इसी ही कारणसे यह हर भयानक दुखको अवरथाको प्राप्त हो गया—इस ही प्रकार क्रोधके उदयसे किस किसके कार्योंकी हानि नहीं होती ? अर्थात् क्रोध सबके कार्योंको बिगाडनेवाला है ।

यह अर्थ मठका दृष्टा त ले कहा है कि मह  
हीखनेवाले किसीके ऊपर क्रोध करके उसे जडा



अन्य तरह काम बाधनाको नहीं त्यागा जिससे भ्रष्ट हो ऋषियों द्वारा दुःख पाया अर्थात् उसका जिंग छेदा गया ॥ १ ॥

श्री ऋषभदेवजीके पुत्र भी बाहुबलीजी और श्री भरतजीसे जब युद्ध हुआ तब हारकर भरतजीने बाहुबलिपर शक बनाया, श्री बाहुबलि शरम शरीरी थे इससे उनका दक्षिण हाथपर आके वह शक बैठ गया उसी समय भी बाहुबलीजीने सब शकको त्यागकर दीक्षा धारण कर ली । आचार्य कहते हैं कि सब समयके उत्कृष्ट भावसे वह उसी समय शीघ्र मुक्त हो जाते परन्तु किंचित् मानके कारण कि हम भरतजीकी पृथ्वीपर खड़े हैं उनको शिरकाज तक तप करना पड़ा पश्चात् जब मानको छोड़ा तब ही केवलज्ञानको प्राप्त किया । आचार्य कहते हैं कि मान इस व्यासकी महान हानि करता है ॥ २ ॥

मिथ्याशक्तके भयानक गाढ़ अंधकारसे भरे हुए मायाकूपी महागढ़के भीतर गिरनेसे बच करना चाहिये, क्योंकि जिस मायागतमें बैठे हुए मोषादि भयानक सर्प नहीं दिखलाई पड़ते हैं अर्थात् मायाचारीके मोषादि कषाय भीतर बैठे होते हैं । अमरी गार भावोंके भयसे भागतीर जाती है अकारमात् उसकी पूछ वृक्षके चैत्रमें फल जाती है—इसको अपनेबावोंका चढ़ा मोह होता है जो बावोंके समूहमें छोछुगी रहकर इस भयसे कि कहीं कोई बाव टूट न जाय, अपनी जड़ कुट्टसे निश्चल खड़ी रह जाती । अपनी पूछको छुटाकर भागती नहीं है । आचार्य स्पष्ट करते हैं कि इस अंधके कारण वह बिचारी भोवके द्वारा हती गयी जो अंधकी परिणति रखते हैं उनको प्राय इन्ही प्रकारकी विपत्तियां नानामकारकी आ जाती हैं ।

टीकाकार कहते हैं कि मोषकषायको क्षमासे, मानकषायको मादकसे, आर्जवसे तथा अंधकषायको संतोषसे जीतना चाहिये ।

आगे सुद्ध ज्ञानका स्वीकार करना ही प्रायश्चित्त है ऐसा कहते हैं—

उक्तिदो जो बोहो, पाण तस्मैष अप्पणी चित्त ।

जो धरउ मुणी णिअ, पापच्छित्त हर तम्म ॥ ११६ ॥

समान्वाय — अपने ही आरमाका जो कष्ट बोध, ज्ञान तथा चित्त है उसको जो कोई मुनि निरय धारण करता है उसके ही प्रायश्चित्त होता है ।

विशेष — कष्ट जो विशिष्ट धर्म है वही परम बोध है । बोध ज्ञान और चित्त तीनोंका एक ही अर्थ है । अतएव सभी परम धर्मके आरी आरमाका प्रायश्चित्त अर्थात् प्रत्यपने जो चित्त अर्थात् ज्ञान को प्रायश्चित्त है । जो कोई परमसवनी निरय रूप प्रकारके चित्तको धारण करता है उसीके ही निश्चय प्रायश्चित्त होता है ।

टोकाकार कहते हैं कि—जो कोई सुद्धात्मज्ञानकी भावनाको रखनेवाला आरमा है जो ही प्रायश्चित्त मात्रका धारी है । जिसने पापके समूहको दूर कर दिया है उसे मुनीन्द्रको मैं निरय वनके गुणोंकी प्रातिकेडिये बन्दना पाता हू ।

आगे कहते हैं कि इस लोकमें परम तपश्चरणमें हीन जो परम योगीश्वर हैं वनहीके निश्चय प्रायश्चित्त होता है यही समस्त आचरणोंमें श्रेष्ठ आचरण है—

किं बहुणा भणिण्ण दु, वरतत्रचरण महेसिण मच्च ।

पापच्छित्त जाणह, अणोयस्समाण स्यपहेऊ ॥ ११७ ॥

सामान्यार्थ—बहुत क्या कहे । महापणिका सर्वे कष्ट तप आण एक प्रायश्चित्तको ही जानो जो अनक कर्मके नाशका कारण है ।

विशेषार्थ—आचार्य कहते हैं कि बहुत अक्षय प्रकाश करनेसे बस होतू । निश्चय बगवद्धाररूप सर्व अकृष्ट तपश्चरण एक निश्चय प्रायश्चित्तको ही हे शिष्य ! तुम जानो । महा परम जितेन्द्रो योगि यो कि ब्रिये अनादि ससारमें बाधे हुए द्रव्यकर्म और मार्ककर्म इनको सर्व प्रकारसे विनाश करनेका कारण है ।

टोकाहार कहते हैं कि अनशनादि धारह तपस्वरूप आचरण यही आत्माका सहज-स्वाभाविक तत्त्व है । यही शुद्ध चैतन्य स्वरूपको जाननेवाला है । यही स्वाभाविय ज्ञानकी कलाके गोबर है तथा यही पापोंको क्षय करनेका कारण है । यह प्रायश्चित्त निश्चयम उत्तम साधु पुरुषोंको ही होता है । कैसा है यह प्रायश्चित्त, जो अपने अरमोके द्रव्यमें बि तबन स्वरूप है तथा धर्म-ध्यान और शुद्धध्यानरूप है । कर्मोंके अक्षकारको विनाश करनेके ब्रिये सम्यग्ज्ञानरूपी तेष है तथा जो अपनी विचाररहित महिमामें लीन है ।

यमो साधुओंको आरमज्ञानसे ही कमकमसे आरमाको प्राप्ति होती है और ज्ञान उद्योति प्रगट होती है । कैसी है ज्ञान उद्योति, जिसने इन्द्रियोंके विषयरूप प्राणके घोर अक्षकारको इतन कर दिया है तथा कर्मरूपी जंताइसे अक्ष लो दाबाइकी सिखा सबको बुझानेके ब्रिये शीत अक्षमई अमृतकी धाराको शीघ्र चरया रही है ।

अव्ययम शास्त्ररूपी समुद्रसे मैंने इस समय रूपी रत्नमाळाको निष्काळा है यही निश्चय समयरूपी रत्नमाळा मुक्ति-बधूके बर पेसे लो सरप ज्ञाता इनके सुकठको सुशीमित करनेबाळी हो गई है, मैं निश्चय इस परमारम सरपको नमस्कार करता हूँ । जो मुनीन्द्रोंके चित्तरूपी कमडका गमबाध है, मोक्षके अतींद्रय मुखका मूड है तथा जिसने सघाररूपी बृक्षके मूळको नष्ट कर दिया है ।

आगे कहते हैं कि प्रसिद्ध ऐसा शुद्ध जो कारण सम्यक्कार परमात्मतत्त्व वसमें सदा अंतरगच्छे बोन होकर जो तप तपना है वही तप प्रापश्चित्त है—

गताणतमवेण स,—मज्जिमसुद्धकम्मसद्वोहो ।

तवचरणेण विणस्मदि, पायच्छित्त तव तप्ता ॥ ११८ ॥

सामा यथ—अनंतानत भबोक द्वारा जो इष्ट चीजने शुभ तथा अनुभ कर्मोंके समूहको उत्पन्न किया है सो सर्व कर्मजाळ तपश्चरण करके नाशको प्राप्त होता है । इसलिये ऐसा तप ही प्रापश्चित्त है ।

विशेषार्थ—अनादिकाळसे संसारमें भ्रमते हुए जो शुभ तथा अनुभ कर्मोंका समूह इस जीवने पैदा किया है सो द्रव्यरूप पुद्गलकर्म तथा रागद्वेषादि भावकर्म जो द्रव्य, क्षेत्र, काळ, मज, भावरूप पाच प्रकार समारका बदानबाळा है सो सर्व भावशुद्धि ब्रह्मण्डली परम तपश्चरणके द्वारा विषयको प्राप्त हो जाता है । इसलिये अपने आत्मिक तत्त्वमें रमनरूप जो परम तपश्चरण सो ही शुद्ध निश्चय प्रापश्चित्त है ऐसा प्रयोजन है ।

टीकाकार कहते हैं—अष्ट कर्माङ्के जाळको नष्ट करनेके लिये संत पुष्टर्षीन ऐसे तपक सिखाव और किष्कीको प्रापश्चित्त नहीं कहा है । कि जो तप चैतन्यके आनन्दरूपी अमृतसे पूज है तथा जो अनादि संसारमें संसृष्ट किया ऐसा महान कर्मरूपी बन उसके दृग्ग करनेके लिये अग्निकी वशाळाका समूह है और जो समसुखमई तथा मोक्षरूपी ब्रह्मीका दहेज है ।

आगे कहते हैं कि सम्पूर्ण विभावभाषोंको अभाव करनेके लिये अणु आत्माहीके आभयसे उत्पन्न जो निश्चय अमभ्यात

अप्पसरूवाल्लवण, भावेण दु सच्चभावपरिहारं ।

सकदि वट्टु जीवो, तम्हा ज्ञाण हवे सच्च ॥ ११९ ॥

धामाग्यार्थ—यह जीव अपने आत्मिक स्वरूपके अलंकारमें त मय जो भाव धीसे सर्व अन्वभाषोंको त्यागनको समर्थ हो जाता है । इसद्विये सर्व प्रायश्चित्तादि ध्यान ही होता है ।

विशेषार्थ—निश्चयरूपसे परद्रव्यका त्याग है अथवा जिसका ऐसे दक्षिणसे उचित जो अत्यन्त नित्य भावण रहित ऐसा जो व्यापारिक परम पारिणामिक भाव धरकी ही भावना भानेसे यह अत्यन्त निवृत्तभव्य जीव औपचारिक औपशमिक, श्रायिक और श्रायोपशमिक, ऐसे अपने शुद्ध स्वरूपसे अन्व चारों भाषोंको तजनेके द्विये समर्थ हो सकता है । इसी कारणसे धनी जीवके ऐसे भावको पापरूपी बनीके जमानेके द्विये अमिष्टमान कहा गया है । अतएव पाप महाव्रत, पाप धर्मिष्ठ, तीन गुप्ति, ऐसे १३ प्रकार चारित्र्य तथा प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त, और आलोचना आदि सर्व ध्यानमें ही गर्भित हैं ।

टीकाकार कहते हैं—जो कोई भव्यजीव शुद्धाराममें अपना भाव निश्चय करके एक शुद्ध आत्माको ही ध्याता है किस प्रकार ध्याता है, कि यह आत्मा एक है नित्य अपनी व्योतिकरके मोह अवाकरके समूहको नाश करनेवाला है, आदि और अहसे शून्य है, परमपदसे विराजमान है तथा आनन्दकी मूर्ति है वह जीव गीम ही जीव मुक्त अर्थात् अरहत हो जाता है । और वही जीव अमरत आचारका प्रतिपादक है ।

आमे शुद्ध निश्चयस्वरूपका व्याख्यान करते हैं—

सुहृदसुहृदवपणरण, रायाद्रीभाववारण किच्चा ।

अप्पार्ण लो ज्ञायदि, तस्स दु णियम हवे णियमा ॥ १२० ॥

सामा यार्थ—जो कोई शुभ और अशुभ वचनोंको रचनाको दूरकर तथा रागद्वेषादि भावोंको हटाकर आत्माको ध्याता है उसीके ही नियमसे नियम होता है ।

विशेषार्थ—जो कोई परम तत्त्वज्ञ नी महा उपोषन प्रतिदिन सप्तम किये गए जो सूक्ष्मकर्म जनक नष्ट करनेमें समर्थ जो निश्चय प्रायश्चित्त समर्थ होन रहता है तथा जो मुनि मन वचन कायको रोककरके समारम्भी पैदाक मूढवद् जो शुभ तथा अशुभरूप प्रशस्त और अपशस्त समस्त वचनको रचनाको दूर करता है, वैश्व इन वचनोंकीका तिरस्कार नहीं करता कि तु समस्त मोह रागद्वेष आदि पर भावोंको भी दूर करता है फिर निरंतर अस्वच्छ अद्वैत, सुन्दर आनन्दसे भरपूर अनुपम तथा कमाजन रहित अपने कारण परमात्मतत्त्वको निश्चय अपने गुणोपयोगके बलसे बारंबार भावता है उसी ही यमी मनुष्यक शुद्ध निश्चयनय करके नियम होता है । यह अभिप्राय भगवान सूत्रकारका है ।

टीकाकार कहते हैं कि—जो कोई भव्यश्रीव शुभ तथा अशुभरूप वचनको रचनाको त्यागकरके निश्चय प्रगटपने रचभावमद् परमात्माको भले प्रकार भावता है उसी ही परम भित्तेश्री और ज्ञानी मुनिके नियमसे यह शुद्ध नियम होता है तथा वही नियम मुक्तिरूपी लोके सुखका कारण है । निरन्तर अस्वच्छ अद्वैत चैतन्यके विकार रहित स्वरूपमें संपूर्ण नयोंका विच्छाद्य कुछ भी प्रगट नहीं होता है । जिसमें सब भेदबादोंका विषय हो गया है ऐसे तत्त्वको मैं यहा नमस्कार करता हूं, उसीकी स्तुति करता हू तथा उसीकी बारंबार भावना करता हू । यह ध्यान है, यह ध्येय है, यह ध्याता है, यह ध्यानका फल है इन विकल्प आलोसे रहित जो तत्त्व है उसीको मैं नमन करता हू ।

योगमें हीन योगीके कभी २ भेदबाद उठाकरते

मत्त करता है उसको अरहंतक

होगी या नहीं और जानता है ।

भावार्थ—सुच्छिदा कारण तो एक निर्विकल्प ध्यान ही है जहा विकल्प है वहा वष है ।

आगे निश्चय कायोरसर्गका स्वरूप कहते हैं—

कायाडपरदृष्टे, धिरभाव परिहरत्तु अप्पाण ।

तस्स हने तणुसग्ग, जो क्षायड णिच्छिअप्पेण ॥ १०१ ॥

धामा वार्थ—काय आदि पर दृष्ट्यामें धिर भावको दूर करके जो कोई विकल्पपरहित होकर अपने आत्माको ध्याता है उसीके ही कायोरसर्ग होता है ।

विशेषार्थ—आदि और अठ अहित मूर्तोंक अपने आत्म जातिसे भिन्न विभाव व्यजन पर्यायस्वर अपने शरीरका अ आकार है सो काय है । आदि शब्दसे क्षेत्र, महत्, सुवर्ण, अ आदि लेना । इन सब विनाशिक पदार्थोंमें धिर भावको अर्थात् ये सदा रहेंगे ऐसे भावको त्यागकरके नित्य ही मनोहर कमरूप में रहते रहित अपने स्वभावमें कारण परमात्माको जो निरव्यवहार क्रियाकाण्डके आडंबर मन्त्र भी जानामकार विकल्प उत्तर पूर्ण होलादत्त (शोर-मुख) एवम् रहित ऐसा जो स्वाभाविक परम योग लक्षके ब्रह्मसे ध्याता है उसी ही उपरसीके निश्चय कायोरसर्ग होता है ।

धैसा है उपरसी, जो स्वाभाविक उपश्ररणरूपी क्षीरघमुद्रा बदनेकाव्यय चंद्रमाके समान हृदयका ईश्वर है तथा निश्चयकार स्वाभाविक वैराग्यरूपी महत्के शिखरका शिखामणि है ।

टीकाकार कहते हैं कि—यह निश्चय कायोरसर्ग निश्चयसे अप आत्मामें जीन संवर्गी मुनिघोंक ही निरंतर अपने आत्मध्यान ही हाता है । धैसा है आत्मध्यान, जहा शरीरसे उत्पन्न ०

प्रबलरूपसे प्रगट होते हुए कर्म उनके सुखरूप के अर्थात् कायकी, क्रियारहित है, बचनोंके जाडोंके समूहसे विरक्त है तथा मन सम्बन्धी भावोंसे भी अलग है ।

उस स्वाभाविक परमेश्वरकी जय होहू । जो अपने सहज तेजके पु जमें मग्न होकर मकाशमान है जिसने मोह व्यवहारको हटा दिया है, जो स्वाभाविक परमेश्वरसे परिपूर्ण है तथा नृपा ही शत्रुपक्ष जो संसार तथा जो भव भवके दुःख और कल्पना तिनसे मुक्त है ।

संसारके जो सुख हैं वे एक तो अल्प अर्थात् थोड़े हैं । दूसरे कल्पना मात्र ही अर्थात् अपनी मानी हुई सुखसे ही रमणीक ( अच्छे ) मालूम होते हैं ऐसे सब सुखको मैं अपनी आरमोके शक्तिसे त्यागता हू तथा स्वाभाविक परम सुखरूप चतुर्भुजे चमरदार मात्र प्रगट अपने विद्यासमई आरमेश्वरको अर्पण अनुभव करता हू ।

आचार्य कहते हैं कि मेरे हृदयमें भुगयमान जो समाधिमें निज आरमोके गुणोंकी सपदा सबको मैंन इस काहसे पूर क्षण मात्र भी मैंन नहीं जाना । बड़े छोटी बात है, मैंन हीन जगतको अद्भुत विभूतिको प्रत्यक्ष करनेवाले हुए कर्मकी प्रभुताईके बलसे इस महासंसारमें आरय न हटा गया हू अर्थात् रोह पठा चुका हू । भवभयके विषमई वृक्षके सम्पूर्ण दुःखके कारण फलोंकी त्यागने योग्य जानक मैं चतुर्भुजरूप आरमामें शत्रुपक्ष जो विशुद्ध सुख तमोको अनुभव करता हू ।

इस प्रकार सुखविरुधी कर्मोंके लिये सुखके समान पंचैश्वरके प्रसारसे रहित मात्रमात्र परिग्रहघारी भी पद्मभक्तवारीदेवसे विरचित निष्पत्तीनाधिकार नामकी शारयवृत्ति नाम टीका तिसमें श्रुत निश्चय प्रायश्चित्त-अधिकार आठवां अध्याय पूर्ण हुआ ॥ टीका ॥



## ९-परमसमाधि-अधिकार

आगे सम्पूर्ण मोह रागद्वेष आदि परमाशुको नाश करनेका कारण भूत जो परमसमाधि नाम अधिकार सबको करते हैं। वही प्रथम ही शुद्धनिश्चय परमसमाधिकार व्याख्यान करते हैं—

वयणोच्चारणकिरिय, परिचत्ता वीयरामभानेण ।

जो क्षापड अण्णण, परमसमाधी ह्ये तस्स ॥ १२२ ॥

सामान्यार्थ—जो कोई अपने बीतराग भावसे बचनोंसे बोलनेकी क्रियाको त्याग करके अपने आत्माको ध्याता है वहीसे ही परम समाधि होती है।

विशेषार्थ—परम जिन योगेश्वर भी कभी अपनी अणुभ प्रवृत्तिको हटानेके लिये बचन रचनासे मनोहृष्ट ऐसे परम बीतराग सचन सबको श्रुति करते हैं। वे भी निश्चयसे योगेश्वरकी शुभ अणुभ बचनोंका व्यापार नहीं करना योग्य है।

अतएव समस्त बचनको रचनाको त्याग करके सब कर्मरूपी कलककी कीदरसे रहित हो अपने रागद्वेष भावोंको हटानेवाले ऐसे परम बीतराग भावके द्वारा तीनों ज्ञातोंमें आवरणरहित नित्य ही शुद्ध कारण परमाशुको अपने ही आत्माका है आत्मय जिज्ञाको ऐसे निश्चय धर्मध्यानके बलसे जमवा टंकोरहीर्ण ज्ञायक एक रचनामें बचनीन ऐसा जो परम शुद्ध ध्यान सबके बलसे जो कोई परम बीतरागरुपर तपश्चरणमें बिन, रागरहित संयमी ध्याता है वही साधुके निश्चयसे परम समाधि होती है। केवा है साधु, जो द्रव्यकर्म और भावकर्मकी सेनाको लूटनेवाला है।

टीकाकार कहते हैं कि—किसी अपूर्व समाधिके द्वारा वृत्तम के हृदयमें प्रगट होनेवाली समताके साथ-साथ रहनेवाली

जो स्वामाधिक आरमोके सम्पदा मधको जवतक हम लोग नहीं जानते तवतक यह समाधि हमारा विषय नहीं है ऐसा हम मानते हैं । अर्थात् समाधिका काम कठिन है ।

आगे समाधिका उद्देश्य कहते हैं—

मजमणियमतवेण दु, धम्मज्झाणेण सुकहाणेण ।

जो शायड अप्पाण, परममाही हने तस्म ॥ १२३ ॥

धामा वार्थ—सधम नियम और तपक द्वारा धमस्थान व्यवस्था शुकुष्य नसे जो आरमाको ध्याता है समाधि ही परम समाधि होती है ।

विशेषार्थ—सब ईश्वरोंके ध्यावारका स्थाना सो सधम है । अपन आरमाको आराधनाम नियमम तल्लान रटना सो नियम है । आरमाको आरमाके द्वारा धर आग मा ही आध्यात्मिकता है ।

सर्व क्रियाकाके आहम्बरका है तथा अहा ऐसे अनुरंग क्रियाके आधाररूप अरनाका जो मर्माधाररहित तथा धानो काकोमें कर्मोही न्याधि ध्यात आर्षत्तिल रहित रहन्व ध्यानता है सब ज्ञानकी जो परिणति विशेष है वही अपन आरमाके आध्यात्मिक विद्यनेकाका निश्चय धर्मध्याता है । अर्थात् आरमरुकरका ध्याय ज्ञान होकर धरन्वके ज्ञानमें निश्चयता सो ही निश्चय धर्मध्यान है । अहा ध्यान, ध्येय, ध्यता और ध्यानके फलको आदि ले नाना प्रकारक विकल्प नहीं हैं तथा जो सम्पूर्ण विहरण सकरवोको आदि ल ईश्वरमामोके विषयोसे अगाधर आरिमक परम तपकका निश्चयविधिरूप है वही निश्चय शुकुष्य ध्यान है । इत्यादि विशेष सामग्रियोंके ध्याय जो कोई परम संवम अखड अद्वय परम चेतन्यमइ आरमाको निरय ध्याता है वहीके निश्चयसे यह परम समाधि होती है ।

टीकाकार कहते हैं—कि जो कोई चैत यमई निर्बिचल्प समाधिमें नित्य ठहरता है उसी आत्माको मैं गमरकार करता हूँ। ऐसा है आत्मा, जो द्वैत और अद्वैतके लक्षणोंसे रहित है।

आगे कहते हैं कि जो कोई समताभावके बिना केवल द्रव्यरूप वाङ्मयिग अर्थात् विद्युको धारनेवाला द्रव्यलिङ्गी भ्रमणा भास है अर्थात् यथायमें मुनि नहीं पर तु मुनि सदृश मालूम होता है उसके मोक्षका कुछ भी उपाय नहीं है—

किं काहदि वणवासो, फायकलेसो त्रिचिन्तवनासो ।

अज्ञप्रयणमौणपहुदी, समदारहियस्म समणस्त ॥ १२४ ॥ -

सामानार्थ—जो भ्रमण ( विगवर मुनि ) समताम रहित है उसको वनबाध, अथवा कामकलेग व नाना प्रकारके उपवासोंका फाना व शास्त्रपठन तथा मौनव्रत यह सब ही क्या कर सकते हैं ? अर्थात् मोक्षके साधनको करनेमें असमर्थ है।

विशेषार्थ—सर्व कर्मफलरूपी बीजसे रहित महानदका कारण यह परम समताभाव है। यदि यह भाव न हो और केवल द्रव्यलिङ्गी भ्रमणाभास बनमें बास करे व उपासकमें वृक्षके नीचे ठहरे, गर्मीमें अथ व तीव्र किरणोंस सतत पवतके शिखर पर बैठकर व्यासन लगाने, अथवा शीतद्रव्यमें रात्रिके समयमें विशाभोके ही बसधा षड्ढाक ओढ़ अर्थात् चौंटे मैदानमें बैठ नम्राध्यायमें रह ध्यान करावे, तथा और इष्टीको दिखानेवाला व सर्व लोको कलेग दानवाला उपवास महोपवास करे। व सदा शास्त्र पढ़नेमें ही चतुर हो अथवा बैचनोंक उपावारको त्याग कर सदा मौनव्रत ही धारण करे तो भी उसे कुछ भी मोक्षके कारणभूत फलकी प्राप्ति नहीं है।

आशय—समताभावके साधमें तो ये सर्व उपाय हैं परन्तु

समताभावरहित जीवके इनस कोई भी प्रहग योग्य पडका काम नहीं है । देखाही भी अमृतशक्ति प्रथमें कहा है — कि पवनकी मयाक गुफामें, बनमें, व दूधरे किमी शुभ्य प्रदेशमें बैठनेसे, इन्द्रियोंको रोकनेसे, ध्यानस, व तीर्थोंकी यत्रास, पढ़नेसे, अथवा जपहोम करनेसे मन्त्री सिद्धि नहीं है । इषद्विये हे माजी तू कष्टरूप, इन सबसे अग्य, अपन आत्माके सारकी ही दूट ।

टीकाकार कहत है— कि जो मति समता भावसे रहित हो अनशनादि द्वादश तपोकी वाञ्छता है वमक कायको सिद्धि नहीं है । इसद्विये हे मुनि । तू आकुञ्जसे रहित समतादेखीका जो कुटर्मदिर देवा जो अपन आत्मीक तरब तलोका ही मज कर ।

आगे कहते हैं कि जो मुनि सब पापरूप क्यापारसे रहित हो मनबचन कायकी गुप्तमें गुप्त हो सर्व इन्द्रियोंके क्यापारोंकी छाड़कर अपने आत्माके समुच्च होता है वहीसे ही सामायिकप्रव र्थायी ( तिष्ठनेवाला ) होता है —

निरदी सख्यसावज्जने, तिगुत्तीपिहिदिदिओ ।

तस्म सामाद्ग टाड, इदिवरलिमासणे ॥ १२५ ॥

सामान्यार्थ — जो सब शासन अर्थात् सावध क्रियाओंसे विरक्त हो तीन गुप्तियोंकी आरके अपनी इन्द्रियोंको सचेष्टता है वहीसे ही सामायिक र्थायी होता है येण कबही भगवानके आगममें कहा है ।

विशेषार्थ — जो कोई मरा गुमुयु मुनि पकेन्द्रिय आदि प्राणियोंके समूहोंको दुःखदैनका कारण जो मन्त्रुण पाव सर्व क्यापार वससे अलग होकर गुप्त अगुप्त सर्व काय बचन और क्यापारोंकी तीन गुप्तरूप होता है तथा स्वप्न, प्रण, चक्षु " इन पाव इन्द्रियोंके समुच्च हो उनके

जो विषय करवाले पदाथ उनको प्रश्न न करके जिते ग्री रहता है उसी ही परम बीतराग सयभोके यह सामायिक प्रश्न शायता यदा ठहरनेवाला होता है ।

टाकाकार कहते हैं कि—इस प्रकार संसारके मयको करनेवाली सब पापकी राशिको रयागकर तथा मानवचन कायके रात्रि दिनके बिकारोंको भाशकरके जो कोई जोब अतरग शुद्ध अपनी परम ज्ञान बोधको कला समके साथ एक आरयाको ही अनुभव करता है वही मुनि विघर और समतामई शुद्ध आत्मिक रथभाषका प्राप्त करता है ।

आगे परम माध्यम भाषादिमें आरुढ़ जो परम मुमुक्षु उसका स्वरूप कहते हैं —

जो समो सच्चमूदसु, यानरेसु तमेसु वा ।

तस्म सामाङ्गं ठाई, इटि केवलिमामणे ॥ १२६ ॥

सामा याध—जो सर्व प्रस और रयावर पाजियोंमें समता मात्र रखता है समोके ही सामायिक रयायो होती है ऐसा केबलीके आगममें कहा है ।

विशेष धे—जो रथाभाविक वैराग्यरूपी महलके शिखरका शिखामणि है और बिकारोंके कारण जो सर्व मोह राग द्वेष आदि भाष उनके अभावसे तथा भेदकरपना रहित परम समरसी भावका रयामिच्छ रखनेसे जो सर्व प्रस और रयावर लीषोंमें सम है अर्थात् द्वेषरहित समदर्शी है उसी ही परम जिनयोनीश्वरके सामायिक नामका प्रश्न धनातन प्रश्न होता है । ऐसा बीतराग सयभके आगममें सिद्ध है ।

टोकाकार कहते हैं कि—परम जित-ग्री मुनियोका चित्त प्रस हतिसेमुक्त है तथा रयावर लीषोंके बेषस भी अतिशयकरके भिन्न है । कमोस मुक्त हानेक लिये ऐसा जो निमह मुनियोका चित्त

अधिरार गुण अर्थात्को प्राप्त है सभीको मैं नमन करता हूँ,  
सुखि करता हूँ तथा सभीको भावना करता हूँ ।

कोई जोर अद्वैत भागहीमें स्थित है, कोई द्वैत भागमें हीन है  
परन्तु हम द्वैत और अद्वैतसे रहित एसे आत्मामें ही बतन करते हैं ।  
कोई अद्वैतको तथा कोई द्वैतको चाहते हैं परन्तु मैं द्वैत, अद्वैतसे  
रहित आत्माको ही नमन करता हूँ ।

मैं आत्मा हूँ स्वसुखका आनन्दवाला हूँ इससे मैं अपने  
आत्माहीमें टहरकर आत्माहीके द्वारा जन्म और नाशसे मुक्त  
ऐसे अपने आत्माको ही बार्बर भावता हूँ ।

संसारके बसानेवाले उन बिबिधोंके बचनोंसे पूरी पढो अर्थात्  
इनसे कुछ कयकी सिद्धि न होगी-यह आत्मा स्वरहित आनन्द  
मई सब नयोंके समूहोंका विषय नहीं है, न यह द्वैत तथा  
अद्वैतरूप है इसलिये मैं एषो एकको बिना बिबिधके मद्दा ही  
अपने सखारके भयको नाश करनेकाहिये बन्दना करता हूँ ।

इस जन्ममें पापपुण्यके समूहसे अत्यन्त मुक्त और दुःख  
शोका है । जिस आत्मामें न तो दुःखभाव न अशुभ परिणति है,  
जो सबके परिचयसे अत्यन्तरहित तथा भयके करनके से श्रीगुणोंके  
समूहोंसे विमुक्त है सभी आत्माको मैं नमस्कार करता हूँ ।

इस जन्ममें निरय ही यह शैत तथा अमरकार प्राप्त स्वरूप  
अपव त होइ । केवा है स्वरूप, जो पापकी सनाकी ध्वजाको  
हरनेवाला है, जिसने अपने ररष्ट स्वाभाविक तजसे पापोंके  
समूहोंको दूरकर दिया है तथा अत्यन्त प्रबल मोह अमरकार अस्त  
किया है और जो अत्यन्त शुद्ध है ।

यह पापरहित आत्मीक तरब जयको प्राप्त होइ । जिसने  
समाप्त संसारको अस्त कर दिया है, जो महामुनिगणोंके नाथ  
जो परम योगीश्वर उनके हृदयमें कमण्डके समान स्थित है,  
सबके कारणोंको जिसने बिबिध करवाया है, जो अत्यन्त शुद्ध

है । एतदप्ये मदा अपनी महिमामें छोन दे तो भी अस्वप्नदृष्टियोंके अनुभव गोचर है ।

आगे कहते हैं कि आत्मा ही उपादेय है—

अस्म मणिहिदो अप्पा, संजमे णियमे तपे ।

तस्स सामाग्गं ठाई, इदि केविसासणे ॥ १२७ ॥

आमा य अथ—जिसके समय पाइते, नियम करते व तप करते एक आत्मा ही निकटवर्ती है उसीके सामायिक स्थायी होती है ऐसा केवलीके आगममें कहा है ।

विशेष अर्थ—जो निश्चय करके बाह्य प्रपञ्चाओंसे अलग है, जिनमें घब ईश्वरोंके व्यापारोंको छीत किया है, जो भाषी जिन है ऐसा मुनि जब पापत्रियाओंके त्यागरूप बाह्य समयमें तथा मन बचन कायकी गुप्ति महित भव ईश्वरोंके व्यापारसे बर्जित हो अन्तर आत्मरूप संयममें तिष्ठता है तथा किसी मर्षादात्म्य भावे हुए काबलक किसी आचरणको करना है स्वरूप जिनका ऐस नियममें रहता है तथा परमद्वय चेत यमई नियत निश्चय अतरंग छोन और स्वरूपमें अविचल स्थितिरूप चारित्रमें व उपबहारनयके आधीन दशन, ज्ञान चारित्र, तप और कीर्ये ऐस पाप आचाररूप पञ्चमगति जो मोक्ष लक्षके कारणमूत चारित्रमें प्रवर्तता है और समस्त भावोंके प्रपञ्चोंसे रहित तथा सकल दुर्गाचारकी निवृत्तता जो कारण ऐस तपश्चरणमें व प्रय होता है, उषी ही मुनिक परमगुणक प्रसादसे प्राप्त जो निरजगत्-निज कारण परममत्त वा अदा निकट ही रहता है ।

अथ वृद्ध मुनि हएक समय, नियम और तपमें परमात्माकी शुद्धगता भावता है । एष ही परदृष्टियोंसे पराङ्मुख अथात् विशुद्ध, परमदत्ताग प्रवृत्तियों तथा अंतरंग चारित्रबान मुनिके सामायिक प्रवृत्तता तिष्ठनवाले होता है ऐसा कथन केवली महाराजके आगममें कहा है ।

टीकाकार कहते हैं कि—यदि मनमें शुद्ध सम्यग्दर्शन होता है तो यह आत्मा निरुपही परम यमके धारी मुनियोंके तपमें, नियममें, संयममें तथा सम्यक्चारित्र्यमें अतिशयसे बिराजता है। ऐसे ही समस्त रागद्वी मनोद्वेषको भ्रष्ट करनेवाले तथा संसारके मयके हरनेवाले आगामी तीर्थंकरवद् प्राप्त करनेवाले आत्मामें यह स्वाभाविक समता साक्षात् शोभती है।

आगे कहते हैं कि रागद्वेषके अभावसे अपरिस्पन्दरूपवना अथात् इन्द्रन चन्द्रन रद्विचयना मार होता है—

तस्म रागो दुःखोसो दुःखिगडिं ण जणेति दु ।

तस्म सामादगं ठाई, इदि केवलिसामणे ॥ १२८ ॥

सामा यार्थे—जिज्ञके रागद्वेष विकार नहीं पैदा होते हैं पक्षीके सामाविक थायी होता है ऐसा केवलीके आगममें कहा है।

विशेषार्थे—जो परमकीतराग संयमी पापरूपी बनके जन्मानेको अग्निके समान हैं उनक न तो राग और न द्वेषका विकार पैदा होता है ऐसे ही महा आनन्दके चाहनवाले जीवक तथा पचेद्वियोंके फेड़क रद्विचय शरीरमात्र परिमदके धारी मुनिके सामाविक प्रवृत्त शश्वग आविनाशा होता है ऐसा कबली भगवानके शासनमें पंचद है।

टीकाकार कहते हैं कि रागद्वेष विकारोंको करनेके लिये महासुनि समर्थ नहीं हैं (?)। जिनके अपनी ज्ञानव्योतिसे पापरूपी सेनाका घोर अंधकार दूर कर दिया है, जो स्वाभाविक परमानन्दरूपी अमृतसे पूर्ण है तथा नित्यही समताके रससे भरपूर है ऐसे मुनिक लिये विधि और विषेयकी कौनसी गति है? अर्थात् रागद्वेष हैं व नहीं यह बिद्वन्प ही नहीं उठ सकता।

आगे कहे हैं कि आत्में रीद्वेषानके रयागसे ही अनात्म सामाविक प्रवृत्त होता है—



जो दु अट्ट च रद् च, क्षाणं वज्जेदि णिच्चसो ।

तस्म सामायिगं ठाई, इदि नेत्रलिसामणे ॥ १२९ ॥

सामायाथ—जो नित्य आर्त्त और रौद्र ध्यानोको हटाता है उसीके सामायिक व्रत स्थायी होता है ऐसा केवली महाराजके आगममें कहा है ।

बिरोधार्थ—जो कोई जीव नित्य निरजन निज कारण समयसार स्वरूपमें स्थिर रह निश्चय परम बौतगाग सुखरूपो अमृतके पान करनेमें लक्ष्मीन है वह जीव त्रियंबयोनि तथा नरक आदि शक्तिको प्राप्त करानेका निमित्त जो आर्त्त और रौद्र दोनों ध्यान उनको निरय हो त्यागता है । उसीके निश्चयकरके केवल दर्शन धारी द्वारा सिद्ध किया हुआ शाश्वत सामायिक व्रत होता है ।

टीकाकार कहते हैं कि—जो मुनि नित्य आर्त्त और रौद्र ध्यानोको त्यागता है उसीके सामायिक व्रत होता है तथा उसी भावकके यह सामायिक अणुव्रतरूप होता है, ऐसा जिन शासनमें सिद्ध है ।

आगे शुभ तथा अनुभ परिणामोंसे उत्पन्न जो पुण्य और पाप कर्म उनके त्याग करनेका विधान बतलाते हैं —

जो दु पुण्ण च पाप च, भाय वज्जेदि णिच्चसा ।

तस्म सामाद्ग ठाई, इदि नेत्रलिसामणे ॥ १३० ॥

सामायाथ—जो कोई नित्य पुण्य और पाप भावोंको त्यागता है उसीके सामायिकव्रत स्थायी होता है ऐसा केवली महाराजके आगममें कहा है ।

बिरोधार्थ—जो बाह्य और अन्तर परिग्रहको त्याग करना है ब्रह्म जिनके, ऐसे ब्रह्मसे जो ब्रह्मिन् ( ब्रह्म ) हैं ऐसे परम जितेंद्रो जिन योगीश्वरोंके चरण कमलोंका घेना सवारना आदि यथाप्रत्य अर्थात् सेवा करना उससे पैदा हुई जो आत्माकी

शुभ परिणति विशेष कस्ये वरदा हुमा जे, पुण्यकर्म तथा द्दिवा,  
असत्य, चोरी, अश्रद्ध तथा परिग्रह इन पापों पापोंके परिणामोंसे  
पैदा हुमा जो अशुभ कर्म इन पापों पुण्य और पापोंका कोई  
स्वाभाविक भैरवगणको महच्छत्र शिखरका शिखामणि है सो त्याग  
देता है। कैसे हैं ये दोनों कर्म जो सकाररूप छोके बिछासके  
विभ्रमको अममूर्ति हैं अर्थात् इन्हीं कर्मोंके निमित्तसे संसारमें  
जीव भ्रमण करता है।

इन्हीं कर्मोंके रागका त्यगी जीव नित्य केवली भगवानद्वारा  
सिद्ध किया हुमा सामाजिक प्रवृत्ति प्राप्त होता है।

टीकाकार कहते हैं—कि यथावदृष्टी जीव संसारके मूढमूढ  
अथ पुण्य और पापोंको त्यागकरके अपने नित्य ज्ञान इरूप सहज  
शुद्ध चैतन्य स्वरूपको प्राप्त होता है तथा कभी अपने शुद्ध  
कीवस्थितिकाममें ही बिहार करता है अथवा कभी जीव अविशय  
करके तीन लोकोंमें पूजनीय जिन २ केवली हो जाता है।

मैं नित्य ही सब आत्मज्ञानकी पूजा करता हूँ। जो स्वयं  
सिद्ध है, पापपुण्यरूपी बन्धन जलानेके लिये अग्नि समान है, महा  
मोहरूपी अंधकारके दूर करनेको अथवा तेजस्वरूप है, मुक्तिका  
मूक है, अपाधिरहित महा आनन्दका देनेवाला है तथा भव  
अवके भ्रमणको नाश करनेमें निपुण है।

यह जीव कामदेवसे वरदा जो सुख लक्ष्मणके लिये अपनी  
सुद्धिसे छोड़ित किये हुए संसाररूपी बंधूक बरपनेको प्राप्त होकर  
पापरूपी बुद्धके अथवा संसारमें अपने प्राण धारण करता है।  
यथाचित्त अपनी गतिको बदलकर जब यह शीघ्र मोक्षके सुखको  
प्राप्त करता है तब सब एक सुखको तज कर फिर वह सिद्ध  
जीव अपनी अवस्थाको अज्ञायमान नहीं करता है। अर्थात् सदा  
एकाकार स्वभावमें स्थित रहता है।

आगे नव नोकपायोंके जोतनेसे सामायिक चारित्र प्राप्त होता है वसधा स्वरूप कहते हैं—

जो दु हस्म रई सोग, अरति वज्नेदि णिचसा ।

तस्म सामाग्य ठई, इदि केवलिसासणे ॥ १३१ ॥

समाचार्य—जो हाय, रति, शोक, अरति, जुगुप्सा, भय, हीनप्रकार वगैरे ऐसे नव नोकपायोंको निरय दूर रखता है वहीके ही यह सामायिक रथायी होती है, ऐसा भोकेवृद्धीके शासनमें कहा है ।

विशेषार्थ—मोहनीय कर्मोंद्वारा उत्पन्न जो स्त्री, पुष्ट, नपुंसकवेद, हाय, रति, अरति, शोक भय, जुगुप्सा जर्घात् घृग, ऐसे नव प्रकार नोकपाय अर्थात् ईषत् (क्रिचत्) कपाय हैं इनसे समुक्त जो कलकरूपी क्रीचद् वसमई सर्व ही विकारोंके समूहको परमसमाधिके बन्से जो कोई निश्चपरशनशयका धारी परम तपोवन मुनि त्याग देता है वहीके ही निश्चयसे यह परम सामायिक नामका प्रथम शाश्वत रूपसे रहता है । यही बात केवली महारथके आगाममें सिद्ध है ।

टीकाकार कहते हैं—कि मैं सधाररूपी स्त्रीसे पैदा जो सुस्रदु खोंके समूह उनके करनवाले सब ही नोकपायोंको हर्षपूर्वक त्यागता हू । केशा है यह जो कपाय, जो महा मोहसे अग्ये पुष्ट हैं उनके हृदयमें सदा हा सुगमतासे उपजा करता है, पर तु जो आत्माकी प्रमाचमें स्वकीन निरन्तर ध्यानव गनरूप हैं उनके बिसमें इनका उपजना अत्यंत दुलभ है ।

आगे परमसमाधि अधिकारको सद्योच करते हुए कहते हैं—

जो दु धम्म च सुक् च, शाण शाणदि णिचसा ।

तस्म सामाग्य ठई, इदि केवलिसासणे ॥ १३२ ॥

सामाचार्य—जो कोई निरय ही धर्मस्थान और शुद्धयानको

प्याता है उसीके ही यह सामायिक स्थाया होता है ऐसा केवलहीके आगममें कहा है ।

विशेषार्थ—जो कोई अथवा प्रकार निमैड केवलज्ञान और केवलदर्शनका साधुता (अभिन्नभावान है तथा अमल विद्वान् जासोसे मुक्त परम जिते-त्री योगीश्वर है जो अपने आरमाहीमें है आश्रय जिज्ञासा ऐसे निश्चय धर्मध्यानके द्वारा तथा निश्चय गुणध्यानसे निर-तर, ररहाहित, अद्व त, स्वाभाविक चैत-यके विद्याधर्मई ब्रह्मगतरूप अविनाशी आनन्दके सागरमें डूबे हुए, संपूर्ण बाह्य क्रियासोसे पराङ्मुख अथात् अलग, शाश्वता, अशरंगका आधारमून ऐसे आरमाका ध्यान करता है अथवा आराममें त मयरूप विद्वपरहित परमसमाधिके ऐश्वर्यको सांग ऐसे धर्म और शुद्ध ध्यानीसे असा मोक्षस्वरूप आरमाका ध्यान करता है उसीके ही निश्चयसे जिनेश्वरके आगममें प्रतिपादित निश्च शुद्ध मनबचन काबकी गुप्तिरूप परमगुण समाधि है ब्रह्मजिज्ञासा ऐसा अविनाशी सामायिक प्रव होना है ।

टोकाकार करते हैं कि—जो कोई शुद्ध रत्नत्रयका धारी आरमा शुद्धध्यानमें अपनी बुद्धिको परिणमाता है अथवा अचरहित परमानन्द तत्त्वका है आश्रय जिज्ञासा ऐसे धर्मध्यानमें डीन होता है वही तत्त्वज्ञानी अतिशयसे मपूर्ण भेरीके अभावसे ऐसे किसी विशाळ तत्त्वको प्राप्त करता है जिसमें बड़े २ दुःखज्ञासोका अत हो गया है तथा जो भववजोबोके बचन और मनक सागोसे दूर है । अथात् जो अतीन्द्र भावगम्य है ।

भाषार्थ—आरमाकी परमसमाधिसे उत्पन्न परमासुखका ध्यान करनकेलिये आरमस्वभावमें लवडीन ऐसे धर्मध्यान और शुद्ध ध्यानकी ही आवश्यकता है ॥ १३३ ॥

इस प्रकार सु दर कबिरुपी कमडोके लिये सूर्यप्रमान पचेन्द्रियके फेडाबसे रहित शरीरमात्र परिमहके धारी भीषणधर्ममडकारिदेव

द्वारा कथित भीनिधमसारकी तात्पर्यवृत्ति नाम

नामका ९ मा अक्षरकंठ पर्ण

## १०-परमभक्त्यधिकार

जाने परम भक्ति अधिकार को कहते हैं। प्रथम ही रत्नप्रकाश स्वरूप बतान करते हैं—

सम्पत्तणाशचरणो, जो भक्तिं कृपाद् सावगो समणो ।

तस्स दु पिण्डुदिमत्तो, होदिति जिणेहिं पण्णत्त ॥ १३४ ॥

सामान्याथ—जो कोई भावक व भ्रमण अर्थात् परमदिगम्बर मुनि सम्प्रदर्शन सम्पद्गान और सम्पद्धारित्रमें भक्ति करता है उसीके ही निवृत्तिरूप अर्थात् ससारसे छुड़ानेवालो भक्ति होती है, ऐसा विनेन्द्रभगवान् केवलियोंने कहा है।

विशेषार्थ—चार्ते गतिरूप ससार वलको प्रहण और वलमें भ्रमणका कारण तीव्र मिथ्यात्व कमरूपी प्रकृति है इसका विरोधी जो अपना परमात्मतत्त्व है वलका भले प्रकार भट्टान करना, वलीको यथार्थ जानना तथा वलीमें ही सम्पद्धारुपसे आचरण करना सो सम्पद्दर्शन ज्ञान चरित्र है।

इन शुद्ध रत्नप्रयके परिणामोंको भजन करना, इनको भक्ति करनी, तथा इन्हींको आराधना करनी योग्य है, यह प्रयोजन है। भावकके ग्यारह पद हैं इन ११ पदोंमें वशैत, प्रव, सामायिक, प्रोषधोपवास, चाचित् त्याग और रात्रि भोजनत्याग ऐसे ६ पदोंके चारी भावकके अद्य-वभावक हैं। तदाचये, चारंम, त्याग और परिग्रह त्याग इन तीन पदोंके चारी सम्पद् भावक हैं तथा अनुमति त्याग और परिष्ठाहार त्यागवाले सुल्लक और ऐडक इन दो पदोंके चारी उत्कृष्ट भावक हैं। ये सब हैं सम्पद्गृही तत्त्वज्ञानी होते हैं, इत्यर्थिये शुद्ध रत्नप्रयकी मति करते हैं। इ ही परम भावकोंको और परममुनियोंको भी विने-

मगवान द्वारा कही हुई निवृत्ति भक्ति होती है। केशी है वह निवृत्ति भक्ति, जो मोक्षरूप खीकी दाधीलरर है। अर्थात् मोक्षभक्तिके उपायमें उपायको दृढ़ (उच्छेन)वा ही निवृत्ति भक्ति है।

टोकाकार कहते हैं कि—जो कोई चतुर प्राणी है सो इस संसारके भयको हारनेवाले सम्यग्ज्ञान, शुद्ध ज्ञान तथा शुद्ध चारित्र्यमें सदा अतुल्य भक्ति करते हैं। वे काम क्रोध आदि सब पापोंके समूहोंसे अपने चित्तको मुक्त करके सदा ही भक्त रूप रहते हैं। चाहे वे साधक हों वा सयमी।

आगे स्वबहारनपको प्रदान करके सिद्ध भक्तिके स्वरूपको कहते हैं—

मोक्षसंगयपुरिमाण, गुणमेद जाणिऊण तेभियि ।

जो कुणदि परममत्ति, व्यवहारणपण परिऋदियं ॥ १३५ ॥

सामान्यार्थ—उन मोक्ष प्राप्त पुरुषोंके गुणोंके भेदोंको जानकर जो आत्मा उन गुणोंमें परम भक्ति करता है उन्हींके व्यवहार नयसे यह सिद्धभक्ति कही गई है।

द्वितीयार्थ—जो समीचीन महारमा सब कर्मके क्षय होनेमें उपायमूढ ऐसा जो कारण परमात्मा उन्हींको अपनी भेदरहित और उपायरहित रसनत्रयमई परिणतिके द्वारा भले प्रकार आराधन करके सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हो चुके हैं, उन सिद्धोंके शुद्ध गुणोंके भेदोंको जान करके जो कोई निवृत्त भव्यश्रीव निर्वाणको परम्परासे कारणमूढ ऐसी परम दरुष्ट भक्तिको करते हैं उन ही मुमुक्षु जीवोंके व्यवहारनयसे निवृत्ति भक्ति अर्थात् सिद्ध भक्ति होगी है।

टोकाकार कहते हैं कि—जिन्होंने कर्मके समूहोंको धो डाला है, जो सिद्धरूपी बंधूके घर हैं तथा जिन्होंने सम्यक् आदि

आठ मुख्यगुणरूपी पञ्चमको प्राप्त कर दिया है ऐसे मोक्षस्थानमें निवासो सिद्ध भगवानको मैं निरय बदना करता हूँ । जिनेश्वर भगवानने इस प्रकारकी वच्य बंधकभावरूप भक्ति को उपबद्धावनयसे कहा है । तथा शुद्ध रत्नप्रकाररूपमें जो भक्ति है जो निश्चय निवृत्ति भक्ति है यथा वर्णन किया है ।

अथावति सिद्ध अक्षरयाके विषयमें वर्णन किया है कि वह सिद्धभाव सब दोषोंसे दूर है केवलज्ञानादि शुद्ध गुणोंका स्थान है तथा शुद्धोपयोगका फलरूप है अर्थात् शुद्धोपयोग धारनेहोसे सिद्ध अक्षरयाकी प्राप्ति होती है ।

जो श्री सिद्ध महाराज तीन लोकके लक्ष्मणामें निवास करनेवाले हैं, सब सबके दुस्तरूपी समुद्रके अतः प्राप्त भय हैं तथा निर्वाणरूपी निजबधूक रक्षण पैदा होनेवाले मुख्यकी स्थान हैं तथा शुद्धात्मकी भावनासे पररत्न जो महान केवलज्ञानादि सर्वसत्त्व सबके रखनेवाले हैं तथा जो पापबन्धक ज्ञानके द्विये अग्नि समान हैं । ऐसे सिद्धोंकी मैं निरय नमस्कार करता हूँ । तथा मैं निरय ऐसे सिद्धोंकी शरणमें प्राप्त होता हूँ जो तीन लोकके लक्ष्मणामें शोभायमान हैं, गुणोंके शुद्ध हैं, आननेयोग्य जो परार्थ सो ही होय सबसर्व समुद्रक पाप प्राप्त भय हैं अर्थात् अब होय परार्थोंके जाननेवाले हैं, सुचिन्तकी सुन्दर स्त्रीके मुखरूपी कमलके द्विये सूर्यके समान हैं, ईश्वरोंकी परार्थीनतासे रहित स्वाधीन सुखक समुद्र हैं अष्ट महद्गुणोंको सिद्ध करनेवाले हैं, सत्कारक इला हैं आठ कर्मांक समूहका नष्टघट्ट करनेवाले हैं, तथा पापबन्धीके लक्ष्मणके द्विये अग्नि समान हैं ।

जिन सिद्ध भगवानोंकी परोक्षभक्ति मनुष्य और देवोंके समूह करते हैं । जो सदा जिज्ञासु, श्रेष्ठ और पवित्र हैं वे ही भगवान् सिद्धरूपी रमणीके सुन्दर मुखकमलकी दीर्घ मोह करनेवाले मूर्खोंके लक्ष्मण रहते हैं ।

अर्थात् जैसे धरमर कभी कमलके बाणको नहीं त्यागता ऐसे ही भी सिद्ध भगवान् मोक्ष निहालको कभी नहीं छोड़ते हैं ।

आगे निम्न परमार्थको भूलते रहनेको कहते हैं—

मोक्षरूपे अप्या, टविऊग य वृणदि जिन्नुदी मती ।

तेण दु वीवो पावट, अमहायगुण णियत्ताण ॥ १२६ ॥

मार्गमाथ—जो जीव निश्चय करके अपने आत्माको मोक्षके मार्गमें स्थापित करनेकी भूल करता है वही जीव इसी भूलसे परमहाय रहित गुणोंको प्राप्तवाला ऐसा जो अपना आत्मा ब्रह्मका ज्ञान करता है ।

विशेषार्थ—भेदोंकी वृत्तनाकी अवेज्ञा अज्ञा नहीं है और अज्ञा व्यवहार भी नहीं है ऐसे रत्नत्रय स्वरूप वातराग मोक्ष मार्गमें जो कोई जीव कर्मजन रहित निम्न आत्मिक परमानन्दमय अमृतके पीनेके लिये बध्मी होकर अपने आत्माको ठहराता है और ब्रह्म मुक्तिरूपी लोक चरणकमलोंमें भी परम भक्ति करता है वही भगवत्प्रेम तपी अपनी भक्तिक गुणोंका द्वारा अपने आत्माका ज्ञान करता है ।

कैसा है आत्मा, जो आचरण रहित स्वाभाविक ज्ञान गुणका धारी होनेके कारण ब्रह्महाय गुणोंका स्वामी है ।

टीकाकार कहते हैं कि—जो आत्मा निश्चयसे अपने आत्माको अपने आत्मस्वरूपमें स्थापित करता है । कैसा है आत्मस्वरूप, जो नित्य है, अविचलरूपसे महा शुद्ध इस रत्नत्रयमें स्थित है, मुक्तिरूपी ब्रह्मकी वासिका कारण है, तथा भगवत्प्रेम रहित स्वाभाविक ज्ञान द्वाारा स्वाभाविक धारी है ।

जो मत्स्यकीव आनन्दसे प्रकाश करता हुआ अपने चैतन्यकी स्वभावकारणसे भक्तिकरके अपूर्व अविशयके भरे प्रसङ्गको अर्थात्



निश्चय का बन्धनी पदको अविशयकरके प्राप्त करता है तथा विद्वि-  
रूपी लोका स्वामी होता है ।

आगे निश्चय योगमत्तिके स्वरूपको कहते हैं—

रापादीपरिहारे, अप्पाण जो दु जु जदे साह ।

सो जोगमत्तिजुत्तो, इदरस्म कह हने जोगो ॥ १३७ ॥

व्याख्यान—जो कोई साधु रागादि दोषोंको त्याग करके  
अपन आत्माको योगमें लगी करता है वही साधु योगमत्तिके  
युक्त होता है, अ यके योग कैसे हो सकता है ?

बिधेयाय—सम्पूर्ण प्रकारसे अन्तरगमें समुच्च होकर जो  
परमसमाधि होती है उस परमसमाधिके द्वारा सब मोह रागादि  
आदि परभावोंको त्याग करके जो कोई निकट भव्य साधु अपने  
ही अग्र्य अर्थात् परमान स्वरूपके द्वारा अपने ही कारण परमा  
त्माको योगमें लीन करता है वही परमतपोधन शुद्ध निश्चय  
योगमत्तिस युक्त होता है । ऐसे मुनिके विषय जो कोई जीव  
बद्ध संसारके प्रपञ्च आश्रमोंमें सुखी हो रहा है उसके किस  
प्रकारसे यह योगमत्ति हो सकती है ? अर्थात् नहीं हो सकती  
है । ऐसा ही कहा है कि आत्माको शुद्धिके लक्ष्यकी अपेक्षा  
सहित जो भेद्य मनको गति सब गतिका प्रथम लक्ष्ययोग होना भी  
ही योग कहा गया है ।

टीकाकार कहते हैं—कि जो आत्मा अपने आत्माको अपने  
आत्माके द्वारा अपने आत्माम ही निरन्तर योग करता है वही  
मुनीश्वर निश्चय योगमत्तिके संयुक्त होता है ।

फिर भी इसी निश्चय योगमत्तिके स्वरूपको कहते हैं—

सर्वविअप्पामावे, अप्पाण जो दु जु जदे साह ।

सो जोगमत्तिजुत्तो, इदरस्म कह हने जोगो ॥ १३८ ॥

सामान्यार्थ—जो कोई साधु प्रथम दिक्त्वोंके अभावमें अपने आत्माको युक्त करता है उसीके ही योगमक्ति होती है, अन्य मुनिके यह योग कैसे होगा ? अर्थात् नहीं होगा ।

विशेषार्थ—अरथ अर्थात् रागरस रहित रत्नप्रथ स्वरूप अक्षने चैतन्यका विकास है अथवा जितका ऐसी निर्विकल्प परम समाधिक द्वारा सब मोह रागद्वेषादि नाना प्रकारके दिक्त्वोंको दूरकर जो कोई अरथ निकट भव्यजीव परम समतत्परस्पर भावकरके सर्व प्रकार अंतरणमें प्रमुख अपने कारण समवधार स्वरूपको सदा युक्त ही रखता है उसीके ही निश्चय योगमक्ति होती है दूसरोंके नहीं ।

टीकाकार कहते हैं—कि सब भक्तोंके अर्थात् दिक्त्वोंके अभावसे यह श्रेष्ठ योगमक्ति होती है । यागयाजा इन्हीं मन्त्रोंके द्वारा अरमाके स्वरूपको प्राप्तिकर मुक्ति होती है ।

अन्य कहते हैं कि इस लोकमें निश्चयसे सब गुणोंके पारी गणधर केको अर्थात् छेकर अन्य जिते ही मुनियोंके नाथ द्वारा कथित तत्त्वोंमें विपरीत अभिप्राय रहित जो आरमाका भाव ही निश्चय परमयोग है—

निवरीयाभिणिवेम, परिचत्ता जोष्हकहियतन्चेसु ।

जो जुंजदि अप्पाणं, णियभावो सो हवे जोगो ॥ १३९ ॥

पामा यार्थ—जो विपरीत अभिप्रायको छोड़ करके जैन शास्त्रमें यह रूपे तत्त्वोंमें अपने आरमाको योग करता है वही आरमाका निष्प्रमाव, योग कहलाता है ।

विशेषार्थ—जैन विनाय अन्य भक्तोंके कृताभोंद्वारा कहे हुए विपरीत पदार्थोंमें राग भावका होना वही दुरामव है अर्थात् एक मारी हठ है तथा इन्हींका नाम विपरीत अभिप्राय है ।

क्योंकि सदाय अनेकारूप है सो त्यागदातके द्वारा ही यथार्थ प्रतिपादित हो सकता है। इसलिये जब दुरामादको त्यागकर जैन आगममें रहे हुए तत्त्वोंको निश्चय और व्यवहार तथोंके द्वारा जानना योग्य है।

कहते जिन जो अग्रहंत भगवान् सीधैनाथ उनके चरण कमलोंकी सेवा करनेवाले जैन हैं, सो निश्चयसे भी गणेशदेवादि मुनीश्वर हैं। इन आचार्योंके द्वारा बनन किये गए जो सम्पूर्ण जीवादितत्त्व उनके अनुभवमें जो कोई परम जिनेत्री योगेश्वर अपने आत्माको जोड़ देता है उस योगीका जो अपना आत्मीक भाव है वही परम योग है।

टीकाकार कहते हैं कि—जैन गुनियोंके नाथ भी तीर्थंकर अथवा गणेशरादिकोंके द्वारा प्राप्त किये हुए तथा भव्यजनोंके संसारको घात करनेवाले तत्त्वोंके अंदर जो कोई जिन शीतगामी योगीनाथ अपने अनादि परममयमें होनेवाले विपरीत घुंझरूप दुरामादको त्यागकर साक्षात् अपने आत्मीक अंदर भावको त मय करता है उसीको भावयोग कहलाता है।

जामे भक्ति अघिकारको सकोचते हैं—

उसहादिजिणवरिंदा, एव काऊण जोगवरमत्ति ।

णिण्वुदिसुहमाचण्णा, तद्दा धरू जोगवरमत्ति ॥ १४० ॥

सामा यथ—भो वृषभतीर्थंकरसे जादि छेप भी महावीर जिनेन्द्र पर्यंत २४ तीर्थंकरोंन इसी प्रकारके योगकी उत्कृष्ट भक्ति करके मोक्षके सुखको प्राप्त किया है इसलिये तुम भी इसी योगकी श्रेष्ठ भक्तिको धारण करो।

विशेषार्थ—इस भरतश्रेत्रमें इस अवसरपिणो वाकमें आ नामेय ( नाभिराजके ) पुत्र भी रूपमसे लेकर भी बद्धमान पर्यंत चौबीस तीर्थंकर परमदेव सर्वज्ञ शीतराम तीन लोकमें अपनी

कीर्तियों बिनाशनेवाले मह देवाधिदेव पामेश्वर हो गए हैं इन  
 सशोने ऊरुकी गाथाओंमें बड़े अगुवार अपने ही आरमाररूपसे  
 सम्बन्ध रखनवाली शुद्ध निष्कण्य योगकी मरुष्ट भक्ति की थी,  
 इसीसे परम निर्वाणकारी बपूके गद्द सुधबिडाम द्वारा शरभ जो  
 परम सुन्दर रसकपी अमृत कपस अपने सर्व अर्सलगत आरम  
 मर्दोंकी कृम काते हुये। इधरिष दे मष्ट मठ्यवनक गुणोंको  
 बालनेवाले महापुठरो। तुम भी ऐसी ही योग भक्ति करी जो  
 अपने आरमाके प्रयोजनभूत परम शोतराग सुखको देनवाली है।

टीकाकार बहते हैं—कि मैं भी वृषमादि जिनेश्वरोंकी शक्ति  
 करता हूँ। फटे हैं प्रभू, गुणोंके गुठ हैं, तीन शोकको पवित्र  
 करनेवाले व पुण्यवध करानवाले हैं, जिनकी इन्द्रादिक देव अपने  
 मुकुटोंकी मद्योभूत कर मुकुटके किनारे छगे हुए माणिक्यों कणम  
 वनस पूजा करत हैं तथा जिनके निकट इन्द्र जो आदि प्रशि  
 देवदोंक समूहके सय इन्द्रने नाना प्रकारके निमैक आन र  
 बिहास प्रगट किये हैं अथात् नृत्य गानादिसे जिनकी भि  
 इन्द्रन की है तथा जो कीर्तिरूपी बरमीके नाम हैं।

वृषमसे ले भीमहाबीर अठिम तीयकर तक सवन इ  
 चरयुक्त मागसे योग भक्ति करी है जिससे निवागकी बपू  
 अनुपम सुखको प्राप्त किया है। मैं भी मोक्षके सुखकी सिद्धि  
 लिये इसी शुद्ध योगकी श्रेष्ठ भक्ति करता हू तथा ऐसे।  
 भयानक संतारसे मय करक सर्व ही जीवोंको निरय यह भि  
 करनी चाहिये। अपने चित्तस राग शीत हृषकी परपरा  
 होनेवाली जो परिणति वनको छोड़कर अर मैं शुद्ध ध्यानस अप  
 मनको संयुक्त करके आनरमई आरमठरूपसे सिवत होता हू  
 तथा भीगुठके निकट पवित्र सुखको करनवाले समझा छामक  
 अपने सम्यग्ज्ञानसे समात माहकी महिमाको इटाता हुआ पर  
 प्रसन्नरूप परमात्ममें डीन होता ह।

जो ज्योतिष्य सुघके जालुगी हैं तथा जिन्होंने अपना ब्रह्म  
शास्त्रमन्त्रके जोषमें बंधा दिया है उनको सुन्दर जानइसे भरपूर  
यह उत्तम तर्क प्राप्त होता है । जो यही अर्थ व अपूर्व अपने  
आत्माकी भावनासे उत्पन्न जो परम सुख उसके डिये धरन करते हैं ।  
ये ही यही निश्चय करके जीवन्मुक्त होते हैं दूसरे नहीं । मैं  
मात्र एक ही परमात्मतत्त्वकी पुन पुन भावना करता हूँ, जो  
हृद्बहिर्द्वैत है, अद्वैत है, परम हितकारी इष्ट है तथा सर्व पापोंसे  
दूर है ।

कैसा हूँ मैं मुक्ति तियाका अभिप्रायो हूँ, उपकारके सुखोंका  
निरभिप्रायो हूँ मुझको परमात्मतत्त्वके सिद्धय अथ पदार्थोंके  
सर्वथ करनसे कौनसे फलकी प्राप्ति होगी अर्थात् कुछ न होगी ।

भाषाय—जो जिसको चाहे लक्ष्मीको भजे । जो परमात्मा  
होना चाहता है उसके डिये लक्ष्मी तत्त्वकी भावना कायकारी है ।

इति श्रीकबिजनरूपी कर्मज्ञके डिये सूर्य, चंद्रेन्द्रियके बिलारसे  
रचित शरीरमात्र परिमलके धारी, श्रीपद्मप्रभ-मन्त्रधारी,  
देव द्वारा रचित श्रीनियमसार प्रथमकी उत्पत्त्यवृत्ति  
नामकी संस्कृतव्यस्यः तिसमें परमप्रति  
नामा दशाक्षरं श्रुतम्कथपूणे

हुवा ॥ १४० ॥



## ११-निश्चयावश्यकधिकार

जागे सामयिक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, शक्ति, बदना, कापोरसग ऐसे छ आबश्यक व्यवहार उनसे प्रतिपक्षी जो शुद्ध निश्चय वसका अधिकार कहते हैं ।

प्रथम ही कहते हैं कि जो निरंतर अपने बश है वहीके निश्चय आबश्यक कर्म होता है—

लो ण हनदि अण्णवसो, तस्म द्दु कम्म भणति आवाम ।

कम्मविणासणनोगो, णिव्वहिमगोत्ति पिज्जुत्तिो ॥ १४१ ॥

सामान्यार्थ—जो दूसरेके बश नहीं रहता है उसीके आबश्यक कर्म होता है । यही कर्मके नाश करनेमें समर्थ मोक्षका भाग है, ऐसा कहा गया है ।

विशेषार्थ—जो कोई निश्चयसे भोजिने-द्र मागमें यथार्थ विधिक अनुसार आचरण करनेमें कुशल अथात् चतुर है, जो वश ही अंतरंगमें छीन होकर किछा भी अथक आधीन नहीं होता किन्तु आक्षात् अपने आत्माहीके आधीन रहता है वही व्यवहार क्रियाके आह्वारोंके प्रवचसे वशधीन हो जाता है तथा वहीके अपन आत्माहीके आश्रयमें रहनबाधा ऐसा निश्चय धर्मध्यानरूपी प्रधान परम आबश्यक कर्म होता है ।

एसा निरंतर परमतपश्चरणमें लक्ष्मीन परम बीतरागी योगीश्वर कहते हैं । प्रयोजन यह है कि मन बचन कायको सुप्तियोंमें शुभ वेषी जो परम समाधि बही है वसत जिक्रका वेषा जो परमयोग बही जब कर्मोंक बिनाश करनका कारण है तथा बही आक्षात् मोक्षका कारण होनस निर्वृत्तिका माग है, वेषी व्युत्पत्ति है । वेषा ही श्री अमृतचन्द्र-सूरीन कहा है—

जा अतीन्द्रिय सुखके डोलुगी हैं तथा जिन्होंने अपना चित्त  
 आत्मतत्त्वके बोधमें डबा दिया है उनको सुन्दर आनन्दसे भरपूर  
 यह उत्तम तत्त्व प्राप्त होत है । जो यती अत्यन्त अपूर्व अपने  
 आत्माकी भावनास्य उत्पन्न जो परम सुख तत्त्वके डिये परन करते हैं ।  
 वे ही यती निश्चय करके जीव मुक्त होते हैं दूसरे नहीं । मैं  
 मात्र एक ही परमात्मतत्त्वकी पुन पुन भावना करता हूँ, जो  
 दृढरहित है, अद्वैत है, परम हितकारी इष्ट है तथा सर्व पापोंसे  
 दूर है ।

फैसा हूँ मुक्ति तियाका अभिज्ञापी हूँ, ससारके सुखोंका  
 निरभिज्ञापी हूँ, मुक्तको परमात्मतत्त्वके सिवाय अन्य पदार्थोंके  
 संयच करनेसे कौनसे फलकी प्राप्ति होगी अर्थात् कुछ न होगी ।  
 भाषा—जो जिज्ञाको चाहे उसीको भजै । जो परमात्मा  
 होना चाहता है उसके डिये उसी तत्त्वकी भावना कार्यकारी है ।

इति श्रीकबिजनरूपी कमलोंके डिये सूर्य, पंचेन्द्रियके बिस्तारसे  
 रचित शरीरमात्र परिमलके घारी, भोपन्नवभ-मलघारी  
 देव द्वारा रचित श्रीनियमसार प्रथमी तारपर्यवृत्ति  
 नामकी सस्कृतव्यस्यया विममें परममक्ति  
 नामा दशवा सुवक्त्रपूर्ण  
 दृष्या ॥ १४० ॥



## ११-निश्चयावश्यकधिकार

आगे सामयिक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, स्तुति, वंदना, कायोत्सर्ग ऐसे छ आवश्यक व्यवहार उनसे प्रतिपक्षी जो शुद्ध निश्चय वसुधा अधिकार कहते हैं ।

प्रथम ही कहते हैं कि जो निरंतर अपने बश है वही के निश्चय आवश्यक कर्म होता है—

जो ण हवदि अण्णवसो, तस्म दु कम्म भणति आवास ।

कम्मणिणासणजोगो, णिच्चहिमगोत्ति पिज्जुत्ति ॥ १४१ ॥

सामान्यार्थ—जो दूसरेके बश नहीं रहता है उसीके आवश्यक कर्म होता है । यही कर्मके नाश करनेमें समर्थ मोक्षका मार्ग है, ऐसा कहा गया है ।

विशेषार्थ—जो कोई निश्चयसे भोजनेद्र मागमें यथार्थ विधिके अनुष्ठान आचरण करनेमें कुशल अथात् अतुर है, जो वदा ही अंतरंगमें डीन होकर किसी भी अर्थके आधीन नहीं होता कि पु आश्वास्य अपने आत्माहीके आधीन रहता है वही व्यवहार क्रियाके आह्वारोंके प्रपञ्चे वशाधीन हो जाता है तथा वहीके अपने आत्माहीके आश्रयमें रहनेवाला ऐसा निश्चय धर्मस्थानरूपी प्रधान परम आवश्यक कर्म होता है ।

ऐसा निरन्तर परमव्ययणमें लक्ष्योन्त परम बीतरागी योगीश्वर कहते हैं । प्रयोजन यह है कि मन बचन कायको सुप्तिवर्षे सुप्त ऐसी जो परम समाधि वही है अक्षय निश्चय वेषा जो परमयोग वही सर्व कर्मोंके विनाश करनेका कारण है तथा वही आश्वास्य मोक्षका कारण होनेसे निर्वृत्तिका माग है ऐसी व्युत्पत्ति है । ऐसा ही अमृतचन्द्र-सूक्ति कथा



आत्मा दोषयोगको प्राप्तकर स्वयं अपने वस्वरूप होत हुए तथा नित्य आनन्दसे व्याप्त सब ज्ञानस्वरूपी शरीरमें हुए हुआ जो प्रकाश सचसे अपनी वपतिको स्फुरावमान जो स्वयं स्वयं राष्ट्रीय समये निबाध करनेवाली मुक्ति—इहमीको प्राप्त करना है।

टीकाकार कहते हैं कि—आज्ञात् अपने आत्माके अर्थात् रहनेवाला जो आवश्यक कर्मरूपी धर्म जो अतिव्यक्त मन्दिदान मृत्पिण्डी आत्माहीकेविषये नियतरूपसे प्राप्त होता है, यही धर्म कर्मादि अथ धर्ममें कुरक है और, मोक्षका एक अथ यही मार्ग है। इसहीके द्वारा मैं जिस तरह होकर उभरूँ है बिबलपरहित सुखको प्राप्त होता हूँ।

आगे बदे हैं कि जो स्वाधीन परम बीतरागी योगीश्वर हैं—  
उहीके यह परम आवश्यक कम होता है—

ण यतो अवसो अरम,—स्त वम्ममायासयति बोधव्या ।

जुचित्ति उनाअति य, गिरवययो होदि जिज्जेत्ती ॥ १४२ ॥

सामान्याथ—जो कभीके स्वाधीन नहीं है वह अवसो है। स्वाधीनके आवश्यक कर्म होता है ऐसा जानना चाहिये। यही उपाय है तथा यही अवयव परद्रव्य अर्थात् सचसे रहित निवृत्ति होती है।

विशेषाथ—निश्चयसे योगी अपने आत्मस्वरूपके प्रज्ञ करके कारण अन्य पदार्थोंके ज्ञान नहीं होता है अतएव अवसो अर्थात् स्वाधीन रहता है। जो अवसो परम बीतरागी योगीश्वर होता है कमक निश्चय धर्मव्याप्त स्वरूप जो परम आवश्यक कर्म को अवयव ही होता है ऐसा जानना चाहिये। निरवयव (कायस रहित) होनेका उपाय उचित है।

अवयवी अर्थात् काय सचका अभाव जो निरवयव है। जो

रक्षणोंके बन्ध नहीं होता बही निरबध्द अर्थात् अज्ञान हो जाता है एही निरुक्ति अर्थात् व्युत्पत्ति है ।

टीकाकार कहते हैं कि—जो कोई योगी अपने आत्महितमें हीन रहता है वह शुद्ध जीवात्मिकायको छोड़कर अन्य पदार्थोंके बन्ध नहीं होता है—इस प्रकार अवस्थाका होना ही निरुक्ति है । इसी कारणसे इस योगीके अमूर्तीकरण प्रसन्न होता है । कैलाश के अमूर्तीकरण, जो इस जोगीके पापहीन अवस्थाके नाशसे निरव्य युगात्मान होती हुई जो ज्योति बससे प्राप्त जो स्वाभाविक प्रकृत्या बससे युक्त है ।

भाग कहते हैं कि जो भेदरूप उत्पन्न अर्थात् व्यवहार रत्नत्रयको परिणतमें रहता है वह जीवके अवस्थाका नहीं होता है—

बहुट्टि जो सो समजो, अण्वसो होट्टि अमुहभायेण ।

तम्हा तस्म दु कम्म, आवस्मयलवणण ण ह्ये ॥ १४३ ॥

सामा बाध—जो कोई भ्रमण अर्थात् मुनि अपने अशुभ भावोंके द्वारा आत्माके विनाश अथ पदार्थोंके बन्ध हो जाता है इसी कारणसे उसके आवश्यक कर्म नहीं होता है ।

विशेषार्थ—अपगत राग आदि अशुभ भावोंके द्वारा जो कोई भ्रमणमात्र अर्थात् द्रव्यद्विगो मुनि बन्ध करता है और अपने स्वरूपसे निम्न जो अशुभ परद्रव्य वनके बन्धने का जाता है वह ज्ञान व रत्नत्रयमें परिणत करनेवाले जीवके अवनत अवस्था ही है अज्ञान जिसका एका धर्मध्यान अज्ञान जो परम आवश्यक कर्म ही नहीं होता है ।

मो द्रव्यद्विगो धारके अपन  
विमुक्त अज्ञानसे उदासीन होकर

ससका क्षेत्र व मकान व धन धान्यादि मेरा है ऐसा मतमें  
किया करता है ।

भावार्थ—ऐसे द्रव्यद्विगीके धर्मध्यान नहीं हो सकता ।

टीकाकार कहते हैं कि—हीन भवनरूपी मकानमें भरे हुए  
अन्नकारके समूहसे व्याप्त ऐसे मृणके घरको भी जो मुनि  
वीर्य वैराग्य भावसे छोड़ चुके हैं वे ही मुनि यदि हम सभारि  
थीके अनुपम बदनके स्थानको याद करते हैं तो ऐसे मुनिपोंका  
यह कोई नवीन मोहनीकर्मका काय है ।

इस कठिकाण्ड पंचमकालमें कभी कोई ही पुण्यारमा जीव  
मुनि होकर मिथ्यातत्वादि कलकत्ती कीचसे अलग रहता है  
और अपने सत्य आत्मिक धर्मकी रक्षा करता है । केषा है मुनि,  
जो अनक प्रकारके परिप्रहोते अलग है तथा पापरूपी बनीके दग्ध  
करनको भांग है सो मुनि द्रव्यलोक और परलोकमें देवोंसे  
पूजा जाता है ।

इस लोकमें यह तपस्या सम्पूर्ण बुद्धिमान सत पुठथीको  
प्रार्थोसे प्यारी है तथा निरंतर ही इन्द्रोस नमस्कारके योग्य है  
ऐसी तपस्याको पाकरके जो कामके अन्नकारसे व्याप्त संसारिक  
सुखमें रमता है सो महामुख जडबुद्धि है । खेद है कि अपने  
अपना बहुत बिगाड किया । जो मुनिवेषको धारनेबाडा भी है  
परतु आरमाके विषय अय पर पदार्थके आधीन है वह संसारी  
है और निरय दुस्त्रोंको भोगनेबाडा है । तथा जो अपने आरमाके  
बश है वह जीवनमुक्त ही है, भी जिनेश्वर देवसे कुछ ही कम है ।

अतएव तार्थकर भगवानके मार्गके भारी मुनिधर्ममें जो  
मुनि रचबश हैं, अपने आरमाके ही आधीन हैं वे ही शोभाको  
पाते हैं । परतु जो आरमाके विषय पर पदार्थके बश होते  
हैं वे ऐसे ही प्रतिभापते हैं जैसे चाकरोक समूहमें वह चाकर

जिज्ञासु को राजा अपनी सुशामर व हॉमि हॉ मिष्ठा देनके कारणसे प्यार करता है अर्थात् जो सुशामर राजबलव चाकर होगा वह सदा पराधीन होगा । ऐसा ही वह आत्मस्वरूपसे बाह्य मुनि है ।

आगे फिर भी अन्यके आधीन जो अशुद्ध अवस्थामा जीव वहीका उद्भूत करते हैं—

जो चरदि संजदो खलु, सुदमावे सो इरेड अण्णचमो ।

तदा तस्म दु पम्म, आरासपलक्खण ण हने ॥ १४४ ॥

सामा पर्ये—जो सयमी मुनि शुभ भावमें प्रवर्तन करता है वह भी अन्यके आधीन हो जाता है इच्छित्ये वलके आवरमक उच्यते हे जिज्ञासु, ऐसा कम नहीं होता है ।

विशेषार्थ—आ कोई धातु जिनेन्द्रके मुख्यमददद्वारा प्रगत को परम आचार शास्त्र वलके क्रमसे चर। संयमको पाळते हुए सुसोपयोगमें चलते हैं अर्थात् व्यवहारिक समध्यानमें परिणत करते हैं । अतएव बाह्य आचरणके पाळनेमें प्रयत्न करते हैं ।

स्वाध्याय काळको देखकर स्वाध्याय करते हैं, प्रतिदिन एकबार भोजन करके चार प्रकारके आहारका त्याग करते हैं, वीनों संश्याओंमें अर्थात् प्रातः दोपहर और सायको १०० इच्छे चंदनीक अरह्य भगवान् परमेश्वरकी स्तुति पढ़ते हैं, वीनों काळोंके नियमोंमें जीन रहते हैं इच्छ प्रकार रात्रि दिनमें ग्यारह क्रियाओंमें वरपर रहते हैं ।

तथा प्राञ्चिक, माञ्चिक, आतुर्माञ्चिक तथा वार्षिक वतिक्रमण पाळके मुननेसे परवन्न हुमा जो संतोष वलके रोमाञ्चित शरीर हरे आते हैं और जनशन, अवमौर्ष्य, रक्षपरिस्थाप, श्रुतिपरिस्मरण, विविष्टशयनासन और चायकलेग ऐसे छ बाह्य तर्पोंमें अथा अवस्थासे जीन रहने हैं तथा स्वाध्याय, ध्यान, तथा

शुभाचरणसे गिरकर फिर वहीमें स्थित होना ऐसा जो प्रायश्चित्त तथा व्रतवैद्यावृत्त और ध्युरमर्ग ऐसे छ अतरंग तपोंके आचरण करनेमें चतुर बुद्धिमान होते हैं कि तु वे निरपेक्ष अर्थात् इच्छा रहित मुनि वाक्यात् मोक्षका कारण जो आत्मस्वरूप उसके आश्रयरूप जो आश्चर्यक कर्म अर्थात् निश्चयसे परमात्मतत्त्वमें विभ्रान्तिरूप जो निश्चय धम ध्यान तथा शुद्ध ध्यान इनको नहीं जानते हैं इसलिये आत्मस्वरूपसे भिन्न जो पर द्रव्य इनके आधीन होते हैं, इसलिये इनको अवश्य कहते हैं ।

य हा पराधीन मुनि तपश्चरणमें त मय अपने चित्तको रखते हुए स्वर्गलोक आदि क्लेशोंके शुभोपयोग जनित फलोंको देनेवाले रागरूपी अग्निके जगारासे पचते रहते हैं ।

परन्तु जब इ हीको अर्थ त निकट भव्यताके गुणोंका उदय होता है तब ये ही परम गुणकी कृपासे प्राप्त जो परम आत्मीक, तत्त्वका भद्रान परिज्ञान और चारित्र्यरूप जो शुद्ध निश्चय रत्नत्रय उसमें परिणतिकरके निर्वाणके सुखको प्राप्त करते हैं ।

टीकाकार कहते हैं कि—हे मुनियोंमें प्रधान ! तू स्वर्गलोक आदिके सुखामासुरूपी क्लेशोंमें प्रीति करना छोड़, निर्वाणका कारण जो परम शुद्धोपयोग उसका कारण जो रक्षाभाबिक परमात्मा उसको मज । फसा है परमात्मा, जो परम आनन्द-स्वरूप है, सर्वथा निमज्ज ज्ञानका स्थान है, सब प्रकारके आवरणोंसे रहित है तथा सुनय और कुनयके प्रपंच-जाड़ोंसे दूर है ।

फिर भी पराधीन साधुका ही स्वरूप कहते हैं—

दृष्टगुणपञ्जपाण, चित्त जो कुण्ड सो वि अण्वसो ।

गोहाधयारवदगय,—समणा कइयंति परिसर्य ॥ १ ४५ ॥

सामान्यार्थ—जो कोई साधु छ द्रव्योंके गुण और पर्यायोंके

चित्तबलमें अपने चित्तको रखता है वह भी अथके बश है-  
पराधीन है, ऐसा मोहके अन्कारसे दूरदर्ती महा मुनिपोंने  
कहा है ।

विशेषार्थ—जो कोई द्रव्यविग्वारी साधु भीअर्हैत भगवान  
द्वारा प्रकाशित जो मूळ पदार्थ और उनके अर्थाको बणन करनेमें  
शक्तिमान है ऐसा हीकर कभी जीव, पुत्रक, धर्म, अथर्म, आकाश,  
काळ इन छ द्रव्योंमें अपने चित्तको धरता है कभी उन द्रव्योंके  
मूर्तीक अमूर्तीक भेदन अचेतन गुणोंके बीचमें अपन मनको  
जोड़ता है, कभी उन द्रव्योंको गुणमें परिणमनरूप अर्थवर्षाओंमें  
कभी उन द्रव्योंके स्वरूपमें परिणमनरूप क्यत्रनपयावोंमें बुद्धि  
दता है पर तु तीनों काळोंमें आचरणरहित निरय आनन्द उभयगता  
धारी ऐसा जो अपना कारण समसधार अर्थात् परमारमा उभके  
स्वरूपमें लपकीन जो अहज ज्ञान आदि शुद्ध गुण और शुद्ध  
पयावोंको सेबनेवाळा अपना आत्मा तमके तद्वर्षमें कभी भी  
अपन उपयोगको नहीं संयोग करता है, इसा कारणसे ऐसा  
तपोधन अर्थात् मुनि भी अ यवश है-पराधीन है ऐसा कहागया है ।

एगून मोहनी और चारित्र मोहनी कर्मके बंध अर्थात्  
क्षय करनेवाले तथा परमारमतद्वकी भावनासे सम्पन्न जा बीतराग  
सुखरूपी अमृत पदके पीनेमें दत्तचित्त ऐस जो महामुनि परम-  
भतकेबी आदिक वे निश्चयसे अ यवश अर्थात् पराधीन मुनिवा  
ऐसा ही स्वरूप कहने है ।

ऐसा ही अ यत्र भी कहा है । जो परमद्व स्वरूपमें लपकीन  
यती है उनको आत्मकायके सिवाय अ य मरयश्च और परोक्षसे  
बिच्छिन्न चित्तकोंसे क्या ज्ञान है ? ।

टीकाकार कहते हैं कि—अथवक जीवोंके चित्त है अथवक ही  
सधार है, जैसे अथवक ईधन है तभीतक स्वाहाताय (अग्नि) का  
बदना है ।

आगे साक्षात् स्वाधीन परम जितयोगीश्वरका स्वरूप करते हैं—

परिचत्ता परमार्थ, अप्पाण क्षादि णिम्मलसहाय ।

अप्पवसो सो होदि हु, तस्म दु कम्म भणति आराम ॥१४६॥

सामान्यार्थ—जो साधु परमभावको त्यागकर निमल स्वभाव धारी आत्माको क्याता है वही निश्चयसे आत्मवश अर्थात् स्वाधीन होता है । तथा उसीके आवश्यक कर्म हुआ ऐसा करते हैं ।

विशेषार्थ—जो कोई मुनि उपमारहित कीतराग निरजन स्वभावको धारनेके कारण श्रोत्रियक आदि परमार्थको बिच्छुक स्वयं देत है और मन बचन कायसे अगोचर सदा ही आचरण रहित होनेसे निर्मल स्वभाववाले तथा संपूर्ण पापरूपी बोर बैरियोंकी सेनाकी पताकाको लूटनेवाले निज कारण परमारमाको ध्याते हैं वे ही आत्मवश हैं, ऐसा कहागया है ।

भेद और उपचाररहित निश्चय रतनत्रय स्वरूपके धारो ऐसे साधुके ही सबे बाह्य क्रियाकाट आडम्बर अम्बुधी नानाप्रकार विकल्पोंके महा कोलाहल सनसे बिरोधी ऐसा जो महा आनन्दका देनेवाला निश्चय धर्मध्यान और शुद्धध्यानरूप परम आवश्यक कर्म भी होता है ।

टीकाकार कहते हैं कि—यह उदार बुद्धिका धारी स्वाधीन योगियोंके समूहमें मुख्य मुनि जयघ ठ होहु । ऐसा है मुनि, जिसने ससारके कारण आत्मको नष्ट कर दिया है तथा पूर्वमें पापे हुए कर्मोंके समूहोंको बिध्वंस किया है । यही साधु अपने मध्यामे प्रगट और हृद बिबेक अर्थात् भेदज्ञानसे हृपे सहित प्रवया संसारसे निर्वृत्तिरूप मोक्षको प्राप्त करता है । फेरी है

जहा यथार्थ शुद्ध ज्ञान सकाशमान है तथा जो है । जि होने कामदेवके पाच बाणोंको सीक

साक्षात् है, जो दर्शन ज्ञान चारित्र्य तप धीर्य ऐसे पाच आचारोंसे शोभनीक हैं आकृतिवान हैं तथा मायाचारसे रहित हैं ऐसे शुद्धके बन्धन ही मुक्तिरूपी सपदाके कारण हैं । जो कोई निदानके कारण जिनेश्वरके मार्गको इस प्रकार जानकर निर्बाणकी सरदाको प्राप्त करता है तबको में पुन पुन नमस्कार करता हू ।

हे योगीश्वर ! अपने आत्मरक्षमायके बशवर्ती योगके होनेसे सुन्दर स्त्री और सुवर्णकी इच्छाको दूर करनेवाले तुम हो । जो कामदेवरूपी व्याधके बाणोंसे पीड़ित चित्त हैं उनको इस सप्ता-वनमें कोई बघानेवाला नहीं है । अनशन आदि तपश्चरणोंसे तो मात्र शरीरका सूखना ही फल है और कुछ नहीं है पर तु में आपके चरण कमलोंकी चित्तमें बवलीन हू तथा स्वाधीन हू इससे मेरा जन्म सदा सफल है ।

स्वभाविक तेजके समूहमें मग्न पृथ्वी जय होहू । फेसा है यह तत्त्वज्ञानी नर, जो अपने आत्मिक रसके प्रसाहमें पापोंको सब तरफसे धो चुका है । स्वभाविक समताके रससे पूण है, पुन्यात्मा है, समीचीन है, अपने आधीन अपने मनको किये हुए नित्य विराजमान है तथा अत्यंत शुद्ध विद्वत् समान है ।

श्री सषड्ध धीतराज भगवानके और स्वाधीन आत्मबश योगीके कहीं भी कोई भेद नहीं है । पर तु हम भोग मूर्ख जडबुद्धि हैं, चेत य स्वभावको न जानकर मोही हैं ।

इस सप्तामें एक बड़ी महामुनि सदा धन्य है जो अपने आत्माके बग है तथा अन्य पदार्थमें बुद्धिको नहीं रखनेवाला है और जो सबे कमकाटासे बाहर रहनेवाला है ।

अगे शुद्ध निश्चय आवश्यक कमकी प्राप्तिके उपायके स्वरूपको कहते हैं—

आवागं जद इच्छसि, अप्ससहायेसु वृणहि यिरमात्र

सामण्यगुण, संप्रण होदि जीवस्त ॥ १



सामा यार्थे—यदि तू आबश्यक कर्मको चाइता है तो तू आरमावमावोंमें स्थिरभावको कर । इधी करके जीवक सामयिक गुण सम्पूर्ण होता है ।

विशेषार्थे—इस सत्कारमें सामायिक, प्रतिक्रमण आदि बह्य छ आबश्यक कर्मके प्रपञ्चजादोंके कड़कट्ट हट्को कहने तथा सुननेसे उदात्त हो शिष्य । यदि तू सत्कारवृत्त समूहके मूढको काटनेवाले कुशलाङ्गके समान गुह्य निश्चय धमध्यान तथा गुह्य ध्यानरूप अपने ही आरमाके आश्रयमें रहनेवाले आबश्यक कर्मको चाइता है तो तू समस्त विकल्पजादोंसे मुक्त निर्जन अपने ही परमात्माके स्वाभाविक ज्ञान स्वाभाविक वदान चारित्र तथा स्वाभाविक सुख आदि भावोंमें निरन्तर अपने निश्चय स्थिर भावको कर । इधी उपायस निश्चय सामायिक गुण उत्पन्न होता है ।

जो जीव मोक्षका इच्छुक है उसके मात्र बाह्य छ आबश्यक क्रियाओंस क्या सिद्धि होगी ? अर्थात् कोइ भी उपादेय अर्थात् प्रदण करने योग्य फलका लाभ न होवेगा । इस कारण मोक्षरूपी स्त्रीके समोग तथा हास्यमें प्रवीण ऐसा जो क्रियारहित निश्चय परम आबश्यक कर्म वसहीके द्वारा जीवको सामायिक चारित्रकी पूर्णताका लाभ होवेगा ।

परा ही श्री योगे द्रष्टवने कडा है—यदि निमित्तस तेरा मन अपने स्वरूपसे बाहर जाता है तो तुझे सर्व दोषोंका प्रसंग आता है और यदि हे मन्थ ! तू फिर उर अंतरगमें प्रप्र हो अपने चित्तको आपमें दबडन रखता हुआ स्थिर स्वभावरूप हो जाता है तो सत्कारका अंत हो जाता है ।

टीकाकार कहत हैं कि—इस प्रकारका जो अपने आरमामें निवृत्त रूपसे रहनेवाला आचरण है सो सर्व संसारके दुस्त्रोका है तथा मुक्तिरूपी सु दर लक्षणाये बरवन्न होनेवाला उसका अतिक्रमण कारण है, ऐसा मछे प्रकार समझकर

जो कोई अपरहित समय अर्थात् गुहारमात्ररूपको धर्मज्ञानता है वही मुनिर्घोषा पति छव ब्रह्म क्रियासे इटा हुआ पाप बनके ब्रह्म बननेको अपि समान होता है ।

आगे शुद्धीपयोगके सम्मुख जो शिष्य बनको शिक्षा करत हैं—

आरामेण हीनो, पमद्वो होदि चरणदो समणो ।

पुत्रुत्तकमेण पुणो, तज्ञा आरामयं बुज्जा ॥ १४८ ॥

सामान्य—जो भ्रमण अर्थात् साधु आश्रयक कर्म नहीं करता है वह अपन चरित्रस भ्रष्ट है । इसलिये पहले कहे हुए क्रमसे ही आवश्यक काम जान चाहिये ।

विशेष—उपबहार नयसे जो जो मुनि घमटा, रतुति, बचना, प्रयासवान, प्रतिक्रमण, चापेक्षणे आदि छ आवश्यक क्रियाओंको नहीं करता है वह साधु चरित्र भ्रष्ट होता है । तो फिर जो शुद्ध निश्चय नयके परम आश्रयमात्र भ्रष्टसे कहे हुए जो निश्चय समाधि स्वरूप परम आवश्यक क्रिया पक्षसे रहित है जो मुनि तो निश्चय चरित्रस भ्रष्ट हो है ।

इस लिये पहले गाथाओंमें स्थायी परम बीतराग योगीश्वरके लिये जो निश्चय आवश्यक क्रियाका क्रम बताया है उसके अनुसार अपन आरमाहीमें है आश्रय जिनका ऐसे निश्चय धर्मध्यान तथा शुद्धिमानके द्वारा परम मुनिको घदा आवश्यक काम करना योग्य है ।

माहाय—पथमावायामें मुनिको उपबहार छ आवश्यक करने ही चाहिये पर तु दृष्टि परमसमाधिस्वर निश्चय आवश्यक काममें रखनी चाहिये तथा निश्चय हीको उपदेश समझना चाहिये । इस अभ्याससे जब सातवें गुणस्थानके अंतमें पूण निश्चय धर्मध्यानका लाभ करता है तथा आठवें शुद्धिमानको पाता है तब ब्रह्म आवश्यक अपने आप

है। क्योंकि वह अवस्था विकल्परहित निश्चय समाधिहीकी है।

टाकाकार—कहते हैं कि आत्माको अवश्य स्वाभाविक एक परम आवश्यक कर्म करना चाहिये। कैसा है यह कर्म, वाप-समूहीकी हरनवाडा तथा मोक्षका मुख्य कारण—मूळमूत है। जो इस कर्मको करता है वह निश्चय अपने आत्मीक रसके विस्तारसे पूण, पवित्र और समीचीन कहलाता है तथा अविनाशी अपने किसी अपूर्व सुखको प्राप्त करता है। जो मुनी ३ स्वयं अर्थात् स्वाधीन हैं, अपने आत्मरूपमें लक्ष्मीन हैं वहीको अपने आत्माका अनुभवरूप यह आवश्यक कर्म प्राप्त होता है। कैसा है यह कर्म, मुक्तिके शत सुखका एक अद्वितीय कारण (मूळ) रूप है।

आगे कहते हैं कि जो तपोधन आवश्यक कर्मसे रहित है वह बहिरात्मा है—

आवासण जुत्तो, समणो सो होदि अंतरगण्णा ।

आवासणपरिहीणो, समणो सो होदि बहिरगण्णा ॥ १४९ ॥

सामा यार्थ—जो मुनि आवश्यक कर्मकरके रहित है वही अंतरंग आत्मा अर्थात् अतरात्मा है और जो आवश्यक क्रियाअसे रहित है वह मुनि बहिरात्मा निश्चयहृष्टि है।

विशेषार्थ—भेद और उपचार रहित रतनत्रय स्वरूप जो अपना आत्मा वसमें अनुष्ठान (आचरण) करना वही निश्चय परमावश्यक कर्म है वससे निरंतर संयुक्त ऐसा जो अपने आत्मामें हीन स्वाधीन परममुनि सो सर्वोत्कृष्ट अतरात्मा है। ऐसा है यह महा भ्रमण, जो सोडह कपाय और नौ नोकवाय इनके अभावसे होनेवाला जो क्षाणमोह नाम बारहवें गुणध्यानकी पदवी लक्ष्मी प्राप्त हो चुका है। जो ही महारात्मा है, अतरात्माओंमें श्रेष्ठ

है । तथा धर्मम अर्थात् अक्षयम रहित अक्षयस्य सन्ध्याद्यो सो  
अथय अक्षयमा है ।

इन दोनोंके मध्यमें धर्म ही मध्यम अक्षयमा है अर्थात्  
पञ्चमगुणध्यानपञ्च मध्यम अक्षयमा है । ये दोनों ही अक्षयमा  
अपने-गुणध्यानके योग्य व्यवहार निश्चय आक्षयक कमकी  
करनवाले हैं । तथा निश्चय व्यवहारनय द्वारा कही हुई जो परम  
आक्षयक क्रिया कर्ममें रहित बहिरात्मा है । ऐसा ही  
सो मागवकाशमें कहा है ।

टीकाकार कहते हैं कि—योगी निश्चय ही स्वाभाविक परम  
आक्षयक कर्मसंयुक्त हैं तथा संसारस्य अक्षय ओ प्रबल सुख  
दुःखरूपी बनी धर्मसे दूर रहनवाले हैं । इसलिये ये योगी निश्चय  
अपन आत्मामें हीन अक्षयमा है तथा जो अपन आत्मपरमाक्षय  
भङ्ग हैं वे बह्य अक्षय हीन बहिरात्मा है ।

आगे बह्य अक्षयतर ओ अक्षय अर्थात् अपन कर्मके त्यागका  
धर्मेश करत है—

अन्तराक्षयिजप्ये, जो बह्य ओ द्वेय बहिरात्मा ।

जप्येसु जो ष बह्य, सो उच्यते अन्तरात्मा ॥ १५० ॥

सामान्यार्थ—जो अक्षय ओ बह्य अक्षय अर्थात् अपन  
रक्षणामें बतन करता है परन्तु स्वल्प अक्षयन नहीं करता वह  
बहिरात्मा है किन्तु जो इन अक्षयमें नहीं रहता बसोकी  
अक्षयमा कहते हैं ।

विशेषार्थ—जो कोई जिनद्विगमारी तपोधनामास अर्थात् मुनि  
नहीं किन्तु मुनिवा दीक्षनेवाला पुण्यकर्मकी इच्छा करके स्वाध्याय,  
प्रत्याख्यान, स्तवन आदि बह्य कार्योंमें अक्षय करता है अर्थात्  
अक्षयको कहता है तथा भोजनपान शयनादिके  
आदर पानेका आक्षय होकर अक्षय

वस्व मनमें रुद्धता है सो बहिरारमा जीव है । परन्तु जो अपने धारणाके ध्यानमें डीन होकर तथा सम्पूर्णतया अंतरगमें सम्मुख रहकर शुभ तथा अशुभ समस्त विवस्व जाडोंमें कभी नहीं घटन करता है सो ही परम तपोवन साधु साक्षात् अंतरारमा है ।

ऐसा ही भी अमृतघटसूरीने कहा है कि अपनी इच्छापूर्वक उल्लङ्घते हुए समस्त विवस्व जाडोंको तथा महा भारी नयोंकी पक्षरूपी भेजीको इस प्रकार उल्लङ्घन काके जो बतैता है वही अंतरग और बहिरग दोनों अवस्थाओंमें एक समता रखमई स्वभाव जो अपना ही अनुभवमात्र भाव है उसको प्राप्त करता है ।

टीकाकार कहते हैं कि—संसारके भयको पैदा करनेवाले सब अंतरग और बहिरग जाडोंको त्यागकर तथा गिर्य समता रखमई एक चैत यके समरकारमात्र स्वरूपको रमरण करके ज्ञान व्योतिके द्वारा प्रकाशमान है अपना अभ्यंतर जिसका पैदा अंतरारमा मोहके क्षय होनेपर किसी परम तपोको अंतरगमें साक्षात् देखने लगा ।

आगे कहते हैं कि अपने धारणाके आभय जो शुद्धिमान सो ही उपादेय है—

जो धर्मसुकक्षाण,—मिह परिणदोमोऽवि अन्तरगप्या ।

क्षाणविहीणोऽसमणो, बहिरप्या इदि विजाणीदि ॥ १५१ ॥

धामा वार्थ—जो साधु पुठव धर्म ध्यान और शुद्ध ध्यानमें परिणमन करता है वही अंतरारमा है । तथा जो मुक्ति ध्यानसे रहित है सो बहिरारमा है ऐसा जानो ।

विशेषार्थ —जो साक्षात् अकृष्ट अंतरारमा भगवान् क्षीणदधाय है उक्त क्षीण मोह भगवाद्के निश्चयसे १६ कषाय और ९ नोक

प्रायः के अन्तर्गत वर्णन मोहनी और चारित्र्यमोहनीरूपी अवधारणा  
विषयगत हैं इतिहासे यह महारमा तथाभाविक चैतन्यका विनाश  
है अथवा प्रसन्नता ऐसे अत्यन्त अपूर्व अवस्थाको शुद्ध निश्चय धर्म  
शुद्धध्यानोत्तर निरपेक्ष व्यापक है । परन्तु जो इन दोनों ध्यानोत्तर रहित  
द्रव्यवैशिष्ट्यी द्रव्यभ्रमण है वह बहिःकारमा है ऐसा है किन्तु । तुम जानो ।

तोकाकार कहत है कि—यही अमल मुनि है जो कि महा  
निर्मल धर्म और शुद्ध ध्यान मृतमहै अमल रसमें बतन करता है,  
जो इन ध्यानोत्तर रहित है वह बहिःकारमा है । मैं पूर्वमें कहे हुए  
अंतरात्मा योगीकी शरणमें प्राप्त होता हूँ । तथा केवल शुद्ध निश्चय  
नयका स्वरूप यह है कि वह बहिःकारमा है अथवा वह अंतरात्मा  
है ऐसा जो विकल्प को सधाररूपी समशी ( जो ) धर्मोको धार  
करनेवाला है । जो यह विकल्प कुधी जो महा विज्ञानरहित  
मिथ्यादृष्टी नहींको होता है परन्तु सुधी जो अन्वयदृष्टी है उनके  
विकल्प नहीं होता ।

आगे परम चोतराग चारित्र्यमें लीन जो परम तपोधन मुनि  
उनका स्वरूप कहते हैं —

यद्विचक्षणपहुदिकिरिय, कुर्वन्तरे पिच्छयस्य चारित्र्य ।

तेण दु विरागचरिय, समणो अन्वुद्धिदी होदि ॥ १५२ ॥

सामान्यार्थ — प्रतिक्रमण आदिकी निश्चय चारित्र्यरूप क्रियाको  
करता हुआ जो रहता है, यही भ्रमण इमी निश्चय चारित्र्यके  
द्वारा चोतराग चारित्र्यमें स्थिर होता है । \*

विशेषार्थः—जो इस लोकसम्बन्धी समस्त व्यापारको त्याग  
करके साक्षात् मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाला महा मुमुक्षु साधु  
अथवा पण इति शब्दोंके व्यापारोंका त्यागनसं निश्चय  
-सत् क्रियाओंको करता रहता है यही परम तपोधन

करके अपन आत्मोके स्वरूपमें विभक्ति लेना है लक्षण जिसका ऐसे परम भीतराग चारित्रमें तिष्ठता है।

टीकाकार कहते हैं कि—नष्ट होगया है दर्शन और चारित्रः मोह जिसका ऐसा अतुल्य महिमाका धारी धारणा सात्त्विक सुखको करनवाले कर्मसे मुक्त होता हुआ मन्त्रहित मोक्षके मूल चारित्रमें तिष्ठता है वही मुनि आचारकी राशि अर्थात् निधिस्वरूप है। मैं समता स्वरूप अमृतमई समुद्रके बढ़ानेवाले चंद्रमाके समान ऐसे उपोनिधिको बद्ध करता हूँ।

आगे सब बचन अम्बकी व्यापारके त्यागका उपदेश है—

वयणमय पटिक्रमणं, वयणमय पचक्राण नियम च ।

आलोयण वयणमय, त सर्व्व जाण सज्ज्ञायो ॥ १५३ ॥

सामा यार्थे — बचनमई प्रतिक्रमण, बचनमई प्रत्याख्यान तथा नियम, और बचनमई आलोचना ये सर्व्व स्वाध्यायमें गर्भित हैं ऐसा जानो।

विशेषार्थ — पाश्विक भासिक आदि प्रतिक्रमणकी क्रिया पढ़ना तथा नियोपक आचार्यके मुखसे प्रगट समस्त पापोंके क्षयका कारण जो द्रव्यप्रत उल्ला पाठ इत्यादि सब बचन बगण के योग्य क्रिया जो पुत्रक शब्दके जाभय अङ्गमई हैं। इसलिये मह्य योग्य नहीं है। प्रत्याख्यान, नियम, आलोचना ये सर्व्व पुत्रक बचनमई हैं इसलिये स्वाध्याय ही हैं, ऐसा ही शिष्य तुम जानो।

टीकाकार कहते हैं कि—इसलिये यह मन्वजोब जो निर्बाणस्वो ओके स्तनयुगलके रूपशके सुखको इच्छा करता है सो सर्व्वदा समस्त बचनकी रचनाको छोड़कर निरय जानेंद आदि अतुल्य महिमाके धारक अपने आत्मस्वरूपमें स्थित होता है। वही एक इस अगतके जाबको तुम्हें समान देखता

हुआ रहता है । ऐसा ही कहा है—कि वाचना, पृथना, अनुपेक्षा, धर्मोपदेश और आश्रय य सब श्रुति मगल सहित किये जानेसे पाप प्रकारके स्वाभ्यास होते हैं ।

आगे कहते हैं कि शुद्ध निश्चय धमध्यान स्वरूप हो मति क्रमग आदि करने योग्य है—

जदि सकृदि कादु जे, पटिक्रमणगादिं नरज्ज हाणमय ।

मत्तिनिहीणो जो जद, सहण चेर कायव्वं ॥ १५४ ॥

साम वार्थ—हे मर्द ! यदि तू करनेकी शक्ति रम्यता है तो ध्यानमई प्रतिक्रमणादिकोंको कर और जो तेरी शक्ति न हो तो तब तक ऐसा मद्दान तो करना ही चाहिये ।

बिशेषार्थ—मुक्तिरूपी सु दरीक प्रथम दर्शन स्वरूप ऐसी जो निश्चय प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त प्रत्यस्थान आदि शुद्ध निश्चय क्रिया बनहोको यदि हे मुनिगार्हक अर्थात् मुनिभिद । तेरेमें सहननकी शक्ति प्रकाशमान है अर्थात् यदि तू उत्तम सहननका धारी है तो तुझे करना योग्य है ।

कैसा है मुनिभिद परमागमकी सुगन्धमें छान है मुख जिहवा तथा कर्णके समान प्रभाषान है । पद्मवम है गाम जिहवा तथा जो स्वाभाविक बैराग्यके महत्के गिरुरका शिक्षामणि है । और जो परद्र-योंसे उदास हो अपने आत्मद्र-यमें बुद्धिको धरनेवाला है तथा पर्वोद्भवीक फेडाबसे रहित शरीरमात्र परि पहका धारी है । और यदि तू शक्तिरके हीन है तो इस दण्डकाळ अकाळ पंचमकाळमें तुझे इस वेवळ सस स्वरूपका मद्दान ही करना योग्य है ।

टीकाकार कहते हैं कि—इस असार ससारमें पावोंसे भरे हुये इस क्षेत्रमें इस कठिनाळ पंचमकाळमें इस अपरहित सीबक अनुधार मुक्ति नहीं हो सकती है—



किस प्रकारसे उस आचारिक स्वानका होना संभव है ? निर्मल बुद्धिमानोंके लिए इसकारण भयभयको हरनेवाला अपने आत्माका भ्रष्टान ही करना स्वीकार योग्य है ।

जाने छाशात् अवरगमुन्वी जो परम नीतरागी योगी है उसको शिक्षा कहते हैं—

‡ जिणकहियपरमसुत्ते, पडिकरणादिय परीक्खउण फुट्ठं ।

मोणव्वएण जोई, णियउज्जं साहये णिचं ॥ १५५ ॥

सामा यार्थे— जिने इ कथित परमसूत्रोंसे प्रतिक्रमण आदिवा स्वरूप भले प्रकार परीक्षा करके जो योगी प्रगटपने मौन व्रतके साथ धारण करता है वही साधु नित्य अपने कार्यको साधता है ।

विशेषार्थ— भोगतु कहनेके सुखकमलसे प्रगट सर्व पदार्थोंको अपने गममें रखनेको चतुर ऐसे द्रव्यव्रतसे शुद्ध निश्चय स्वरूप परमात्मध्यानमें प्रतिक्रमण आदि प्रतिक्रियाओंको समझकर केवल अपने आरिभक्त कार्यमें तत्पर ऐसा परम जिन नीतरागी योगीश्वर शुभ तथा अशुभ सब बचनकी रचनाको त्याग करके तथा समाप्त परिग्रह और ज्ञानके समको छोड़करके अकेला रह मौन व्रतके साथ तिल्ल सर्व अज्ञानीजनोंसे निद्रता जाता हुआ भी अक्षोभित रह मुक्तिस्त्रीके सयोगके सुखके मूढ अपने आरिभक्त कार्यको निरंतर साधता है ।

टीकाकार कहते हैं कि— अज्ञानी मनुष्योंसे करी हुई कौटुक नि शके भयको छोड़कर जो कोई आत्मज्ञानी मोक्षका इच्छुक आत्मा है सो भवानक सत्कारको करनेवाली शुभ तथा अशुभ समस्त बचनकी रचनाको हटाकर तथा सुवर्ण और स्त्रीके मोहकी दूरकर अपने आत्माके द्वारा अपने आत्मामें केवल मुक्तिके लिए निश्चल स्थिति करता है । अज्ञानी मनुष्योंसे करी हुई नि शके

\* इस गाथाकी छाया ही टीकाकारने लिखी है ।

हो रयागकर तथा सम्पूर्ण बौद्धिक बचनके जादोंको दूरकर मप्रवाह आगममें अतुर ऐषा परमात्मवेदी मुनि निरूप सुखको लाले अपने एक आरमीक सत्त्वको ही प्राप्त होता है ।

आगे बचन सम्बन्धी सर्व व्यापारोंसे निवृत्ति होनके कारणका प कथन करते हैं —

आपा जीवा णाणा, कम्म णाणाग्निह् द्वे लद्धी ।

आ चपणनिवाद, सगपरसमएहिं वज्जिज्जो ॥ १५६ ॥

सामा यार्थे — नाना प्रकारके जीव हैं, नाना प्रकारके कर्म नाना प्रकारकी जीवोंके लक्षितया होती हैं इसलिये अपने और । अमर्षों जयात् धर्माणि बचनका विवाह मिटाना योग्य है ।

विशेषार्थ—जीव अनेक प्रकारके हैं जैसे मुक्त और ससारी, । और अमर्ष्य । तथा ससारीके दो भेद हैं—ब्रह्म और रयाधर । द्रव्य, ते श्रो, शीश्रो, पचेंद्रो असे गी और सनी ऐसे पाच प्रकार हैं । पृथ्वी, जल, तेज आयु, बतररति ये पाच म्याधर हैं ।

आगामी कीर्तमें स्वभावसे अनत चतुष्टयमई स्वाभाविक आदि गुणोंकरक होनयोग्य अर्थात् जिनक ये गुण आगामी हो अर्के मो मर्ष्य हैं । इनसं दिपरीत जो हैं अर्थात् के अनत ज्ञान आदि प्रगट न हो अर्के ये अमर्ष्य हैं । कर्म । प्रकारके हैं—द्रव्यकर्म भावकर्म और नाकर्म भेदसं तान रके कर्म हैं, अथवा मूल प्रकृतिके भेदसे द्रव्यकर्म ८ प्रकार तथा उत्तर प्रकृति १४८ हैं । तीव्र, तीव्रतर, मद्, मद्तर के लक्ष्यसे जीवोंके सुख आदिकी प्राप्ति सो लक्षित है । तथा । पायोग्य और कारण लक्षिके भेदसे

इसलिये जो परमार्थ निश्चयके ज्ञाता हैं उनको अपने तथा परके मतोंसे वाद विवाद नहीं करना योग्य है।

भावार्थ यह है कि—जबतक जीवोंके शुभ कर्मके तद्वसे काळ धादि ऋद्धिभी प्राप्ति नहीं होती तबतक अर्थ साक्षात् भ्रष्टान नहीं होता। ऐसा मनमें निश्चयकर परके, अज्ञानके लिये अर्थ व आकुञ्चता नहीं करनी। यदि अपनेको शुद्ध निश्चय स्वरूपका भ्रष्टान हो जाय तो अपने हितमें प्रगाढ़ नहीं करना। अपना काय तो करना ही। क्योंकि सब जीव हमारे विचारके ही जीव सो कठिन है।

टीकाकार कहते हैं कि—जीवोंके जो नाना प्रकारके विकल्प होते हैं वे सब ससारके कारण हैं तथा अनेक प्रकारके कर्म भी सब जीवोंको ज म ज ममें भ्रमण करानेवाले हैं। योग्य अर्थ अर्थकी तथा अर्थ ऋद्धियोंकी प्राप्ति होना सो सब निर्मल जिनेन्द्रके मार्गमें विदित है अर्थात् सबके नहीं होती, इसलिये स्वप्नमयरूप अपना आगम तथा पर स्वप्नमयरूप परका आगम इनमें वाद विवाद नहीं करना योग्य है।

भावार्थ—यह आध्यात्मिक शास्त्र है इसमें मुख्यतः से यही उपदेश है कि निज भावकी अनुभव करना योग्य है, वाद विवादमें पड़नेसे कायकी सिद्धि नहीं हो सकती।

आगे दृष्टांत देकरके स्वाभाविक तत्त्वकी आराधनाकी विधि कहते हैं—

लघूदृण गिहि एको, तस्म फल अणुहवेइ मुजणत्ते ।

तद्द पाणी पाणणिह, भू जेइ चडत्तु परतत्ति ॥ १५७ ॥

सामान्यार्थ—जैसे कोई इच्छित्री धनको पाकर सबका कल-अपनी ज ममूमिमें अर्थ व सुखवससे भोगता है, ऐसे ही ज्ञानी

ज्ञाननिधिको पाकर परद्रव्योंके समूहोंका त्यागकर सभीका भोग करता है ।

विशेषार्थ—किसी दृष्टिहीनको कभी किसी पुण्यके नदयसे निधि अर्थात् धन प्राप्त होजावे तो वह अपना जन्मभूमिमें जाकर अत्यंत गूढ़ताईके साथ नम धनका फल भोगता है, इसीतरह स्वभाविक परमवत्त्वका ज्ञाता जीव जब कभी निकट भव्यताके गुणोंके उदय होते हुए स्वाभाविक वैराग्यको अमरत्वको प्राप्त करता है तब परमगुरुके परणयमंत्रोंको परश्रुत भक्तिके द्वारा मुक्तिरूपी सुन्दरीके मुखको सुगन्धसे सुगन्धित येशो सहज ज्ञान निधिका लाभ करता है तथा सब समय आत्मस्वरूपसे रहित अथ मनुष्योंके समूहको ध्यानमें विप्रका कारण जान त्यागता है और स्वाभाविक आत्मज्ञान निधिके भोगोंको भोगता है ।

टीकाकार कहते हैं कि—इस लोकमें कोई लौकिक जन पुण्यके निमित्तसे कश्चनके दरको प्राप्त कर गूढ़ रह सबको चतुःश है सभी तरह ज्ञानो जीव सब सगको तजकर अपने आत्मज्ञानको रक्षा करता है । ज म मरण और रोगादि उपाधिके कारण सब परिग्रहको अपनी बुद्धिसे त्याग करके तथा हृदयकमलमें पूर्ण वैराग्यके भावको धारण करके तथा अपनी शक्ति अनुसार स्वाभाविक परमार्जदसे भरपूर क्षीणमोहकी अवस्थामें ठहर करके हम् सदा ही इस लोकको लूणके समान देखते हैं ।

भाषार्थ—लोकही परवाह न करके निजस्वरूपहीका ध्यान करते हैं ।

आगे परमाश्रयक अधिकारको सबोध करे हैं—

सर्वे पुराणपुरिसा, एव आशास्य य काऊण ।

अपमत्तपहुदिठाण, पडिवज्ज य केवली जादा ॥ १५८

‘अर्थ ही प्राचीन मदारमार्थोंने इसी

आवश्यक कमको करके अममत्तसे ले क्षीणमोह गुणस्थानोंमें प्राप्त होकर देवछापदको प्राप्त किया है ।

विशेषाथ—जबो ही आरमाका अधय है जिनको ऐसे निश्चय परमभान और शुद्धस्थान हैं य ही शुद्ध निश्चय परमावश्यक कर्म हैं । जो बाह्य धार्मिक आदि छ आवश्यक क्रियाओंसे प्रतिपद्यो है तथा बाह्य त मोक्षरूपी सुन्दर लोके सगमसे छपल सुखका कारण है ऐसे परमावश्यक कर्मको करके मध माथोन पुरुष हीयेकर परमद्व आदिक महान पुरुष कोई स्वययुद्ध कोड दूसरोंके द्वारा उपदेश लाभकर अममत्तसे ले समोतिमद्वारक गुणस्थानतक पंक्ति रूप आरुढ होतेहूय सम्पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञानक भारी केवली हो गर । यह सर्व महिमा परम आवश्यक कर्मको सेबासे प्राप्त होती है ।

टीकाकार कहते हैं कि—माथोन काबमें सब महान पुरुषोंने अपन आत्माको धाराधना ही करके योगी होकर समस्त कर्मरूपी राक्षसोंके समूहको नष्ट कर दिया है—ऐसे जो क्षानापेक्षा व्यापक और जिष्णु अथात् जय प्राप्त बनको जो कोई ससारका वैरागी मोक्षका इच्छुक एकाग्र मन होकर नित्य प्रणाम करता है वह जोष पापरूपी वनोक्ष दग्ध करनेके लिये अप्तिके समान है तथा उसके अणकमलोंको सर्व मनुष्य पूजन करते हैं । सुखण और छोके गोचर मय मोहको जा त्यागनेयोग्य है उसके छोड़कर हे मन । तु परम गुरुके प्रसादसे धमका छाम कर तथा निर्मल आनन्दके लिये परमात्मामें प्रवेश कर । केशा है परमात्मा, जो नित्य आनंदरूप है, अनुरम गुणांत शोभायमान है, अर्बोकि क मोहबाटा अथात् मुक्तिनेही है तथा जो निराकृष्ट रूप है ।

इस प्रकार सुखरूपी कर्मलोक लिये सूयके समान, यचो द्रव्योके विस्तारसे रहित, शरीर मात्र परिग्रहके धारी भोपज्ञपममत्तधारी देव विरचित भानियमसार प्राकृत प्रथकी तात्पर्य वृत्ति नाम संकृत टीकामें निश्चय परमावश्यक नामका धारणा सुवस्वध पूज हुआ ।

## १२-शुद्धोपयोगाधिकार

आगे सबे कर्माद्यो नष्ट करनेवाले शुद्धोपयोग नामके अधिकारको कहते हैं ।

प्रथम कहते हैं कि ज्ञानी जीबके ही किमी अपक्षासे स्वयं स्वस्वरूपका प्रकाशकपना है—

जाणदि पम्सदि सन्न, ववहारणण ऋवली भयव ।

केरलणागी जाणदि, पस्सदि णियमेण अप्पाण ॥ १५९ ॥

सामान्यार्थ—केबडो भगवान् सर्वे परार्थोको जानते देखते हैं यह कथन व्यवहारनय करके ही परम्पु नियम करके अर्थात् निश्चय करके केबडज्ञाना अपने आरमास्वरूपको ही जानते और देखते हैं ।

विशेषार्थ—आत्माके गुणोको घात करनेवाले कर्माद्यो नाश कर देनेसे सर्वे प्रकारसे निमज्ज केबडज्ञान और केबडज्ञान प्रगट होते हैं । इनके द्वारा व्यवहार नयसे भी अरहन्त भगवान् परमेश्वर परम भट्टारक तीन काळ सम्बन्धो और तीन जगतके सर्वे अर और अचर अर्थात् ब्रह्म और रथावर जीब तथा पुट्टादि इन्वोके गुण और परार्थोको एक ही समयमें जानते और देखते हैं ।

व्यवहार नय पराधित है ऐसा सिद्धा उका बचन है, अर्थात् अपनेसे अन्य जो पदार्थ चाके आश्रयसे जो कथन अपनेमें किमा जाय सो व्यवहार नय है । पर तु शुद्ध निश्चयसे परमेश्वर महादेवादिदेव सर्वज्ञ बीतराग देवके परार्थोको प्रह्न करनेवाला ऐसा जो वशाकपना तथा क्षायकपना आदि नाशकारके हिन्व

उनको रखनवाढी नदीस धरम जो अथवा सो मूल्यानसे  
अथ कथन है अथवा अपवाद है।

भावार्थ—यह उपचार नयसे कथन है कि परके ज्ञातादृष्ट  
है। निश्चय अपेक्षा यह एक अपवाद है। वे भगवान् कार्य  
परमात्मा होनेपर भी तीनों कालोंमें उपाधिरहित तथा मर्मादा  
रहित नित्य शुद्ध स्वाभाविक ज्ञान स्वाभाविक दृशनसे अपने  
कारण परमात्माको स्वयं जानते और देखते हैं। कैसे जानते  
देखते हैं कि यह ज्ञानका धर्म है। यह मेरा धर्म प्रदीपके समान  
स्वपर प्रकाशक है।

जैसे घटपट आदि पदार्थका प्रकाश करनेवाला दापक है सो  
प्रकाश होनेयोग्य पदार्थोंसे भिन्न होनेपर भी अपने स्वाभाविक  
स्वपर प्रकाशपनके स्वभावसे लगपको भी प्रकाशना है तथा  
दूसरोंको भी प्रकाशित करता यह आत्मा ही व्यवहार नयसे तीन  
जगत और तीनों कालोंको प्रकाशना है, जैसे ही यह आत्मा  
परम ज्योतिस्वरूप होनेके कारण अपने आत्माको भी प्रकाश  
करता है।

ऐसा ही ९६ प्रकारके पाखण्डोंको विजय करनेसे महान  
कीर्तिको प्राप्त करनेवाले श्री महासेन पंडितदेवने कहा है कि  
यद्यार्थ बस्तुका निर्णय सो ही सम्यग्ज्ञान है। यह ज्ञान प्रदीपके  
समान आप और परपदाथको निश्चय करने स्वरूप है तथा  
प्रसिद्धि जो प्रमाणका फल उससे किसी अपेक्षासे पृथक् पृथक् है।

अब कहते हैं कि यह ज्ञान निश्चयनय करके भी स्वपर  
प्रकाशक है। अर्थात् यह ज्ञान निरन्तर राग रहित अपने निरजन  
स्वभावमें खोन रहता है अपने स्वरूपके ही आश्रित है, ऐसे  
निश्चयनयका बचन है। आत्माका जो सहज ज्ञान है सो अपने  
आत्मासे संज्ञा सरूपा उच्चम प्रयोजनकी अपेक्षा भिन्न होनेपर भी  
वास्तु-वृत्ति अर्थात् आत्मपदार्थमें ही तिष्ठनेकी अपेक्षा भिन्न नहीं

है। इस कारणसे यह ज्ञान आत्मासे प्राप्त ज्ञान सुख तथा चारित्र्य आदि गुणोंको जानता है, जैसे ही अपने कारण परमात्माके स्वरूपको भी जानता है।

ऐसा ही भी अमृतमूर्तीने कहा है कि अपने अपने आत्माकी अथवा महिमासे हीन होना हुआ यह पूज्यमान प्रकाशमान हाहा है। केश है पूज्य न, जो स्वर्णवक्र नाशसे अर्चनाश अनुपम मोक्षका अनुभव कर रहा है निरा शरीर रूप है, अपनी स्वाभाविक अकारणको स्पष्ट करनेवाला है, चाप उ गुह्य है, एक निज आकार रूप है, अपने रससे भरपूर है, अत्यन्त गंभीर है तथा धार है।

ऐसा ही टोकाकार कहते हैं कि—एह वैश्वज्ञान मूर्तिका धारी आत्मा इस अस्पृण जगत्को निरतर देखता है तथा मोक्षरूपी सुन्दर अर्क कीमत्त मुग्धरूपी कमलमें अपनी किन्ही अपूर्व सुप्ताको तथा धीमापमई शोभाको विस्तारता है। यह कथन उपबहार नये है। परन्तु निश्चयनयसे यह दर्शना देव जिन इ मत्त समूहस हटा हुआ अपने ही शुद्ध स्वरूपका अनुभवसे कर्ता है।

अगे कहते हैं कि वैश्वज्ञान और वैश्वदर्शन एक-साथ ही आत्मासे बतने हैं इन्ही बातको दृष्टात द्वारा प्रगट करते हैं—

जुगर्षं यद्दृष्ट्वाण, त्रैवल्लणाणिम्भ टंमण च तदा ।

दिणपरपयामताप, जह बद्ध तह सुणेपम्यं ॥ १६० ॥

सामान्याथ—जैसे मूयका प्रकाश और आठाप एक ही साथ बतने करता है जैसे ही वैश्वकी भगवानके एक साथ ही वैश्वज्ञान और वैश्वदर्शन होते हैं, ऐसा जानना योग्य है।

विशेषाथ—जैसे किन्ही समय मेघके आठम्बरके दूर होते ही विभिन्न सूर्यका आठाप और प्रकाश ही ही तीर्थकर परमेश्वर भगवानके



सम्बन्धी समस्त रथावर और त्रय जीबोंके तथा अन्य त्रयोंके गुण और पदार्थोंके ज्ञानमें अर्थात् ज्ञेय पदार्थोंमें एक साथ ही सम्पूर्ण प्रकारसे निर्मल ज्ञेयज्ञान और ज्ञेयदर्शन प्रगट होते हैं। परन्तु समस्त जीबोंके दर्शनपूर्वक ही ज्ञान होता है अर्थात् प्रथम पदार्थका निराकार अवलोकन होगा है पश्चात् उसका ज्ञान होता है।

ऐसा ही श्री प्रबन्धनमारमें कहा है। भावार्थ—छद्मार्थोंके दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है दोनों उपयोग साथ ही होते हैं जब कि जेबड़ी भगवानके दोनों उपयोग एकसाथ होते हैं।

ऐसा ही टीकाकार कहते हैं कि—जैसे समस्त अवधारके समूहको दूर करनेवाले तेजको राशिस्वो सूर्यके सदृश होत व्याप और प्रकाश दोनों प्रकट होते हैं तथा जगतके जीबोंके नेत्र खुलते हैं अर्थात् जगत बिना दीपकादिके सब कार्योंको देखता है और करता है, जैसे ही श्री भगवान सबध तीर्थहर देवके सदा ही ज्ञान और दर्शन एक साथ ही होते हैं। जैसे हैं प्रभु, जो असदृश हैं अर्थात् ज्ञाके समान नीला लोकोमें और कोई कपिबादि इन नहीं है तथा जो सब लोकके एक अपूर्व ईश्वर हैं।

हे जिननाथ ! आप सम्यग्ज्ञानरूपी जहाजपर चढ़कर कीर्ष ही समार—समुद्रको अलपकर मोक्षको अजिनागी नगरीमें—पधारते भए। वही ही मागकरके में मा वही मोक्षपुरीमें जाऊगा। क्योंकि उत्तम पुरुषोंको इस मागक सिखाय अन्य कोई शरण अर्थात् रक्षक नहीं है। एकमात्र श्री जिन व जेबज्ञान सूर्य ही जयवत होहु। जैसे हैं ज्ञानसूर्य प्रभु जो भव्य जीबोंके मुख कमलमें बिछी अपूर्व चमकको चिरगारत हैं। जो मुक्तिरूपी की समारसमई अतीन्द्रिय सुखदा देनेवाली है तथा प्रेमके मूर्ति और परमप्रिय है उसके सुतको रात्रिदिन इनके छिप कोर समर्थ है ?

अर्थात् कोई नहीं है । एक भी त्रिनद हो समथ है । भी त्रिनेत्र  
मगधान ही सृष्टिरुपी स्त्रीके मुखकमलमें भ्रमरके समान झींझा  
कारते दूरे रमने मये कीर पिर अद्वितीय किभी अतीन्द्रिय  
मुखका डाम करते मये ।

अग्रे आत्मा स्वरात् प्रकाशक है इसके विरोधका निराकरण  
क्यात है—

शाश परप्यपार्यं, दिष्टी अप्यपयामया चेर ।

अप्या मपरपयासो, होदिति द्वि मण्णमे तदि हि ॥ ११६॥

धामन्धायै—यदि कोई आत्माको निश्चयस्य स्वरात् प्रकाशो है  
येवा मानता है तथा कहता है कि ज्ञान प्रप्रकाशक ही है तथा  
वृत्तन आरपवकाशक ही है ।

विशेषार्थ—अब यहां कहने हैं कि आत्मा स्वपरप्रकाशक किस  
प्रकारसे है—इन्द्रजालादि विशेष गुणोंके सहित ही आत्मा है ।  
यदि आत्माका ज्ञान गुणानाको प्रकाश करममें अस्वमथ होनेसे  
परको ही प्रकाश करनेवाला है तथा इस प्रकारसे आत्माका वृत्तन  
अवृत्तारहित केवल अर्धतरमें ही आत्माको प्रकाश करता है इस  
प्रकारसे स्वपर प्रकाशक आत्मा है

आप न्य कहत है हे अद्भुत ! यदि तू येवा मानता है तो  
तू मिश्रवदृष्टि है । प्राथमिक गुण अर्थात् प्रथम अवस्थामें  
हानेवाला जो अस्ववदृष्टि वयको जो अस्ववदृष्टेनही शुद्धता होती  
है सो भी शुद्धको प्राप्त नहीं है । तरे समान अन्य कोई अद्भुत  
नहीं है तथा विशेष रहित स्पष्टाद् विद्यारूपा देवीके पूजनेवाले  
अज्ञान अस्ववदृष्टि निरंतर येवा ही मानत है कि न तो ज्ञान  
एका तकारक परप्रकाशक ही है और न केवल एकावसे

यह आत्मा निरव्यक्तके दर्शन ज्ञान आदि अनेक धर्मोंका आधार है । तथापि व्यवहार नयनके भी केवल मात्र यह ज्ञान परप्रकाशक ही है ऐसा नहीं है । यदि ऐसा माना जायगा तो आत्मासे सम्बन्ध न रहेगा, क्योंकि यह ज्ञान सदा ही आत्मासे बाहर रहेगा । सब ज्ञानका आत्माकी प्रतीति नहीं होगी । यह ज्ञान सदागत ही जायगा । इच्छित्ये वह वास्तवमें ज्ञान का न रहेगा कि तु सृष्टिकालके जलके समान ज्ञानका प्रतिभास मात्र ही होगा । जैसे बालूरेतमें सूधी जलदसे जल समस्त गृह आकुञ्चित होता है एव ही बाहर पदार्थमें ज्ञान कल्पकर ज्ञान नहीं मिलता कि तु ज्ञानका दोषता है । इसीतरह दर्शन भी केवल अव्यक्त आत्माके ही प्रतीतिका कारण नहीं है, कि तु सदा ही सबको देखता है ॥

जैसे यह चक्षु अपने अव्यक्तमें बैठी हुई कनीनिका अर्थात् पुतला सबको तो नहीं देखती है बाहर सबको देखती है । इससे दर्शन परप्रकाशक भा हुआ । इस कारण यह ज्ञान दर्शन दोनों ही एक और परको प्रकाश करनेवाले हैं इसमें कोई भी विरोध नहीं है । इस कारण यह आत्मा भी एक पर प्रकाशक ही है, क्योंकि ज्ञान दर्शन अज्ञानका धरनबाज है । अज्ञानमें अन्वय प्रदेशभवेका भिन्न नहीं है ।

ऐसा ही श्री अमृतचन्द्र सूरीने कहा है कि यह आत्मा एक ही समयमें समस्त मृत, भविष्य और वर्तमान जगतको जानता हुआ भी मोहके अभावसे परस्वरूप कभी नहीं परिणमन करता है । परन्तु यह आत्मा सर्वकर्मोंको नाश करके मुक्तमें प्रतिभासमान होता है । कैसा होता हुआ प्रतिभासमान होता है, तीन लोक सम्बन्धी सर्व शेष पदार्थोंको प्रगटपने स्पष्ट ० अज्ञान २ जानता हुआ अर्थात् ज्ञानको मूर्तिमई अव्यक्त रूप रहता है ।

टीकाकार कहते हैं कि—आत्माका ज्ञान एक अपने स्वामात्रिक

परमात्मरूपको जानना हुआ भी जोक और अजोक दोनोंको ह्येके जाइके समान प्रकट करता है । इसी तरह दर्शन समस्त आशयोंसे रहित होकर निरूप शुद्धताको रखता हुआ साक्षात् १६ और परको देखनेवाला है । इन दोनों ज्ञानदर्शनोंमें महित आत्मा अपनेको तथा परको ऐसे समस्त ह्येय राशिसे जानता है ।

फिर भी पूजपञ्जीका करते हैं —

गाण परप्ययाम्, तदया गाणेण टमण मिण्ण ।

ण हवदि परदच्चयगय, टमणमिदि वणिण्डं तक्षा ॥ १६२ ॥

मामायर्थ — जो ज्ञान दूबरे पदार्थोंको ही प्रकाश करता है तब ज्ञानसे दर्शन भिन्न हुआ । इस कारण यही बणन हुआ कि दर्शन परद्वयको देखनेवाला नहीं है ।

विशेषाथ — यदि ज्ञान केवल परको प्रकाश करनेवाला है तब ऐसे पर प्रकाशक ज्ञानसे दर्शन भिन्न हो ठीका, क्योंकि ज्ञान परप्रकाशक है और दर्शन आत्मप्रकाशक है । ऐसा माननेसे ज्ञान और दर्शन दोनों भिन्न हो जायगे । जैसे सहायक और विध्यायक भिन्न हैं अथवा गंगाजी और भीषवत भिन्न हैं । इसी तरह ज्ञान और दर्शन भिन्न हैं, ऐसा हो जायगा ।

यदि दर्शन ही आत्मामें रहनेवाला माना जायगा तो ज्ञान आधाररहित होनसे शून्य हो जायगा अथवा यदि ज्ञान शून्य न होगा तो जहान ज्ञान जायगा बहान की सब बस्तुएँ चेतनरूप हो जायगा । तब हीन लोकमें कोई भी अचेतन पदार्थ न रहेगा यह बड़ा भारी दूषण आ जायगा । क्योंकि ज्ञान जब सब पदार्थोंमें रहेगा आत्मामें न रहेगा तब सब पदार्थ चेतन हो जायगे, अचेतन कोई न रहेगा ।

इच्छाये हे शिष्य ! ऐसा मत कहो कि ज्ञान केवल परको ही प्रकाश करनेवाला है । तथा दर्शन केवल आत्मामें ही

है । इत्यन्वय निश्चय यहो समाधान सिद्धावका है कि ज्ञान और दर्शन दोनों ही कथञ्चित् स्वपर प्रकाश ही हैं । ऐसा नहीं कि ज्ञान केवल पर प्रकाशक है और दर्शन स्वप्रकाशक है ।

ऐसा ही श्री महासेन पंडित देवने कहा है कि—ज्ञान आत्मासे न तो स्वया मिश्र है, न अमिश्र है किंतु कथञ्चित् मिश्र और कथञ्चित् अमिश्र है । पूर्व और आगामी सर्व पदार्थोंको जानोवाला जो ज्ञान है सो ही आत्मा है ऐसा कहा गया है ।

टीकाकार कहते हैं कि—न तो आत्मा ज्ञान ही है न दर्शन ही है परंतु ज्ञान और दर्शन सहित आत्मा है—इन दोनों ऊँचे सहित आत्मा आप और पर दोनोंको अक्षय ही जानता है । सद्भा संख्या सञ्जन प्रयोजनकी अपेक्षा ज्ञान और दर्शनसे तथा आत्मासे कथञ्चित् भेद है पर तु निश्चयनयसे पापघमूढको नाश करनेवाले आत्मामें और ज्ञानदर्शनमें कोई भेद नहीं है, जैसा अग्नि और लवणकी स्थितामें भेद नहीं है ।

आगे एकांत नयसे आत्मा परप्रकाशक नहीं दे ऐसा कहते हैं—

अप्या परप्पयासो, तद्या अप्येण दसण भिण्ण ।

ए ह्वदि परदव्वगयं, दमणमिदि वणिण्दं तम्हा ॥ १६३ ॥

सामा वाथ—यदि आत्मा केवल परको ही प्रकाश करनेवाला है तो आत्मासे स्वप्रकाशक दर्शन मिश्र ही रहेगा । कारण कि दर्शन पर अव्यगत नहीं है ऐसा कहा गया है ।

बिशेषार्थ—जैसे एकांतसे ज्ञानका पर प्रकाशकपना पढ़ले निषण्णा है तैसे ही यदा आत्माके केवल पर प्रकाशकपने होनेका निराकरण करते हैं । क्योंकि अपने स्वभावके अभावसे स्वभाव और स्वभाववान वस्तुका एक अस्तित्व न रहेगा आत्मा स्वपरप्रकाशक है ।

पहले यह चुके है कि जो ज्ञानको परप्रकाशक माना जायगा तो दर्शनसे सबको मिलता हो जायगी । अब जो आत्माको भी परप्रकाशक मानोगे तो आत्माकी भी दृग्मनसे मिलता हो जायगी । क्योंकि ज्ञान परप्रकाशक है इसी कारण दर्शनसे भिन्न हुआ है, यह बाद प्रतिपादन की जाचुगी है ।

इसद्विजे आत्मा भी दर्शनसे जुड़ा हुआ । और जो कहोगे कि आत्मा पर द्रव्योक्त जानता है पर तु दर्शन गुणस भिन्न नहीं है तो फिर यही सिद्ध हो जायगा कि आत्मा स्वपरका प्रकाश करनेवाला है । जैसे पहले किन्ना अप्रमाण ज्ञानमें स्वपरप्रकाशक पना सिद्ध कर चुके हैं उस ही आत्मामें भी स्वपर प्रकाशकपना निश्चय करना चाहिये क्योंकि धर्म और धर्मो पक्ष स्वरूपमई होते हैं । जैसे धर्म और धर्मताका एक स्वरूप है अर्थात् प्रथम भेद नहीं है ।

टीकाकार कहते हैं कि—आत्मा तो धर्मो है और ज्ञान दर्शन सबके भ्रम अर्थात् स्वभाव है । अर्थात् जो कि इस आत्माके यथायै स्वरूपका ज्ञान करके सब आत्मामें ही निश्चयपने अपनी स्थिति करता है तथा निरय अर्थात्के वदसे उत्तम लाभ सम्पूर्ण ही द्रव्योक्त प्रायस्वरी हिम अर्थात् पाठा सबके अरसे बाहर निकले हुए सूर्यके समान प्रकाश करता हुआ मुक्तिको प्राप्त करता है । केही है मुक्ति जहा स्पष्ट अपनी स्वाभाविक अवस्थासे प्रकाशमान भा सिद्ध भगवान विराजमान हो रहे हैं ।

आगे उपबहार नयकी मपबहारको दिखाने है—

णाण परप्पयाम, वनहारणतेण दसण तम्हा ।

अप्पा परप्पयामो, वनहारणयेण दसण तम्हा ॥ १६४ ॥

सामान्यार्थ—उपबहार नयसे ज्ञान परको

इसलिये दर्शन भी परमकाशक है तथा व्यवहारनयसे जैसे अत्मा परमकाशक है वैसे दर्शन भी परमकाशक है ।

विशेषार्थ—सर्व ज्ञानावरणीय कर्मके क्षय हो जानेसे प्रगट हुआ जो बिन्दुच निर्मल केवलज्ञान सो किस प्रकारसे तथा किस अपेक्षासे पुष्ट आदि मूर्तक तथा धर्मादि अमूर्तक तथा अय चेतन अचेतन परब्रह्म तथा उनके गुण और पर्यायोंके समूहको प्रकाश करनेमें समर्थ होसकता है ?

इसका समाधान यह है कि व्यवहारनयकरके प्रकाशता है क्योंकि परक आश्रितभावपनेहीमें व्यवहारका प्रयोजन है । जैसे कहा है "पराश्रितो व्यवहारः" इसलिये इसीप्रकार दर्शन गुण भी परका प्रकाशक है । तथा तीन लोकको आनन्दके कारण सो इसीसे प्रपञ्च य उना योग्य भीतीर्थकर परमदेव काय परमात्माके भी इसी ही प्रकार परपदार्थाका प्रकाशरूपना सिद्ध होता है जैसे ज्ञानके सिद्ध होता है । सो व्यवहारनयके बहकरके जानना । तैसे ही सब केबली मगधानके केवलदर्शनको भी परमकाशक समझना ।

येमा ही भूतबधुमें कहा है कि सब चीयोंको विजय करनेवाले भी जिनद्र भगवान् अव्यय व होहू । कसे हैं प्रभु, जिनके चरणाभिदकी मनुष्य और मनुष्योंके इद्र चक्रवर्ती अपने मुकुटोंसे शोभायमान तथा हृदयमें पढी हुई माळाओं करके सहित पूजन कात हैं तथा जिनको तीन लोक और अलोक इसप्रकार एक ही समयमें प्रतिभास हो रहा है कि विपरीत पदार्थोंमें एक दूसरेके रहनाका अभाव है, अथात् छ द्रव्योंको पृथक् देखनेवाले हैं ।

टीकाकार कहते हैं कि—जब यह आराम केवलज्ञानका पुञ्ज होता है और अत्यय प्रगटरूप केवलदर्शनका धनी होता है तब व्यवहारनय करके सर्व लोकको देखनेवाला येमा हो जाता है कि एक ही काळ सब मूर्तक और अमूर्तक पदार्थ अपने

पर्ये स्वस्वको किये जस्ये प्रगत होत है । तब ही यह आत्मा  
रममोहकारी जो जो सबक स्वरुप मोहनबादा होता है ।

आगे निश्चयनस्ये स्वस्व करने है—

पार्श्व अप्यपयाम, निच्छपणपणम टमण तम्हा ।

अप्या अप्यपयासो, निच्छपणपणम टमण तम्हा ॥ १६५ ॥

सामान्य ध—निश्चयनस्ये ज्ञान आत्माका प्रकाश है इसलिये  
ज्ञान भी आत्मप्रकाशक है निश्चयन आत्मा अपन आत्माका  
प्रकाशक है इसलिये ज्ञान भी आत्माका प्रकाश करनेवाला है ।

विशेष ध—निश्चयनस्ये स्व स्वार्थो आत्माको प्रकाश करना है  
जिस प्रकाश एसा ज्ञानको कहा गया है जैसे ही जैसे ज्ञान  
रक्षण रहित होकर शुद्ध ज्ञान भी आत्मस्वरुप ही दिखवाना  
। तथा सब इन्द्रियोंके व्यापारोंसे रहित होनेके कारण निश्चयसे  
आत्मा अपन आत्माको प्रकाश करनेवाले ज्ञानसे अक्षिप्त होता है ।  
या ज्ञान भी बाह्य प्रकाश रहित होकर अपन आत्माको ही  
प्रकाश करता है, यह निश्चयनस्ये प्रमाणता है । इस प्रकार अपने  
स्वरुप प्रत्यक्ष ज्ञानसे अक्षिप्त यह आत्मा अर्थात् अपने  
आत्मिक ज्ञान तथा शुद्ध ज्ञानसे परिपूर्ण रहता है ।

निश्चयनस्ये यह आत्मा प्रकाश और प्रकाशक इत्यादि  
वचनोंमें दूर है । अर्थात् मैं प्रकाशक हूँ और तू ज्ञान हीन  
आत्माके स्वरुप और जगत्स्वरुप सब द्रव्य तथा तनके गुण और  
प्राय प्रकाश है, ऐसा विकल्प नहीं करता है । तथा यह आत्मा  
अपन आत्मस्वरुपहीसे अपन आत्माके ही अक्षय्य प्रकाशको  
प्रकाशता है । सम्पूर्णसे अर्थात् हीन होकर  
या द्वैतत्वरहित चैतन्यके अमरकारकी मूर्तिक

है ।



लोककार कहते हैं कि-निश्चयमे आत्मा ही अपने आत्मस्वरूपको प्रकाश करनेवाला ज्ञानरूप है तथा बाह्य आङ्गनसे रहित आकाश जो दशन सब रूप ही आत्मा है । अपने एक आकारको किये हुये अपने आत्मिक रससे पूण पवित्र समीचीन प्रेमा जो आत्मा को अपने विद्वत्परहित महिमामें निरय बाध करवा है ।

आगे शुद्ध निश्चय नयकी अपेक्षासे आत्मा परका देखनेवाला है इस बातका निराकरण करते हैं—

अप्पमरूव पे उदि, लीयालोय ण केवली भयव ।

जद कोई भणड एव, तस्म य किं दूषण होई ॥ १६६ ॥

भावार्थ—केवली भगवान् आत्मस्वरूपको देखते हैं, जोक और लोकोको नहीं देखते हैं, जो कोई इस प्रकार बड़े बड़को क्या दूषण दिया जा सकता है ?

विशेषार्थ—व्यवहारनयकरके पुत्रस आदि द्रव्योंके तीनकाठ सम्बन्धी गुण पर्योको एक समयमें जाननेको समर्थ प्रेमा जो सम्पूर्णपन निर्योक्त वेदज्ञान सबको आदि ले नाना प्रकारकी महिमामें धारण करनेवाला होनेपर भी वह भगवान् केवल दर्शनरूप तीसरे नेत्रको धारणवाला है तथापि वह भगवान् अत्यंत निरपेक्ष होकर पूर्णपने अंतरगमें छोन होता है तथा अपने केवल स्वरूप प्रत्यक्ष मात्र व्यवहारमें स्वकीन निरजन प्रेमे अपने कात्मस्वरूपको स्वाभाविक रीतिसे देखनेके कारण वह प्रमु निश्चयनयसे सच्चिदानन्दमें आत्माको ही देखता है ।

भावार्थ—व्यवहारनयसे प्रेमा कहनेमें आता है कि केवली भगवान् लोकोलोकाको देखते हैं पर शुद्ध निश्चयसे वे अपने शुद्ध स्वरूपको ही देखते हैं । शुद्ध निश्चयनयको अपेक्षासे जो कोई शुद्ध अंतरग तत्त्वके ज्ञाता परम जिते श्री योगीश्वर हैं वे प्रेमा ही करते हैं । उनको निश्चयसे कोई दूषण नहीं होता है ।



लोकाकार कहते हैं कि—वे तीर्थंकर श्री जिनेन्द्र भगवान् अपने स्वरूपमें भले प्रकार वर्तन कर रहे हैं। वैसे हैं प्रभु, जो तीन लोकके गुरु हैं, दाशरथ और अन्तर्ज्योतिके धारी हैं तथा अपने कबचज्ञानरूपी तृतीय नेत्रकरि जिनकी सद्दिमा प्रगट है। यैसा है केवचज्ञान, जा लोक और अलोकको तथा आप् और पर समस्त चेतन अचेतन द्रव्योंको देखनेवाला है ।

आगे कहते हैं कि केवचज्ञानके अभावसे केवचकीके सबहवनन नहीं हो सकता—

पुञ्जत्तमपलदव्व, णाणा गुणपज्जण सजुत्त ।

जो ण य पेच्छड सम्म, परोन्सदिट्ठी हवे तस्स ॥ १६८ ॥

सामा य य —पूर्वमें कहे गए सम्पूर्ण द्रव्योंको जाना गुण और पर्यायोंकरके सहित जो कोई भले प्रकार नहीं देखता है उसके परोक्ष दृष्टि होती है ।

विशेषार्थ —पूर्व सूत्रमें कहे हुए जो मूर्तीदि द्रव्य तथा उनके गुण और पर्याय हैं उनमें मूर्तीक द्रव्यके मूर्तीक गुण हैं, अचेतन पदार्थके अचेतन गुण हैं, अमूर्तीकके अमूर्तीक गुण हैं तथा चेतनके चेतनमई गुण हैं। पर्याय दो प्रकारकी हैं—एक अथपयाय दूसरी व्यजन पर्याय ।

पट्गुणी बुद्धि हानिरूप अत्यंत सूक्ष्म परमागमक द्वारा ज्ञानने योग्य जो द्रव्योंके गुणमें स्वाभाविक परिणमन को अर्थपयाय है। यह अथपयाय सर्वे छ द्रव्योंमें साधारण है। पाप प्रकार द्रव्य छेन काळ भव भावरूप सप्तारमें परिभ्रमण करनेवाले जीवोंके गर नारक देव पशु बदनके भेदरूप जो पयाय को जीवकी व्यंजन पयाय है। पुद्रककी अति सूक्ष्म, सूक्ष्म, सूक्ष्म, सूक्ष्म आदि छ प्रकार व्यंजन पयाय है। धम, अवम, आकाश और काळ इन चार



भी कोई दोष नहीं हो सकता है ।

भाषा—यह न्ययशास्त्र के दूसरेके निमित्त व धारोसे माने हुए स्वरूपको कहोवाली है—डोकाडोक सब ही सुदृष्ट्यस्वरूपसे भिन्न हैं। उनको ज्ञाता कहना भी व्यवहारनयका विषय है। तथा यह आत्मा अपने सुदृष्ट स्वरूपको जानता है यह विषय निश्चय नयका है क्योंकि निश्चय नय स्वाश्रित है ।

श्रीराम रामदाशार्यश्यामीने कहा है कि—यह धर और अथर जगत अथेक सगम सत्पाद व्यय धीव्यरूप है—यह दृश्य सबंध द्वारा सिद्ध है, हे व्याख्यान करनेवालोंमें श्रेष्ठ। पुनः द्वारा ऐसा ही बचन है ।

टीकाकार कहते हैं कि—श्रीयनाथ भोजिगेन्द्र इस सब डोकको जानते हैं तथा एक कमैरहित अपने हा मुम्में जीन ऐसे अपने आत्माको नहीं जानते हैं ऐसा भा यदि कोई मुनि व्यवहारमागको अपेक्षा कहता है तो भी वम मुनिको दोष नहीं है ।

अथ धितपुकरके कहते हैं कि यह जीव ज्ञानस्वरूप है—

णाण जीरस्वरूप, तद्वा जातेड अप्पमं अप्पा ।

अप्पाण णवि जाणदि, अप्पादो होदि विदिंरिंघ ॥ १७० ॥

सामां याथ—ज्ञान जीवका स्वरूप है इसलिये आत्मा निश्चयसे अपने आत्मस्वरूपको जानता है। यदि ज्ञान अपने आत्माको नहीं जानता है तो ज्ञान आत्मास अलग दो जायगा ।

विशेषार्थ—ज्ञान जीवका स्वरूप ही है। इसलिये ऐसे ज्ञानका धारी कोई भय आत्मा सहरहित, द्वैतरहित, अपने स्वभावमें जीन अत्यंत अतिशय भावका स्वामी, मुक्तिरूपी जीका नाथ, तथा वाञ्छितसे रहित ऐसे परमात्माको जानता है ।



वभी गिरता नहीं है। इसलिये इस आत्माकी स्वरूपमात्रसे अवहित इच्छा करता हुआ ही जो प्राणी है उसे इन आत्माकी ज्ञान भावनाको भावना योग्य है।

टीकाकार कहते हैं कि—यह ज्ञान शुद्ध जीवका स्वरूप है। इसी ही ज्ञानसे यह आत्मा अपने एक आत्माको जानता है। यह ज्ञान प्रगटपन अपनी स्वाभाविक अवस्थासे अपने ही निकट जीवके आत्मस्वरूपसे अपने आत्माको भिन्न नहीं जानता है।

जैसे कहा है कि ज्ञान जीवसे पृथक् नहीं है। ज्ञान ही उसके आत्मा जाननेमें जाता है। यदि ज्ञान आत्माको भिन्न जानता है तो यह ज्ञान जीवसे भिन्न हो जायगा।

सांगे कहें हैं कि गुण और गुणिक भेदका अभाव है—

अप्याण विष्णु णाण, णाण विष्णु अप्पगो ण संदहो ।

तम्हा सपरप्यास, णाण तह दसण होदि ॥ १७१ ॥

सामान्य—आत्माको ज्ञान जानें। ज्ञानको आत्मा जानें। इसमें कोई संदेहकी बात नहीं है इसलिये ज्ञान स्व और परको प्रकाशनेवाला है जैसे ही दर्शन भी है।

विशेषधर्म—हे शिष्य! सम्पूर्ण पर द्रव्योंसे विभुतर ऐसे आत्माको अपने ही स्वरूपके जाननेमें शक्तिमान एस सद्म ज्ञानस्वरूप तुम जानो। इसलिये जो विज्ञान है सो ही आत्मा है ऐसा अनुभव करो। आत्मोक्त तत्त्व स्वपर प्रकाशक है जैसे ही उसके गुण ज्ञान और दर्शन दोनों स्वपर प्रकाशक हैं। इसमें कोई संकाहा स्थान नहीं है।

टीकाकार कहते हैं कि—आत्मा ज्ञान दर्शन स्वरूप है। सद्म ज्ञानस्वरूप आत्माहीको अनुभव करो। आत्मा अपने और दूसरे समस्त तत्त्वोंको प्रगटपने उद्योत करनेवाला है।

आगे अर्धज्ञ बीतराग भगवानके बाछाका अभाव है  
पेसा दिखावे है—

जाणतो पस्सतो, ईहापुव्व ण होइ केवत्तिणो ।

केवल्लिणाणी तम्हा, तेण दु सोऽणघणो भणिदो ॥ १७२ ॥

सामान्यार्थ—केबली भगवानके जानना देखना इच्छापूर्वक  
नहीं होता है। इसी कारणसे केबल्लज्ञानी हैं और इसीसे उनको  
ब-बरहित कहा गया है।

बिज्ञेयथे—भगवान अर्हत परमेष्ठ आदि अहित और अत  
रहित अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववान हैं। शुद्ध सद्भूत व्यवहार  
नयकरके केबल्लज्ञान आदि अपन शुद्ध गुणोंके आधाररूप हैं,  
इस हेतुसे बिना परिश्रमके सब जगत्को जानते देखते हैं तो भी  
मनको प्रवृत्तिके बिना ईहापूर्वक ज्ञानका बतन उन केबली परम  
मद्वारकके नहीं होता है। इसी कारण वे भगवान केबल्लज्ञानी  
इस नामसे प्रसिद्ध हैं तथा इसीद्विजे वे भगवान कर्मके  
बन्धसे रहित हैं।

माथार्थ—इच्छा होनेहीसे राग सिद्ध होता है और राग ही  
बंधका कारण है। प्रभुके राग न होनेस बंध नहीं होता, केबल  
ईर्षोपथ आसन्न योग-परिरप दसे होता है पर तु कषाय बिना  
उद्हरता नहीं है।

भीप्रबन्धनसारमें पेसा ही कहा है कि—उन पदार्थोंके स्वरूप  
आप न तो परिणमन करता है न उन्हें ग्रहण करता है न उन  
रूप आप उत्पन्न होता है केबल्लमात्र जानता है, इसीसे ही  
आरामा अर्धधक है।

टाकाकार कहते हैं कि—भी जिनेन्द्रदेव सब देवोंमें श्रेष्ठ देव  
हैं। यह उनके स्वभावकी महिमा है जिसस वे तीन लोकस्वी  
मन्त्रके भीतरके सब पदार्थोंको जानते और देखते हैं। मोहका



प्रभूके सर्वथा अभाव है इच्छिप अपने आरमा सिवाय अथ  
 किछी भी पर पदार्थको प्रश्न नहीं करते हैं । वे भगवान् निरप  
 अपनी ज्ञानव्योतिसे कर्मरूपी मन्त्रके समूहको नष्ट करनेवाले हैं  
 तथा सर्व तीन लोकके एक साक्षीभूत हैं अर्थात् मात्र दशक हैं  
 उनसे कोई सम्प्रथ नहीं है ।

आगे कहते हैं कि ज्ञानीके पञ्चा अभाव है—

परिणामपुत्र्ययण, जीवस्म य द्यकारण होई ।

परिणामरहित्ययण, तम्हा णाणिस्म ण हि यथो ॥ १७३ ॥

ईहापुत्र्ययण, जीवस्म य द्यकारण होई ।

ईहारहित्ययण, तम्हा णाणिस्म ण हि यथो ॥ १७४ ॥

आमा यार्थ—मनके परिणामपूर्वक जो बचन जीवके निकलते  
 हैं वे बंधके कारण होते हैं पर तु जो बचन मनकी परिणतिके  
 बिना निकलते हैं वे बंधक कारण नहीं हैं । इसीसे सम्प्रज्ञानीके  
 बंध नहीं होता जो बचन इच्छापूर्वक जीवके हाथोंसे वे बचन  
 बंधके कारण होवेंगे पर तु जो बाह्यरहित बचन हैं सो बंधके  
 कारण नहीं हैं । इसीद्विषये सम्प्रज्ञानी केवलज्ञानीके बंध  
 नहीं होगा

विशेषार्थ—सम्प्रज्ञानी केवलज्ञानी जीव कहीं कभी भी  
 अपनी बुद्धिपूर्वक बचन नहीं कहता है अर्थात् उसके मनके  
 परिणाम नहीं आते क्योंकि सिद्धांतका बचन है कि 'अमनराजा  
 केवलज्ञान' अर्थात् कबली भगवान् मन रहित हैं ।

भाषार्थ—केवलज्ञानके सत्त्वव बिचरूपमष्ट मनका अभाव है ।  
 इस कारणसे जीवके वे ही बचन बंधक कारण हैं जो मनकी  
 परिणतिपूर्वक बहे गये हैं । केवलज्ञानके मनपरिणत पूर्वक  
 बचनोंका प्रगटपना नहीं होता । इच्छापूर्वक बचन ही जीवको

बन्धके कारण होते हैं। केवळी महाराजके मुख्यकर्मसे प्रगट हो दिव्य-वर्णन सो भगवानकी इच्छाबिना ही प्रगट होती है।

भावात्—वृद्धकी प्रगटतामें भव्य जीर्णोक्त पुण्यका उदय ही कारण है। वह बाणी समस्त अन्तर्गत विराजित मनुष्योंके हृदय कर्मोंकी आनन्द देनेवाली है। इन्द्रिय प्रा सम्पन्न नो केवलज्ञानी हैं उनके सम्बन्ध अभाव है।

टंका १२ कहत है कि—भी केवळी भगवानके इच्छापूयक बचनोंकी रचना नहीं होती है यह इनकी अज्ञान महिमा प्रगट है। प्रमू अन्तर्गत जगत्के एक मात्र रक्षक हैं। जब बाह्याका कारण मोह प्रमुके नहीं है तब किस प्रकारसे भगवानके द्रव्य और भाव बच ह वगे क्योंकि रागद्वेषादिका आड मोहक बिना निश्चयसे होता ही नहीं है।

चार घातिया कर्मके नाशसे केवळी भगवान तीनलोकके गुठ महारुच हैं, अपने सम्पन्नानमें विराजमान है। सम्पूर्ण लोक मन्त्र यो वस्तुओंके ममूहोंके ज्ञाना हैं। ऐसे भी केवळी भगवान जिनद्वयमें न तो कोई बंध है और न कोई मोह है और न बर्हा मूर्छा है न कर्म और कर्मफलके चेतना है

इन केवळी जिन द्वयमें धर्म और कर्मका प्रपंचजाड नहीं है। रागके अभावसे अपने अतुल्य महिमाको द्विय द्रव्य चोतराग स्वरूप है तथा अपने आश्रमके सुखमें डान हैं, सिद्धरुपी स्त्रीके रवामी हैं तथा अपना ज्ञानउपेतिसे अन्तर्गत सुवनके पदार्थोंको चार्गे ओरसे प्रगट करनवाले हैं।

आगे केवळी भट्टारके अमनारक हैं इस बातको प्रकाश करते हैं।

ठाणणिमेअविहारा, ईहापुव्व ण होई केवलिणो ।

सम्भ २ वधी, साकट्ट मोहणियस्स ॥ १७६

सामा यार्थ—तिष्ठना, बैठना तथा बिहार केबली भगवानके इच्छापूर्वक नहीं होते हैं इसीलिए उनके बंध नहीं होता है। मोहनोय कमसहित जीवके इन्द्रियोंके प्रयोजन सहित होनहीसे बंध होता है।

बिद्येपार्थ—परम अरह तपनेकी लक्ष्मीसे शोभायमान परम नीतराग सबज्ञ केबली भगवानके कोई भी बतन इच्छापूर्वक नहीं होता है। इसीलिए वे भगवान मनकी प्रवृत्तिके अभाव होनेपर 'अमनस्क केबलिनः' इस सिद्धांतके अनुसार न तो बाछापूर्वक तिष्ठते हैं, न बैठते हैं और न बिहार आदिक करते हैं। इसकारणसे यह शीथैकर परमदेवके द्रव्य और भावमई कोई बंध नहीं होता है अर्थात् आरों बंध नहीं होते है। आगममें जो योगकी प्रवृत्तिके निमित्तसे प्रकृति और प्रदेशबंध कहा है सो उपचार मात्र है। जो मोहनोय कमक बिजासम लक्ष्मीन है व हीके यह बंध होता है। किछलिये होता है, वमका कारण यही है कि उनके इन्द्रियोंके विषयोंका प्रयोजन है। अर्थात् मोहनोय कमके बंधमें पडेहुए इन्द्रियोंके विषयोंके अभिप्रायको धारनवाले सधारी जीवोंके ही यह बंध होता है।

येना ही प्रबन्धनमारमें कहा है—सड़ा होना, बैठना, बिहार करना व धर्मोपदेश होना यह अरहत अबयाके काळमें नियमसे होता है, जैसे स्त्रियोंके मायाचार नियमसे होता है।

टोकाकार कहते हैं कि—जिसके प्रगट होते ही इन्द्रोंके आसन वपायमान होत हैं ऐसे केबलज्ञानक उदय होनेपर केबली गवानका सर्व बतन मनकी प्रवृत्तिरहित होता है। कसे हैं, मुक्तिरूपी सुवर लक्ष्मीके मुख्यकमलके प्रफुल्लित करनेको के समान है तथा धरय धर्मके रक्षाकेलिये मणिसमान हैं। उपरुपके मनका अभाव है। यह सब भगवानके उत्कृष्ट अगम्य महिमा है। कैसे हैं भगवान जो पापरूपो बनीके

मग्न करनकेद्विजे अत्रके घमान हैं ।

अगे शुद्धजीवकी अपनी स्वभावमई गतिको मत्त कानेके  
वषायका संशेष कथन करे हैं —

आउस्म स्वयेण पुणो, णिष्णामो होइ सेमपपदीण ।

पच्छा पावड मिग्घ, लोयग्ग समयमेत्तेण ॥ १७६ ॥

सामान्यार्थ—आयु कर्मक नाश होते ही पुत्रकर्मोंकी सब  
प्रकृतियोंका नाश हो जाता है फिर यह जीव हीन ही एक  
समयमात्रमें जाकर ओरके ० प्रमगमें विरागता है ।

विशेषार्थ—जब स्वकी भगवान अपने स्वभावके मीठर को  
क्रिया वलमें परिष्कृत रूप होते हैं तब उनके परम शुद्ध ध्यान  
अर्थात् श्रेय शुद्धध्यानसे आयुकर्मक क्षय होते २ ही वैदनीय,  
नाम और मात्र ऐसे तीन कर्मोंका शेष प्रकृतियोंका नाश हो  
जाता है ।

कैसे हैं केवल भगवान, जो सब समय पृथ्वी आदि छ  
कायक जीवोंके मगसे अलग हो जाते हैं तथा सिद्ध क्षेत्रक  
स मुख्य होने हैं । तथा कसा है वह शुद्धध्यान जो ध्यान, ध्याता  
और ध्यानका फल इत्यादि प्रयोजनोंके बिचकर्मोंसे शून्य है तथा  
अपने आरमिक स्वरूपमें निश्चल स्थितिरूप है । सब कर्मोंके नाश  
होनेपर कबलज्ञानी भगवान शुद्ध निश्चयनयकरके अपने निश्चल  
रूपकी स्वाभाविक महिमाने हीन हैं तीभी व्यवहार नयकरके वे  
भगवान अध क्षममें अर्थात् एक समयमें ओरके अग्रमग वतुहाव  
बल्यमें जा विराजते हैं । यह गति स्वभावसे ही होती है ।  
जहातक धर्म द्रव्य है वहातक मग्न होता है ।

कहते हैं कि—षट् कायके कर्ममें  
द्वौका अक्षय अलग है, इषड्विजे वे

ऊर्ण गमन करते हैं और सदाशिव (केशवाण) रूप गोप्तावरूपमें निश्चल तिष्ठते हैं । धर्मके छेद होजानेसे श्री सिद्ध भगवान् अपने अतुल्य महिमामें विराजमान रहते हैं सप्तसप्तशत देव और विद्यावर मरुवक्ष रूपसे उनकी रक्षित नहीं कर सकते । व देवोंक प्रबिद्ध सिद्ध नयसे अपने आरमाररूपमें ही अविषल रूपसे तिष्ठते हैं ।

द्रव्य, क्षेत्र, काळ भव, भावरूप पाच प्रकार सत्तासे मुक्त संघमगति भारी तथा पाच प्रकार सत्तासे लुप्तानेके कारण ऐसे विद्वोहो में पाच प्रकार सत्तासे मुक्ति पानकठिये संज्ञा करता हूँ ।

आगे कारणतत्त्वका स्वरूप कहते हैं—

जादजरमरणरहित, परम कम्मद्वयजिय सुद्ध ।

पाणाइचउसहाव, अस्सुयमरिणाममच्छेय ॥ १७७ ॥

छाभा-शार्थ—ज म, जरा, मरणसे रहित उत्कृष्ट, अष्ट कर्मासे दूरदर्शी, शुद्ध, ज्ञान दशन सुख बौर्य चार स्वभाववारी, क्षयरहित, बिनाश बिना तथा छेदरहित, जो तत्त्व है बड़ी कारण परमात्मा है ।

विशेषार्थ—स्वभावस ही जिसके सत्तामें ध्रमजका अभाव है इसकिये वह तत्त्व ज म जरा मरणसे रहित है । अपने उत्कृष्ट पारिणामिक भावको रखनेके कारण परमस्वभावमई होनेसे परम (महान) है तोनों आर्षोंमें उपाधिरहित है स्वभाव जिसका येमा होनेसे आर्षा कर्मोंसे रहित है तथा द्रव्यकर्म और भाव कर्मोंसे रहित है इस कारण शुद्ध है ।

स्वाभाविक ज्ञान, स्वाभाविक दान, स्वाभाविक चारित्र्य तथा स्वाभाविक चैत य शक्तिको धारण करनेक कारण वह तत्त्वज्ञानादि चार स्वभावरूप है ।

आदि सहित और अठ सहित मूर्त्तिक ई द्रव्यमई विप्रातीय विभाव व्यंजन पर्याय अघात नर नारकादि पर्यायोंके

अभाषसे वह उत्तर क्षयरहित है, शुभ अशुभ गतिधर्मों का होनेकेलिये कारणभूत जो पुण्य और पापकर्म इन दोनोंके अभाषसे वह तब विनाशरहित है तथा सब, सब और टेढ़न योग्य मूर्तिक अभाषसे वह उत्तर अक्षय्य है। यथा वह कारण उत्तर अर्थात् परमात्मा है।

टकाकार कहते हैं कि—हे मध्य जीव ! तू जिनमू मगधानुद्वारा मगट जो विषय सुखरूपी अमृत समझा हो बारबार भज । माकार्य-परम उत्तरका मनन कर यथा हे वह अमृतमई उत्तर जो अक्षय्य है, अमृत है नमई है, दृढग्राह्य रहित है, त्रिय है, तथा समस्त पावरूपी किछीके अमूर्तका अज्ञानकेलिये अमिके समान है। इसीसे तुझे परम निर्गुण कबहूतक का भव होवेगा।

किर भी निरुपाधि अर्थात् प्राप्तिरहित है स्वरूप त्रिसदा येष ब्रह्मणो धारी परमात्म तत्त्वका स्वरूप कहते हैं—

अध्यासाहमणिदिय,—मणोषम पुण्यपात्रणिम्मुक्तं ।

पुण्यरागमणविरहिर्यं, निच्य अत्रल अणालम्ब ॥ १७८ ॥

ध्यासाकार्य — वह परमात्म उत्तर अध्यासाधि अर्थात् बाधरहित है अतीन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियोंका जहा गम्य नहीं है अनुपम अर्थात् अपमा रहित है, पुण्य और पापसे दूर है। पुन सञ्चारमें आगमनसे रहित है, निच्य है अविचल्य है तथा आलम्बररहित है।

विशेषार्थ — समूह पावरूपी धीर धैर्योंकी जो मेना धनके धमणसे अगोचर देखे रवाचारिक ज्ञानरूपी किछेमें बिनातथान होनेके कारण वह शुद्ध आरमीक तत्त्व अकल्पयाम है ७७ कोई बाधा नहीं है मरुता। सब आरमाक पदुर्गाम त्रिषक चित्त धीर आन व भग्य हुआ है इस कारण अतीन्द्रिय है। तीनों तत्त्वोंमें अर्थात् बहिरात्मा, अतः आत्मा और परमात्मा इन तीनोंमें वह अक्षय्य है इससे अनुपम है।

संसाररूपी स्त्रीके सभोगमें उत्पन्न जो सुख और दुःख उनके अभावसे जो पुण्य और पापसे रहित है। संसारमें बार बार जन्म लेनेके कारण जो शुभ अशुभ मोह राग द्वेष आदि भाव हैं उनके अभावसे जो पुनरागमनसे रहित है। नित्य मरण अर्थात् आमोच्छ्वासम द्वाग मरण अथवा आयु कर्मके निपेहोंका निजैरारूप मरण तथा तद्गुण मरण अर्थात् उस भवको छोड़कर अयमभ्रमें जाना इन दोनों प्रकारके मरणोंका कारण जो क्लेशर अर्थात् शरीर अथके सबन्धके अभावसे जो नित्य है। अपने आत्मिक गुणोंसे न हटनेके कारण अचल है। तथा परब्रह्मके आलम्बनके न होनेसे जो निराहम्ब है।

ऐसा ही श्री अमृतचन्द्र सूरोंने कहा है—अनादि कालसे इस संसारमें यह रागी अथ जीव प्रत्येक अवस्थामें नित्य समस्त होकर जिन पदमें भी रहे हैं अर्थात् अपने स्वरूपसे गाफ़िल हैं यह अपद है। पद नहीं है ऐसा जानना चाहिये। जो सतपुत्र्य हैं व वही पदको ग्रहण करते हैं जहां चेत य धातु अत्यन्त शुद्ध अपन आत्मिक रससे भरी हुई नश्वरवनेको प्राप्त हो रही है।

टीकाकार कहते हैं कि—जिन संसारमें सदा ही औद्यिक आदि पाप पद र भाव हुआ करते हैं ऐसे सवधा राग और द्वेषके समूहरूप संसारको त्यागकरके अर्थात् संसारसे वैराग्यभाव धार करके जो कोइ बुद्धिमान मुक्ति है यह सम चतुष्टय पञ्चम पारिणामिक भावको समझता है जो भाव सदा रहनेवाला, संसारके नाशका कारण तथा मन्वन्तृष्टियोंके अनुभवगोचर है तथा बहो एक मुनिपति इस पञ्चमकावमें पापवनीको दूध करनेके लिये अग्नि समान आचरण करता हुआ शोभाको पाता है।

अगे कहे हैं कि संसार अम्ब की सबे विकारोंके समूहोंको दूर करनेकीस निवाण प्राप्त होता है—

णत्रि दुःखं णवि सुखं, णवि पीडा णेत्र विज्जदे वाहा ।

णवि मरण णवि जणण, तच्छेत्र य होइ णिज्जाण ॥१७९॥

सामान्यार्थ—जहाँ न तो कोई दुःख है न सुख है न पीड़ा है और न कोई बाधा है, न जहा मरण है न ज म है वही निर्वाण होता है ।

विशेषार्थ—राग द्वेष रहित वरनम्रयस्वरूप परमात्मा नित्य अंतरंग स मुख रहकर परम अध्यात्म स्वरूपमें न मय रहता है ऐसे परमात्माके अशुभ परिणति नहीं है । इस कारण अशुभ कर्मका बंध नहीं है । अशुभ कर्मयत्नके अभावसे उसके सम कर्मका फलस्वरूप कोई दुःख नहीं है । तथा शुभ परिणामोंके अभावसे उसके शुभ कर्मका बंध नहीं है ।

शुभ कर्मबंधके न रहते हुए उसके फलस्वरूप समारिक्त सुख नहीं है । पीड़ा बठन योग्य वेदनास्वरूप पुद्गलमें शरीरके अभावसे उसे कोई पीड़ा नहीं है ।

अघाता वेदनी कर्मके नाश होनेके कारण उसे कोई बाधा (आपत्ति) नहीं है । आहारक, वैक्रियिक, औदारिक, भाषा और मन बगला ऐसे पाच प्रकार कर्मके अभावसे जिसके मरण नहीं है । तथा इस पाच प्रकार कर्मके कारणमूल द्रव्य कर्मरूपी पुद्गलोंके ग्रहणके अभाव होनेसे उसके ज म नहीं है । ऐसे अक्षयोंसे अक्षित अरुह विशेषरहित परम तत्त्वास्वरूपको ही सदा निर्वाण है ।

टीकाकार कहते हैं कि—जिसके सदा ही सामारिक्त सुख दुःख नहीं है, न जिसके कोई बाधा है, न मरण है, न पीड़ा है उसी ही आरमतरणको मैं यदा नित्य कामदेवके सुखस विमुक्त होकर मुक्तके सुखके द्विये नमस्कार काता हूँ, यमोही श्रुति करता हूँ । मावना भाता हूँ । जा ।



आराधनामें रहित है, वह अपराधी है, ऐसा आगममें कथित है । मैं निरय ही आनन्दके मन्दिर आरमाको नमस्कार करता हू ।

फिर भी परम निर्वाणके योग्य जो परम तत्व उसीका स्वरूप कहते हैं—

णनि इन्द्रिय उवमग्गा, णवि मोहो विमिहयो ण णिहा य ।

ण य तिण्हा णेर जुहा, तन्तेय य ह्वदि णिव्वाण ॥१८०॥

सामा यार्थ—जहा न तो इन्द्रिया हैं, न उवमगें हैं, न कुछ मोह है, न आश्रय है, न निद्रा है, न तृष्णा है और न लुभा है वही निर्वाण है ।

विशेषार्थ—वह तत्त्व अक्षण्ड एक अपने प्रदेशोंमें ज्ञानस्वरूप है, इस कारण उसके स्पर्शन, रसन, घ्राण, श्रुति और भोज ऐसे पांच इन्द्रियोंका व्यापार नहीं है । देख, मनुष्य, तिर्यक, चेतन अचेतन कुछ स्पर्शग जिसको नहीं है । श्वायिक ज्ञान तथा यथाक्यात चारित्रमई होनेसे उसके न तो दर्शन मोहना है, न चारित्र मोहनी है—दोनों प्रकारका मोह नहीं है । बद्ध मयच आच्छस जा रहित है इस कारण उसके कोई बिसय अयात आश्रय नहीं है ।

नित्य प्रकाशमान है शुद्ध ज्ञानस्वरूप जिसका ऐसा होनसे उसके कोई निद्रा नहीं है, तथा असाता वेदनी कमको जड, मूर्ख नाश करनेके कारण उसके न लो लुभा है, न तृष्णा है, न लो लो परमब्रह्म स्वरूपमें निरय ब्रह्म रहता है ।

ऐसा ही अमृतशीतीमें कहा है कि, जहा ववर ज म तथा सर च वेदना नहीं होती, न लहा मरण है, न बहासे आना है, न हर्ष जाना है, ऐसा तत्व सो गुणोंमें प्रेष्ट ऐसे भोगुठके चरण-कमलोंकी सेवासे हम लोगोंकी भी अपने अरपत निमज

विशेषे भोक्तर प्राप्त होता है ।

टोकाकार कहते हैं कि—जिब विवक्षपरहित, तथा अनुपम सुख अलंकृत प्रसाधरूपमें इन्द्रियोका मानापकारका भवानकरूपसे बतना सुख भी नहीं है, न जहा सुख एक मूक कारण सेने कय कासाधिक गुणोंके समूह है ऐसे ही परमाणव स्वरूपमें आरभीक सुखरूप अविनाशे ऐसा निदान धा प्रकाशमान होता है ।

आगे धर्म धर्मोंसे रहित, गुण अनुपम तथा शुद्ध ध्यात और व्यय इत्यादि विवक्षोंमें मुक्त आ परम तब उसके स्वरूपको कहते हैं—

धरि कम्म, णो कम्म, णरि चिंता णेव अट्टरदाणि ।

धरि धम्मसुखज्ञाने, तत्थेव य होइ णिच्चाण ॥ १८१ ॥

साधनाय—न तो जहा द्रव्य कम है, न जहा नो कम है, न चिंता है, न आत और गीशुष्यान है तथा जहा धम और सुखध्यान भी नहीं है । एभी अवाध्यात ही निर्वाण होता है ।

विशेषार्थ—यह परम तब धदा विच्छिन अर्थात् कनरूपी अज्ञानसे रहित है इस कारण उसके धातों ही आतिके द्रव्य कम नहीं है, तीनोंधातोंसे अवाधिरहित स्वरूपका धारी है इससे उसके धातों नो कम नहीं है मनादित है इस कारण कमक कोई चिंता नहीं है, कौदविक आदि विभाव भावोंका जहा अभाव है इससे जहा आत और गीशुष्यान नहीं है ।

धम और सुखध्यान करनेके योग्य अतिम कौदविक नीरक न रहनेसे उसके न धम्मध्यान है, न सुखध्यान है । ऐसे ही परम तबमें निवाणका महा आत बाल कम्म है ।

टोकाकार कहते हैं कि—यस कौदव अट्टरदाके धम्म जहा नाग हो गया है ऐसे निर्वाणके अन्तमें कोई धर्म है, न जहा धारों ध्यातोंसे कोई अट्टर है ।

सब परब्रह्मस्वरूप ज्ञानका पुत्र विद्वत्स्वरूप हो जाता है तब कोई ऐसी मुक्तिकी आवश्यकता ही जाती है जो ध्यान और मनसे दूर है अर्थात् न तो जिसे कह सकते और न मनसे विचार सकते हैं ।

आगे कहते हैं कि श्री विद्वद् भगवानके स्वभाव गुण होते हैं—

विज्जदि केवलगणण, केवलसोक्ख च केवल विरिय ।

केवलदिट्ठि अमुत्त, अत्थित्त सप्पदसत्त ॥ १८२ ॥

मामा-शब्द—सब विद्वद् भगवानके केवल ज्ञान, केवल सुख, केवल धीर्य, केवल दर्शन, अमूर्तीकपना, अस्तिस्वभाव तथा अशरीरीकपना अर्थात् असंख्यात प्रवेशोपना होता है ।

द्वितीयार्थ—सम्पूर्णतः अंतरंगके अमुक्त होकर अपन ही आत्माका है आभय जिसमें ऐसे निश्चय परम शुकुष्यानके बलसे जिसके ज्ञानावरणादि आठ कर्म नाश हो जाते हैं सब भगवान विद्वद् परमेश्वरके केवलज्ञान केवलदर्शन केवलधीर्य केवलसुख अमूर्तत्व अस्तिस्व और अशरीरीत्व आदि सर्व स्वाभाविक गुण होते हैं ।

टीकाकार कहते हैं कि—कर्मबंधके छेद होनेसे भी भगवान अरहत परम शुद्ध होकर प्रविष्ट विद्वद् हो जाते हैं । ऐसे विद्वद् भगवानमें निरंतर ये केवलज्ञान केवलदर्शन होते हैं जो साक्षात् सर्व पदार्थोंको जानने देखनेवाले हैं तथा सभी विद्वद् परमेश्वरके अत्यंत तथा अंतरहित सुख होता है तथा, अनंत धीर्य आदि अनेक गुणरूपी मणियोंके समूह परम शुद्ध अवस्थामें निरव्य होते हैं ।

आगे विद्वद् अविद्वद् जीवमें पकता विद्याते है—

णिच्चाणमेव सिद्धा, सिद्धा णिच्चाणमिदि समुद्दिद्धा ।

फम्मविमुक्को अप्पा, गच्छइ लोयग्गपज्जतं ॥ १८३ ॥

सामान्याथ—निर्वाण हो सिद्ध है तथा सिद्ध जीव हो निर्वाण है ऐसा कहा गया है । जो आरमा कर्मासि गंहित होता है वह लोकके अप्रमागतक जाता है ।

विशेषार्थे—निर्वाणशब्दके यहा दो अर्थ हैं । सिद्ध भगवान् व्यवहारनयसे सिद्ध क्षेत्रमें तिष्ठने है परन्तु निश्चयसे भगवान् अपने स्वरूपमें ही ठहरते हैं । इस कारण जो निर्वाणरूप है वही सिद्ध है और जो सिद्ध हैं वह निर्वाणरूप है । इस क्रमसे निर्वाण शब्द और सिद्ध शब्दकी एकता साधक हुई । तथा जो कोई अल्प त निश्चय भव्य जीव है या परम गुणहीन कृपासे प्राप्त जो परममात्र सबकी चार २ भावना करनसे सब कम षट्ककी नीचदसे मुक्त होकर परमात्मा होता हुआ लोकके अप्रपर्यंत चला जाता है । और इस प्रकार निर्वाण प्राप्त कर सिद्ध हो जाता है ।

टीकाकार कहते हैं कि—जिनमतमें मुक्ति और मुक्तजीवमें कोई भी भेद नहीं प्रगट है, न कोई भेद मुक्तिसे मालूम होता है और न आगमस्य । तथा यही संसारो भव्यश्रीक जब सब कर्मासि नाश कर देगा तब परम मुक्तिरूपी सुदर कामतोका मोहनबाबा हो जावेगा ।

आगे कहते हैं कि सिद्ध क्षेत्रके ऊपर जीव और पुद्गलोंका गमन नहीं होता—

जीवाण पुग्गलाण, गमण जाणेहि जाय धम्मय ।

धम्मत्थिकायमाने, ततो परदो ण गच्छंति ॥ १८४ ॥

सामान्याथ—अहांतक धर्मास्तिकाय द्रव्य है वहांतक जीव और पुद्गलोंका गमन होता है ऐसा मैं जानता हू । धर्मास्तिकायके अभावसे उसके ऊपर कोई नहीं जा सकता है ।

विशेषार्थ — जीवोंकी रसाभाविक क्रिया स्थिर होकमें गमन है तथा विभाजकक्रिया छ कायके माण्ड्यिके क्रमकरके सहित है अर्थात् छ कायमें भ्रमज काना है ।

पुद्गलमें रसाभावसे गति करनबाधा एक परमाणु होता है तथा दो परमाणुमके रफ्तक इतको आदि छे जो पुद्गलके रफ्तक हैं वे विभाज क्रियावात हैं, इसकारण इन सयवी गमनक्रिया त्रिदोष शिष्टाके उपर नहीं है । क्योंकि आगे गमनका कारण जो घमांगितकाय को नहीं है, जैसे जड़के अभावमें मछलीकी अटनरूप क्रिया नहीं हो सकती । अहातक घमांगितकाय है सभी क्षेत्रतक ही चेतन व अचेतन जड़ पुद्गल गमन करेंगे इसके आगे नहीं ।

लोककार करते हैं कि — जीव पुद्गल दोनोंकी गतिक्रिया तीन दोषक ऊपर नहीं हो सकती है क्योंकि आगे गमनमें सहायक जो घमद्रव्य उत्पन्न अभाव हो गया है ।

आगे इस शास्त्रकी आदिमें जो नियम शब्द कहा गया है समक फलको संक्षेपमें करते हैं—

नियम नियमम् फल, निदिष्ट परपणस्म भक्षीण ।

पुत्राररयरिरोहो, अवणीय पूर्यतु समयण्ड ॥ १८५ ॥

सामा यथे—नियम और नियमका फल प्रकथनकी भक्तिकरके कहे गए हैं । यदि कहीं पुत्रावर विरोध भासे तो आगमके हाता ससको दूरकर उसकी पूर्ति करें ।

विशेषार्थ—शुद्ध रसनयका व्याख्यात जो किया गया उसके द्वारा नियम शब्दको समयाया है । तथा इस नियमका फल परम निषाण है जो भी कहा गया ।

यह सब कथन कबिपनेके अभिमानसे नहीं किया गया है कि तु मात्र अनिषाणीकी भक्तिकरके ही किया गया है । यदि

वे ई इम नियमसारसे पूर्वापर विरोधी दोष हो तो दोषको इटाकार कागमके द्वारा परम कबीला लक्ष्मी उत्तम पश्य करे ।

टीकाकार कहते हैं कि—यह नियमसार और लक्ष्मी फट ये दोनों अक्षय्य होतु । उत्तम पर्याप्त्ये पुष्टको हृदयस्वी शोभरमें लक्ष्मी नियमसारका अग्रम होता है तथा यह शुद्ध रत्नप्रयत्न नियम सार लक्ष्मीको निर्वाण पुनर्द्विजे कागम जाना है । यह नियमसार मध्य सूत्रकार श्री कुम्भकुम्भदायाय शामीके द्वारा मात्र पश्चिम मणिके हो विचारमें गूथा गया है । यह मध्य सम्पूर्ण मध्य श्रीशोद्विजे निर्वाण प्राप्त करनेका एक निश्चय मार्ग है ।

आगे मध्य श्रीको ज्ञान देते हैं—

ईसामावेण पुणो, कर्हि णिटति मुन्दर मग ।

तेऽपि वपण मोशा,—ऽभति मा कुगड जिणमग्गे ॥ १८६ ॥

सामान्य र्थ—तथा कोई श्री सुन्दर मार्गको भी ईशामावस निगूते है उनके बचनोंको सुनकर हे शिष्य ! तू जिनमार्गमें अभक्ति न कर ।

विशेषार्थ—जो कोई मध्य बुद्धि है तथा जो तीनों शक्तियों का कारण रहित निरप एक आनन्दमई ब्रह्मधारी विद्वत्परहित निज कारण परमात्माके सम्बन्ध ब्रह्मज्ञान और चारित्र्य रूप जो शुद्ध रत्नप्रय लक्ष्मी विरोधी जो मिथ्यात्व कर्म लक्ष्मीके लक्ष्मी करके मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र्यमें छोन हैं ऐसे मूर्ख श्री ईशामाव करके सर्वज्ञ श्रीवगाके पाप क्रियाओंसे रहित सुन्दर मार्गकी भी निन्दा करते हैं ।

कैसा है सुन्दर मार्ग, जो भेदोपचार अर्थात् व्यवहार रत्नप्रय रूप तथा अभेदोपचार अर्थात् निश्चय रत्नप्रयत्नरूप है । अपने स्वरूपसे रहित उन मिथ्यादर्ष्ट श्रीशक्ति खाटे हेतु और छोटे दृष्टांतोंसे युक्त कुतर्कके बचनोंको सुनकर जिनेश्वर भगवान् कथित शुद्ध रत्नप्रयके मार्गमें हे मध्य ! अपनी अठवि किणु अपनी भक्ति ही करनी योग्य है ।

टीकाकार कहते हैं कि—जहा देरहरी

युद्धसे क्षति भयानक है, तुल्योक्ति समूहको विषय पशु जहाँ बिचार रहे है, समस्त जगतको नाश करवावाको भयानक काव्यरूपी क्षति जहाँ जन्म रही है, मुक्तिरूपी लक्ष जहाँ मूल रूप है, नानाप्रकारकी सारी नव तिनकाके भयानक व्यवहार जहाँ फेर रहा है वेष्ट संसारस्वर सचटमई जगतमें मिथ्यारूपी श्रीशैकडिये एक जैन दशन हो शास्त्ररूप है अवांश रक्षा करनेवाला है ।

जिस प्रमुखा ज्ञानरूपी शरीर कोक अक्षोको अपनेमे स्वने बाधा है, व जिधन गृहस्थाश्रममें नाचते शत्रु ब्रह्माक्षर समस्त सुभनको ब्रह्मायमान किया है अथवा विम्वरविसे तोनों छाकको क्षीमिष्ठ विद्या है ऐसे भी विमनाथ तीर्थहरको श्रुति करनेकेद्विये तीन सुभनमें ऐसे कीन देख था मनुष्य है जो अतय हो सकते हैं अर्थात् कोइ नहीं है, वी भी इस जगतमें उनको श्रुति किये जानेका कारण मात्र एक वनकीविषे परम कर्माहररुमई मक्ति हो है । मैं ऐसा मानता हूँ ।

आगे शास्त्रका नाम कहते हैं, शास्त्रके अधनको छोचते हैं—

नियमावणाणिमित्त, मय वदं नियमसारणाममुद ।

बुद्धा जिणोवदेसं, पुब्बानरदोसणिम्भुवां ॥ १८७ ॥

साम्प्रथमार्थ—मैंने यह नियमसार प्रथम अपनी आत्मधावनाके निमित्त ही भी जिनेन्द्रके पूर्वापर दोष रहित उपदेशको समस्त करके किया है

विशेषार्थ—महा पर आचार्य भी कुन्दकुम्भाचार्ये अपने आरम्भ किये हुए प्रथमको पूज करके अपनेको अत्य व कृतार्थ मानते हुए कहते हैं कि मैंने इस शास्त्रको जिघत्सा नाम नियमसार है केवल आत्ममावनाकेद्विये तथा अनुभ भावोंकी इष्टानके द्विये रखा है ।

कैसे है आचार्य, जो वेदकों परम कर्तुष्ट अन्वयमशास्त्रोंके ज्ञानमें कुशल हैं । जो यह प्रथम जो मैंने (कुन्दकुम्भाचार्यने) रखा है जो कैसे रखा है, पूर्व ही बचकता अर्थात् माया जगत्परदिव परम गुरुके प्रसादसे मछे मकार इस जिनेन्द्रको आनकरके रखा है । जो सर्वज्ञ बीतरागके मुख्यकमलसे भगट हुआ परम

ब्रह्मण्यकारी पात्रोपदेशरूप है । तथा पूर्वापर दोषसं रहित है तथा-  
पूर्वापर दोषके कारणरूप समस्त मोह राग द्वेष भावोंसे रहित जो  
आप्त आहृत देव उनके मुख कमरसे प्रगट होनेके कारण  
निर्दोष है ।

इस नियमसार प्रथमका तात्पर्य दो प्रकार है—कैला है यह  
नियमसार प्रथ, जो सब आगमके सार्धक अर्थको कहनेमें समर्थ है,  
नियम शब्दसे विशुद्ध मोक्षमार्गांका विलम्बानेवाला है, जिसमें  
पंचाशिकायका स्वरूप कहा है दर्शन ज्ञान चारित्र्य तप योग्ये येत्रे  
पाच आचारका प्रथम इसमें सचय किया है, जीव पुत्रकादि छ  
दुःखोंके स्वरूप जिसमें बणन किया गया है, श्री श्रीविक्रम आदि  
पात्रों भावोंके प्रबंधको प्रतिपादन करनेवाला है, निश्चय प्रति  
कर्मण, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त, परम आशेषना, नियम उपुत्तमर्ग  
आदि सबके क्रियाकाइके आदर्शरूपके बणनस्य समुद्ध है । शुभ शुभ  
शुद्ध येसे तीन महान उपयोगको ज्ञान करनेमें प्रमेश्वर है ।

येसे इस नियमसार प्रथमका अभिप्राय दो भेदरूप है—एक  
सूत्रसारपर्यं, दूसरा शास्त्र-उत्तरपर्यं । सूत्रका तात्पर्य ही पद्यकी रचनाके  
आधर प्रत्येक सूत्रमें कहा गया है ।

शास्त्रका तात्पर्य यह है कि यह शस्त्र योगने योग्य है—अनु-  
भव करने योग्य है । निर्वाणरूपी सुन्दरी अर्थात् श्री लक्ष्मी  
वस्त्र जो परम शीतगामर्ग अन्वेषण निरंतर अतीन्द्रिय परम  
आनन्द लक्ष्मी देनेवाला है । तथा वह शास्त्र भेद्य अतिशयरूप  
निरय शुद्ध, तथा निरजन निष्ट अज्ञ परमात्मा लक्ष्मी मानना  
करनेका कारण है, समस्त लक्ष्मीके समूहोंसे शोभित है, पंचमार्गि  
जो मोक्ष लक्ष्मीके कारण है । तथा पंचेन्द्रियके कैलाससे रहित  
शरीर मात्र परिमलके जारो आशय द्वारा रचा गया है ।

जो कोई भक्त्यशील निश्चय और व्यवहार लक्ष्मीके विरोध  
रहित जानते हैं वे महान पुत्र समस्त अप्यारम शास्त्रके उपर  
जामनवाले परमानन्द शीतगाम सुखके अविच्छादी होते हैं तथा  
बाह्य और आभ्यन्तर शरीर प्रकारके परिमलके  
रहित हैं और लीनोंलक्ष्मी आचरहित स्वरूपमें



निज कारण पामरमावर्तन कषक भ्रष्टान ज्ञान कीर आचरनका  
नेदोपचार कषपनाको अपेक्षारहित अपन आत्माके छोन देना को  
सभद कषत्रय उधमें छोन हाते हैं वे ही शरद्वयथा कषरूप  
को अविनाशी मूल्य कषके भोगनवाशे हो उते हैं ।

टीकाकार कहत हैं कि—इस शास्त्रको वृत्ति सुकविजनको  
कमळ कनके स्फुट्ट कानेको सूर्य केके पक्षमसु द्वारा सुदर  
पक्षके समूहोंके रचो गई है । जो कोई बिभुद आत्माका इच्छुद  
इस तात्पर्ये वृत्तिको अपने मनमें धारण काला दे बर मोक्षकी  
सुन्दर कीटा वर होता है । पक्षवम नामधारी चक्षुमासे प्रगट  
किरणोंको माडाके समान जो यह शास्त्रकी रचना को सदा ही  
चित्तमें दिख रहे । इस वृत्तिमें जो कोई पक्ष उच्छमस खमे विच्छ  
हो तो पक्षको छोप करके भद्र कविजन कषमपक्ष स्थापित करें ।

टीकाकारका जो अंतिम श्लोक है पक्षका भाषार्थ—ऐसा है  
कि लक्षक यह चंद्रमा अपने तारागणोंके साथ सदा अपने  
सुन्दर गमनके मगमें शोभे लक्षक यह तात्पर्येवृत्ति नाम टीका  
सज्जन पुठोंके निर्मळ चित्तमें सदा अपना निवास स्थित रक्ष्य ।  
वैसी है वृत्ति, जिसने त्यागने योग्य समरभ सांसारिक वृत्तिवैका  
व्यहारा किया है ।

इसप्रकार सुकविजन कषकोंके द्विये सूर्यके समान पंचेन्द्रियके समारसे  
रहित शरीरमात्र परिमडके धारी श्री प्रद्युम्नमडधरि देवद्वारा  
रचित जो नियमधार प्राकृतमयकी तात्पर्येवृत्तिनामकी कषाशमें  
शुद्धोपयोग नामका बारहवां अठारहव पूर्ण हुआ ।  
सगुठ श्लोक सख्या २६१४ ॥

दोहा—श्री जिन वीर सु मोक्ष तियि, प्रात रवि दिनमान ।  
चौविसमें अड़तिस शुरू, भाषा पूरण जान ॥  
इति भाषटीका खम सा ।

—प्र० सीतल ।



समाप्तोऽयं प्र या ।





निज कारण परमात्मरूप ब्रह्मक भ्रष्टान ज्ञान और आचरणद्वय  
भेदोपचार करपनाको अपेक्षारहित अपने आत्मामें छोन ऐसा जो  
लभेद रत्नत्रय लभमें छोन होते हैं। वे ही शब्दब्रह्मका स्वरूप  
सो अविनाशी सुख लभके भोगनेवाले हो जाते हैं।

टीकाकार कहते हैं कि—इस शास्त्रकी वृत्ति सुकविजनरूपी  
कमल उनके प्रफुल्लित करनेको मूय ऐसे पद्मप्रभु द्वारा सुन्दर  
पदके समूहसे रची गई है। जो कोई विशुद्ध आत्माका इच्छुक  
इस तात्पर्य वृत्तिको अपने मनमें धारण करता है वह मोक्षरूपी  
सुन्दर स्त्रीका वर होता है। पद्मप्रभु नामधारी चद्रमासे प्रगट  
किरणोंकी माडाके समान जो यह शास्त्रकी रचना सो सदा ही  
चित्तमें स्थिर रहे। इस वृत्तिमें जो कोई पद अज्ञानशक्तने बिहद  
हो सो लभको छोप करके मद्र कविजन वत्तमपद् स्थापित करें।

टीकाकारका सो अंतिम श्लोक है लभका भाषाय—ऐसा है  
कि लभतक यह चद्रमा अपने तारागणोंके साथ सदा अपने  
सुन्दर गमनके मागमें शोभे तबतक यह तात्पर्यवृत्ति नाम टीका  
अज्ञान पुरुषोंके निर्मल चित्तमें सदा अपना निवास स्थित रखे।  
पैसी है वृत्ति, जिसने त्यागने योग्य समस्त आध्यात्मिक वृत्तियोंका  
उपहास किया है।

इसप्रकार सुकविजन कमलोंके लिये सूर्यके समान पंचेन्द्रियके प्रसारसे  
रहित शरीरमात्र परिमलके धारी भी पद्मप्रभुमलधारि देवद्वारा  
रचित श्री नियमसार प्राकृतमपकी तात्पर्यवृत्तिनामकी व्याख्यानमें  
शुद्धोपयोग नामका चारहवा अक्षरकर्म पूर्ण हुआ।

सकल श्लोक संख्या २६१४ ॥

दोहा—श्री जिन वीर सु मोक्ष तिथि, प्रात रवि दिनमान ।

चौविसमै अठतिस शुरू, भाषा पूरण जान ॥

इति भाषटीका समाप्ता ।

—श० सीतल ।

